शोध-ग्रन्थ १९८४-८५

मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ

प्रबन्ध खण्ड

मदनपुर-बानपुर के मूर्ति शिल्प एवं चित्रकला

का विवेचनात्मक अध्ययन

शोधार्थी : राजेन्द्र प्रसाद मेरठ कालिज, मेरठ

पर्यवेक्षक :

डा० आर० ए० अग्रवाल
पी-एच० डी०, डी० लिट्०
ललित कला विभाग,
मेरठ कालिज, मेरठ।

डा० एस० डी० त्रिवेदी
एम० ए०, पी-एच० डी०
निदेशक :
राजकीय संग्रहालय, झाँसी

शोध-ग्रन्थ

मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ

१९८४-८५

प्रबन्ध खण्ड

मदनपुर-बानपुर के मूर्ति शिल्प एवं चित्रकला का विवेचनात्मक अध्ययन

शोधार्थी :

राजेन्द्र प्रसाद

मेरठ कालिज, मेरठ

पर्यवेक्षक :

डा० आर० ए० अग्रवाल
पी-एच० डी०, डी० लिट्०
ललित कला विभाग,
मेरठ कालिज, मेरठ ।

डा० एस० डी० त्रिवेदी
एम० ए०, पी-एच० डी०
निदेशक :
राजकीय संग्रहालय, झांसी

Dr. R. A. AGARAWALA
M.A. (Ptg., Hist. & Cul.) Ph.D., D.Litt., F.I.A.S.
DEPT. OF FINE ART, MEERUT COLLEGE, ● 230, JATTIWARA STREET, MEERUT - 250-002. ● INDIA.
CONVENER : **Board of Studies & Research Degree Committee, Meerut University.**

प्रमाणित किया जाता है कि श्री राजेन्द्र प्रसाद मेरे निर्देशन में मेरठ विश्वविद्यालय की पी०एच०डी० {चित्रकला} उपाधि के लिए मदनपुर- बानपुर का मूर्तिशिल्प एवं चित्रकला एक विवेचनात्मक अध्ययन- विषय पर विश्वविद्यालय के उपस्थिति आदि नियमों का पूर्णतया: पालने करते हुए शोध कार्य करते रहे हैं । इनका शोध-प्रबन्ध पूर्ण प्रमाणिक हैं ।

दिनांक: 5/9/88

डा० आर०ए० अग्रवाल
निदेशक,

समर्पितः उन कलाकारों को जिन्होंने कला
एवं संस्कृति का सृजन किया।
उन शहीदों को जिन्होंने देश की
स्वतन्त्रता हेतु कला व संस्कृति
की आहूति दे दी।

प्राक्कथन

प्राक्कथन

देशाटन मानसिक विकास व ज्ञानोपार्जन का समृद्ध साधन है । अपने बाल्यकाल से ही मुझ में, जब मुझे देशाटन का पूर्णतया अर्थ भी मालूम न था, देश के विभिन्न भागों को देखने की जिज्ञासा बलवती रही है । प्रकृति से प्रेम व छायांकन के शौक ने मेरी इस रूचि को और अधिक समृद्धि प्रदान की ।

श्रद्धेय डा० रामअवतार अग्रवाल से ज्ञान भिक्षा व सान्निध्य दोनों ही मुझे अपने शैक्षिक काल से ही मिलते रहे हैं । लगभग तीन वर्ष पूर्व जब डा० अग्रवाल बुन्देलखंड क्षेत्र के अध्ययन में रत थे तब उन्होंने उस क्षेत्र के छायांकन में मेरा सहयोग लेना चाहा । देशाटन की रूचि, छायांकन का शौक व डा० अग्रवाल जैसे विद्वान का साथ हो, यह सोचने का प्रश्न कहाँ पैदा होता । मैं तुरन्त डा० अग्रवाल के साथ बुन्देलखंड भ्रमण पर निकल गया ।

देवगढ़ में डा० अग्रवाल व झाँसी राजकीय संग्रहालय के निदेशक परमश्रद्धेय डा० एस० डी० त्रिवेदी जिनके विशेष आग्रह पर हम देवगढ़ देखने गये थे, के साथ जब मैंने प्रकृति की गोद में स्थित इस कला तीर्थ को देखा तो सम्भवतया इतने बड़े कलाभंडार ने मेरे ऊपर जादू का सा प्रभाव डाल दिया तथा मैं भाव विभोर हो उस कला तीर्थ पर कार्य करने के लिए मचलने लगा । लेकिन ज्यों-ज्यों मैंने बुन्देलखंड की इस शौर्यमयी, कलामयी, रक्ततप्त भूमि का दिग्दर्शन किया तो मुझे ऐसा लगा कि इस क्षेत्र में बहुत कुछ ऐसा है जो अभी तक अछूता पड़ा है । कला के नाम पर लोग मात्र खजुराहो, ओरछा व देवगढ़ का ही नाम लेते हैं, जबकि अन्य स्थान भी कम कलात्मक नहीं हैं । जब मैंने डा० त्रिवेदी से देवगढ़ के अध्ययन के सम्बन्ध में चर्चा की तो उन्होंने कहा "अरे देवगढ़ पर तो फिर भी बहुत काम हुआ है । इस बुन्देलखंड में तो एक-एक गाँव कलात्मक सम्पत्ति से इतना पूर्ण है कि प्रत्येक पर एक - एक शोधग्रन्थ तैयार हो सकता है ।"

उसी भ्रमण में मुझे मदनपुर व बानपुर जाने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ । जो कुछ मैंने वहाँ देखा, उसे देखकर कला की भूखी आँखे तो तृप्त हुई हीं लेकिन कलात्मक स्थापत्य, मूर्तियाँ व चित्रकला की दुर्दशा देखकर मन खिन्न हो गया और मेरे कलात्मक मन में एक टीस पैदा हो गई ।

जहाँ एक ओर मदनपुर में चन्देल कालीन चित्रकला, जिसके उदाहरण भी समस्त भारत में बहुत कम और सम्भवतया उत्तर भारत में तो केवल मदनपुर में ही प्राप्त हैं, वे अपनी जीवन की अन्तिम साँसे गिन रहे हैं, तो बानपुर का शौर्यमयी किला जिसने 1857 की क्रान्ति में झाँसी से भी पहले अपने हृदय पर अंग्रेजी सेना की तोपों के गोले सहे थे आज पूरे बानपुर गाँव के शौच -समाधान का केन्द्र बना हुआ है । वहाँ के चित्रावशेष भी लगभग नष्ट हो रहे हैं । किसी को भी इसकी शायद चिन्ता नहीं । मेरा मन देवगढ़ से विमुख हो गया । मेरे मन की टीस मुझे कुरेदने लगी । रातभार नींद नही आयी और मन बार-बार उन दोनों स्थानों पर उड़ जाता था जहाँ कलाकारों की छैनी समय आने पर शूरवीरों की तलवार बनकर चमकी थी ।

वापिस झाँसी आकर डा० अग्रवाल और डा० त्रिवेदी से इस नये विषय क्षेत्र पर वार्तालाप किया । उनका पूर्ण सहयोग मेरे साथ था लेकिन उन्होंने फिर एक बार विचार के लिए मुझ पर छोड़ दिया किन्तु मेरा मन तो जैसे दृढ़ प्रतिज्ञ हो चुका था । मैंने पहले झाँसी संग्रहालय के पुस्तकालय और फिर आकर दिल्ली संग्रहालय व पुरातत्व विभाग दिल्ली के पुस्तकालय में जाकर इस क्षेत्र के विषय में अध्ययन किया, मुझे वहाँ प्राप्त थोड़ी बहुत सामग्री ने ही और साहस प्रदान किया । अतः दिसम्बर 1982 में फिर उन दोनों स्थानों का एक बार भ्रमण करने गया और दृढ़ निश्चय हो, डा० अग्रवाल व डा० त्रिवेदी को अपने निश्चय से अवगत कराया । उनकी तो असीम अनुकम्पा मेरे ऊपर थी ही, अतः 31 दिसम्बर, 1982 के अन्तिम बीतते हुए क्षणों में उन्होंने इस योजना

का प्रारूप तैयार करा दिया और इस विषय चयन की परम्परा अपनी लम्बी यात्रा के बाद पूर्ण हो पायी ।

अध्ययन के इस सागर में गोते लगाते हुए मुझे डा० पी०सी० मुखर्जी की सर्वेक्षण-रिपोर्ट ने तिनके के समान सहारा दिया है । यही एक मात्र ऐसा सर्वेक्षण है जो अब से लगभग 100 वर्ष पूर्व हुआ था । जिसने मदनपुर एवं बानपुर की कला थाती पर कुछ प्रकाश डाला है ।

कनिंघम ने भी अपने आर्कोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट - टूर्स इन बुन्देलखंड एण्ड मालवा में भी मदनपुर ग्राम के स्थापत्य और अभिलेखों पर एक अध्ययन प्रस्तुत किया है, जो मदनपुर ग्राम के कला एवं इतिहास को जानने का एक प्रमाणिक स्रोत रहा है ।

इनके अतिरिक्त पुरातत्व की वार्षिकी रिपोर्ट में भी कहीं-कहीं इन क्षेत्रों के विवरण प्राप्त होते हैं । लेकिन विस्तृत एवं क्रमबद्ध अध्ययन की महती आवश्यकता थी, जिसे मैंने अपने इस शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत करने का साहस किया है । इस शोध प्रबन्ध को मैंने छः अध्यायों में विभाजित किया है ।

प्रथम एवं द्वितीय अध्याय में मैंने इस जनपद के अद्यावधि शोध कार्यों का विवरण, शोध के महत्त्व व शोध प्रविधि तथा मदनपुर बानपुर की स्थिति, उनका नामकरण, उनका ऐतिहासिक एवं धार्मिक महत्व तथा पृष्ठ-भूमि आदि का वर्णन किया है ।

तृतीय अध्याय में इस क्षेत्र के मूर्तिशिल्प का क्रमबद्ध व विस्तार से अध्ययन किया गया तथा पौराणिक व पूर्व विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विवरणों और मान्यताओं के तथ्यों के आधार पर मूर्तिशिल्प का अनुशीलन किया है ।

इस जनपद में ब्राहम्ण व जैन धर्म की धारा अविरल रूप से बही है, इसी लिए यहाँ दोनों धर्मों से सम्बन्धित मूर्ति शिल्प प्राप्त होता है। जिसे मैंने अलग-अलग इस प्रबन्ध में प्रस्तुत किया है। ब्राहम्ण धर्म सम्बन्धी, जैन धर्म सम्बन्धी व धर्म से अलग अर्थात धर्मेतर भागों में बाँट कर प्रस्तुत किया है।

चतुर्थ अध्याय, क्षेत्र की चित्रकला पर किया गया विशद वर्णन है। जहाँ मदनपुर में चन्देल कालीन भित्ति-चित्र कला के अनूठे व एक मात्र उदाहरण हैं, वहीं बानपुर में बुन्देली चित्रकला के उत्तम उदाहरणों का वर्णन विस्तृत व शैलीगत अध्ययन उनकी निर्माण पद्धति सहित किया है।

पंचम अध्याय, इस जनपद की सांस्कृतिक धरोहर व कला पर पड़ने वाले संस्कृति के प्रभाव से परिपूर्ण है।

अन्तिम अध्याय, उपसंहार रूप में है, जिसमें इस क्षेत्र की कला-थाती का महत्व व उनके वर्तमान समय में सुरक्षा आदि का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया है।

आज यह शोध-प्रबन्ध अपने पूर्ण रूप में है। यह प्रबन्ध मात्र स्वप्न ही रहता यदि श्रद्धेय गुरुवर डा० रामअवतार अग्रवाल, चित्रकला विभाग, मेरठ कालिज, मेरठ व श्रद्धेय गुरूवर डा० एस०डी० त्रिवेदी, निदेशक राजकीय संग्रहालय, झाँसी का शिक्षादान मुझे प्राप्त न होता। भित्ति चित्रकला के प्रकाण्ड पंडित डा०अग्रवाल के साथ रहकर मैंने मदनपुर, बानपुर ही नहीं, वरन् समस्त बुन्देलखंड की भित्ति चित्रकला का अध्ययन किया है तथा इस क्षेत्र की चित्रकला के परिप्रेक्ष्य में मदनपुर - बानपुर की चित्रकला को समझाने में उन्होंने मुझे पूर्ण सहयोग प्रदान

किया है । डा० एस०डी० त्रिवेदी ने मूर्ति विज्ञान के आधार पर इस क्षेत्र की एक-एक मूर्ति का अध्ययन कराकर इस शोध प्रबन्ध को परिमार्जित कराया है ।

दोनों ही घरों से जो पारिवारिक स्नेह मुझे मिला है, उसके सामने मैं तो नतमस्तक हूँ ही, मेरा यह शोध-प्रबन्ध भी उतना ही आभारी है ।

मेरे पूजनीय माता-पिता जिनसे मुझे इतनी लम्बी उम्र में भी साहसी मनोबल ही नहीं मिला है, बल्कि पूर्णतया आर्थिक सहायता भी मिली है । जिसके बिना यह शोध-प्रबन्ध कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता था । मेरे अग्रज भ्राता विक्रम सिंह व भ्रातासम बद्री वर्मा (अध्यक्ष चित्रकला विभाग, खतौली) की साहसिक प्रेरणा मेरे इस कार्य के पूर्ण करने में नित्य ही प्रेरणा श्रोत बनी रही है ।

अतिशय-क्षेत्र मदनपुर जैन मन्दिर के मैनेजर व पुजारी श्री गोविन्द दास जी का हृदय से मैं आभारी हूँ । जिन्होंने मेरे लिए इस अपरिचित क्षेत्र में बिना आर्थिक लाभ के मेरे रहने आदि का प्रबन्ध करके मुझे इस क्षेत्र के अध्ययन में सहयोग दिया । राम मेहरा, फोटो ग्राफर व शिव रस्तोगी मेरे दोनों परम मित्रों ने प्रस्तुत छाया चित्रों के पूर्ण कराने में अथक सहयोग प्रदान किया है । इस प्रबन्ध को साज - सज्जा को पूर्ण करने में मेरे अनन्य-मित्र अशोक अरूण (अध्यापक चित्रकला) व रवि त्यागी ने महान सहयोग प्रदान किया है । इस शोध प्रबन्ध की भाषा को परिमार्जित करने में मेरे परममित्र रामकुमार शर्मा (एम०ए०, एम०एड० हिन्दी, सम्प्रति ए०डी०ओ०) ने बहुत सहयोग देकर मुझे अनुग्रहीत किया है । स्नेही सुमन अग्रवाल ने लेखन-कार्य में मुझे जो सहयोग दिया है, उसका मैं हृदय से आभारी हूँ ।

झाँसी राजकीय संग्रहालय के समस्त अधिकारी व कर्मचारियों का मुझे बहुत सहयोग मिला है तथा वहाँ के पुस्तकालय द्वारा मेरे अध्ययन में बहुत सहयोग प्राप्त हुआ है । मैं हृदय से उनका भी आभारी हूँ । साथ ही पुस्तकालय ललित कला एकेडेमी, पुस्तकालय राजकीय संग्रहालय दिल्ली, पुस्तकालय पुरातत्व सर्वेक्षण-विभाग के पुस्तकालयाध्यक्षों का भी आभारी हूँ ।

राजेन्द्र प्रसाद

बुन्देलखण्ड

मानचित्र 1

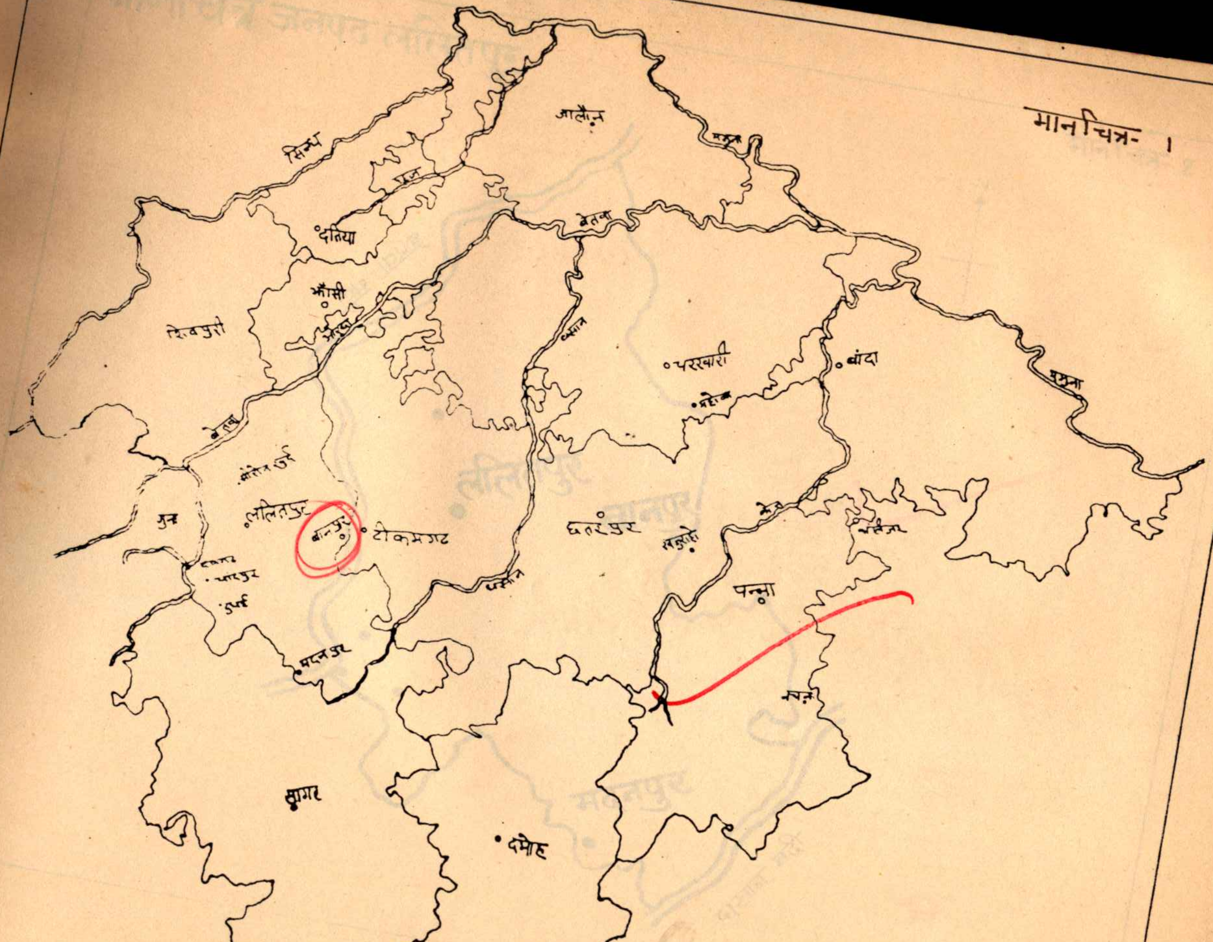

मानचित्र जनपद ललितपुर

मानचित्र- 2

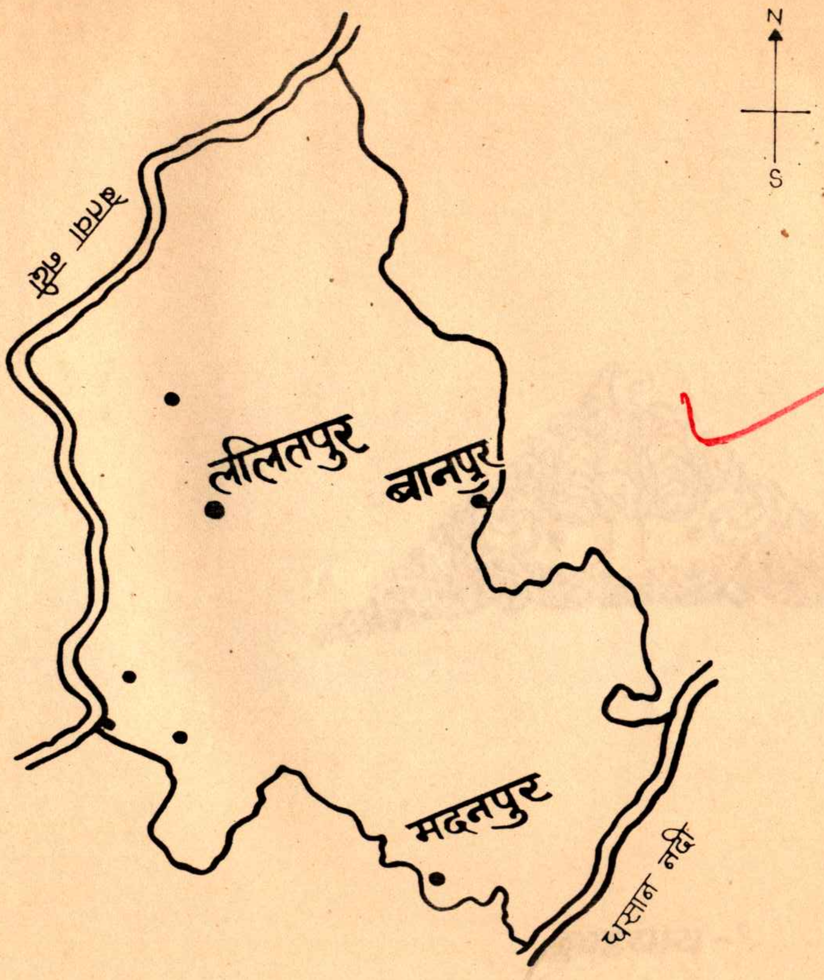

अध्याय-१

:: प्रस्तावना ::

भारतवर्ष के उत्तर प्रदेश राज्य के दक्षिण का भू-भाग जो पुण्य सलिला यमुना, नर्मदा, चम्बल, बेतवा व धसान नाम वाली नदियों के प्रवाहों से परिवेष्टित हैं और नैतिक विग्रहों से जिनकी सीमाएँ समय-समय पर विस्तृत तथा संकुचित होती रही हैं। विंध्याचल के सुन्दर शिखरों से परिपूर्ण यह विंध्यक्षेत्र तपोभूमि रहा है। गौंड, कोल और निषादों ने इसी भू-भाग पर सर्वप्रथम दस्यु को विजय कर रणचण्डी की प्यास बुझाई थी। भगवान श्रीराम ने अपनी विषम परिस्थितियों में इसी भू-भाग में, चित्रकूट में आकर निवास किया था। श्रीकृष्ण भगवान के प्रतिद्वन्दी शिशुपाल की शैशव क्रीड़ा भूमि चन्देरी नगरी ही थी। नागवंश की राजधानी पद्मावती (पवाया) इसी भू-भाग पर अवस्थित थी। मौर्य वंशीय अशोक, शुंगवंशीय पुष्यमित्र, गुप्तवंशीय समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त तथा चन्देलवंशीय चन्द्रवर्मन से लेकर परमर्दी तक की वीरोचित लीलाओं व कलात्मक अभिरूचि की रंगभूमि यहीं रही है। उत्तरीय भारत और दक्षिणापथ का कटिबंध होने के कारण ऐसा कोई सार्वदेशिक परिवर्तन हो ही नहीं सका, जिसका मुख्य अभिनय इस भूमि पर न हुआ हो। शिशुपाल के समय में "चेदि", चन्देलों के समय में "जेजाकभुक्ति" कहलाने वाला यह प्रदेश विन्ध्येलखंड मुख-सुख के माध्यम से बुन्देलखंड कहलाया।

पुरातात्विक, सांस्कृतिक व कलात्मक वैभव की दृष्टि से यह भू-भाग अत्यन्त सम्पन्न रहा है। खजुराहो, देवगढ़, महोबा, कालिंजर, सिरोन खुर्द, मदनपुर, बानपुर जहाँ एक ओर मूर्तिकला के अद्वितीय दृष्टान्त रहे हैं, वहीं मदनपुर, ओरछा, दतिया, टोड़ी फतहपुर, टहरौली, बानपुर अपनी चित्रकला के लिए भी उतने ही दृष्टव्य हैं। सदैव संस्कृति व धर्म की रक्षा के निमित बुन्देलखंड युद्ध लड़ता रहा है। विधर्मियों के आक्रमणों से यहाँ के विष्णु, शिव और जैन तीर्थंकरों के प्राचीन मन्दिर जीर्ण-शीर्ण हो गए हैं, किन्तु उनका स्थायित्व आज भी सुरक्षित है।

नव-निर्मित जिला ललितपुर जो पहले झाँसी जनपद के अन्तर्गत ही आता था । झाँसी बम्बई रेलवे लाईन पर स्थित है । प्राचीन काल से ही यह गुप्त साम्राज्य एवं चन्देलों तथा उत्तरोत्तर काल में वीर बुन्देलों की शौर्य गाथा एवं 1857 की क्रांति में वीर मर्दन सिंह के साम्राज्य की कार्यस्थली रही है । वास्तव में वीर मर्दन सिंह की शौर्य गाथा भी मेरे इस कार्य का प्रेरणा स्त्रोत बनी । मर्दन सिंह 1857 की क्रान्ति के ऐसे योद्धा हुए हैं, जिन्हें आज के इतिहास ने विस्मृत कर दिया है । इस वीर योद्धा ने आजादी के परचम को सदैव अमर रखने के लिए अपनी उसी संस्कृति को न्योछावर कर दिया, जिसके वे पोषक बने रहे थे । स्थानीय किवदन्ती व आजादी का इतिहास इसका साक्ष्य है कि क्रान्ति की जो चिंगारी मेरे शहर मेरठ से उठी थी, उसने आजादी के लिए पाँच सौ कि0मी0 दूर बानपुर व मदनपुर में आग का तूफान उठाया, यही बात मुझे इस कार्य के लिए निरन्तर प्रेरित करती रही कि मेरठ से मदनपुर तक जो इतिहास वीर शहीदों ने अपने लहू से इस माटी पर लिखा और जो अंधकार में खो रहा है उसे मैं एक बार फिर एकत्रित करूँ, तथा पुनः मदनपुर व बानपुर को मेरठ से जोड़कर उस इतिहास के एक स्वर्णिम पृष्ठ को (जो पहले से ही शहीदों के खून से लिखा हुआ है) चमका दूँ तथा कला का विद्यार्थी होने के नाते उस कला धरोहर को संग्रहीत करके संसार के सामने उजागर कर दूँ ।

इस क्षेत्र में छठीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक शौर्य गाथा के साथ छैनी का संगीत भी पत्थरों हृदय पर अपने काल का राग छेड़ता रहा है । जिला मुख्यालय के पूर्व में एक ही पट्टी पर स्थित मदनपुर एवं बानपुर मूर्तिकला एवं चित्रकला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । एक ओर मदनपुर में 12वीं शताब्दी की भित्ति-चित्रकला के उदाहरण (जो उत्तरी भारत में इस काल की भित्ति कला के एक मात्र अवशेष हैं तथा जिनमें समस्त भारत में सर्वप्रथम पंचतन्त्र की कथाओं के वर्णन चित्रित किये गये हैं) प्राप्त हैं । तो वहीं बानपुर के किले

तथा मन्दिर में बुन्देली भित्ति चित्रकला पद्धति के उत्तम उदाहरण प्राप्त होते हैं ।

मदनपुर में चन्देल कालीन ब्राह्मण तथा बानपुर में लगभग 10वीं शताब्दी में निर्मित जैन मन्दिर में उत्कीर्ण देवी - देवताओं की मूर्तियां प्रतिमा शास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । किसी क्षेत्र विशेष की संस्कृति उसकी प्राचीनता व सामाजिक समृद्धि का दर्पण होती है । इस क्षेत्र की समृद्ध संस्कृति का दर्शन प्रत्येक गांव में मिलता है, यहां का रहन-सहन, रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार, व्रत-पूजन, गीत-संगीत तथा कला का दिव्य-दिग्दर्शन इस आधुनिक युग में भी प्रत्येक ग्राम में दृष्टिगोचर होता है । यहां लोक गीतों में सदैव रसमय जीवन का अथाह समुद्र लहराता है, जो जन-जीवन में अलौकिक सौन्दर्यपूर्ण माधुर्य का सृजन करके सुख और शान्ति प्रदान करता है । लोकगीत व लोक कला उसकी संस्कृति का द्योतक होते हैं । उसके चरित्र और शौर्य का मनोवैज्ञानिक तत्व बड़ी सूक्ष्मता से छिपा रहता है, जो किसी भी अध्ययन व चिन्तन शील व्यक्ति को दर्शित हो सकता है ।

लेकिन अभी तक इस क्षेत्र विशेष की कला एवं संस्कृति का ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परिपेक्ष्य में सांगोपांग तथा विवेचनात्मक अध्ययन नहीं हो पाया है । मेरा यह अध्ययन इन दो केन्द्रों मदनपुर व बानपुर की चित्रकला व मूर्तिकला को प्रकाश में लाने का प्रयास है जो अभी तक अछूता रहा है ।

मदनपुर - बानपुर

अध्यावधि शोध कार्य :-

समय-समय पर विभिन्न विद्वानों व सामाजिक कार्य-कर्ताओं द्वारा जो कार्य किया गया, वह निम्न प्रकार है ।

1- अलेक्जेण्डर कनिंघम :-

भारत सरकार को ओर से ~~सर्वप्रथम~~ 1874-75, 76-77 में कनिंघम महोदय ने अब तक प्राप्त सूचनाओं अनुसार सर्वप्रथम इस क्षेत्र का सर्वेक्षण किया । उनकी रिपोर्ट के अनुसार यहाँ (मदनपुर ग्राम में) एक जैन मन्दिर, एक बारादरी (जिसमें शिलालेख हैं) आदि का वर्णन किया है ।[1] यह उस समय तक का सबसे प्रमाणिक अध्ययन है ।

2- पूर्ण चन्द मुखर्जी :-

सन् 1899 में श्री मुखर्जी ने इन क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया । उन्होंने अपनी पुस्तक में मदनपुर[2] तथा बानपुर[3] के स्थापत्य, मूर्तिशिल्प तथा चित्रकला[4] पर अच्छा प्रकाश डाला है ।

1- अलेक्जेण्डर कनिंघम - आ० सर्वे० रि० टूर्स इन बुन्देलखंड मालवा (पु०इ०बु०हा० 1966, पृष्ठ 98-100) (1874-75-76-77)

2- पी०सी० मुखर्जी - दा० रि०आन दा एन्टिक्विटीज इन दा डिस्ट्रिक्ट आफ ललितपुर, जिल्द प्रथम, 31 मई, 1899, पु०इ० बु०हा० 1972, दिल्ली, पृ० 37

3- वही, पृ० 30

4- वही, पृ० 27

3- उ0प्र0 डिस्ट्रिक्ट गजेटियर झाँसी :-

ईशा बसन्ती जोशी ने उ0प्र0 डिस्ट्रिक्ट गजेटियर झाँसी सन् 1965 में मदनपुर - बानपुर[5] का संक्षिप्त वर्णन किया है ।

5- ईशा बसन्ती जोशी, उ0प्र0 डिस्ट्रिक्ट - गजेटियर झाँसी, सन् 1965, पृ0 328, 352

सामाजिक प्रयत्न

1- **भा0 दि0 जैन तीर्थ समिति :-**

भा0 दि0 जैन तीर्थ क्षेत्र-कमेटी ने इस क्षेत्र का प्रबन्ध व जीर्णोद्धार किया ।

2- **श्री दि0 जैन अति0 क्षेत्र कमेटी मदनपुर :-**

इस क्षेत्र के जैन समाज में अपने सतत् प्रयत्नों से एक समिति का गठन किया[1] तथा इस क्षेत्र का प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर इस क्षेत्र के जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया ।

3- **पं0 विमल कुमार सौंरया शास्त्री :-**

सौंरया जी ने "कला तीर्थ मदनपुर" नाम लघु पुस्तिका लिखकर इस क्षेत्र की जैन कला वैभव पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयास किया है ।

1- श्री दि0 जैन अति0 क्षेत्र कमेटी मदनपुर उ0प्र0 शासन रजि0 एक्ट सं0 21, 1860 के अन्तर्गत 23-6-1976 किया गया, उनके पंजीकरण सं0 2462/35787 है ।

सन् 1956 में कलकत्ता से प्रकाशित "आर्ट ऑफ चन्देल" ओ०सी० गाँगुली व गोस्वामी, सन् 1968 । हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित "चन्देल कालीन बुन्देलखंड का इतिहास" लेखक डा० अयोध्या प्रसाद पाण्डेय, दिल्ली से प्रकाशित "चन्देल आफ जेजाक भुक्ति एण्ड देयर टाईम्स" लेखक आर०के० दीक्षित आदि ने स्थान-स्थान पर मदनपुर क्षेत्र पर टिप्पणियाँ लिखी हैं ।

एक छोटी पुस्तिका बानपुर क्षेत्र पर श्री मँडवैया जी द्वारा लिखित "बुन्देलखंड का विस्तृत वैभव, बानपुर" भी बानपुर का मार्ग दर्शक है । बाबू वृन्दावन लाल वर्मा जी द्वारा रचित उपन्यास "कचनार" व "रानी लक्ष्मीबाई" में भी मुझे मदनपुर व बानपुर पर कुछ टिप्पणियाँ पढ़ने को मिली ।

शोध का महत्व

किसी देशकाल के इतिहास के निर्माण में उसकी कला व संस्कृति का बहुत बड़ा योगदान रहता है । हमारे स्वर्णिम इतिहास का आज भी बहुत बड़ा भाग काल के अंधकार में विलीन है । अपना जो कुछ इतिहास हम जानते हैं उनमें किन्हीं भी कारणों से हो सही जो कुछ गलत है उसे सुधारने की भी बहुत आवश्यकता है । समय-समय पर इसके लिए शोध कार्य होते रहे हैं और इतिहास के नये-नये पृष्ठ खुलते रहे हैं । मेरा यह शोध कार्य भी ऐसा ही एक प्रयास है । मदनपुर व बानपुर का इतिहास यहाँ की मूर्तिकला व चित्रकला तथा संस्कृति अभी भी उपेक्षित तथा विस्मृत पड़ी है । इस ऐतिहासिक धरोहर को प्रकाश में लाना ही मेरा उद्देश्य है । दोनों ही स्थानों का पौराणिक काल से ही महत्व रहा है । यहाँ की माटी ने अपने विकास के अनेकों आयाम देखें हैं, तथा अनेकों बार अपने को आहुति बनाकर भी जीवित रखने का प्रयास किया है । चन्देलकाल से लेकर बुन्देलकाल तक की असीमित मूर्तिकला व चित्रकला इस क्षेत्र में यहाँ और बिखरी पड़ी है । मैं अपने प्रयत्न से उस धरोहर को प्रबुद्ध समाज के सामने उपस्थित कर रहा हूँ । हमारी आजादी में 1857 की क्रांति का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । मैं जिस माटी पर पैदा हुआ हूँ, क्रान्ति का इतिहास यहाँ से शुरू हुआ है । लेकिन उस क्रांति में जितना योगदान मदनपुर व बानपुर का है शायद किसी क्षेत्र का नहीं जिन्होंने अपना धन, राजवैभव अपनी कला संस्कृति सभी कुछ आजादी की आग में स्वाहा करके इस परचम को ऊपर उठाये रखा, हम आज उस इतिहास को भूल गये हैं वहाँ के योगदान को भूल गये हैं । मैं उस महत्वपूर्ण स्वर्णिम इतिहास के पृष्ठ को अपने इस प्रयास से प्रबुद्ध समाज के सामने उजागर कर रहा हूँ ।

शोध प्राविधि - एक संक्षिप्त विवरण

शोध योजना का प्रथम सोपान जैसे ही पूर्ण हुआ, सामने मदनपुर व बानपुर की चित्रकला व मूर्तिकला का विस्तृत क्षेत्रफल फैला हुआ था, जिसमें से मुझे अपने संग्रह व अध्ययन के लिए फोटोग्राफी करनी थी, लेकिन इनमें कौन-सी मूर्ति हीरा है तथा कौन-सी कोयला, इसको पहचानने के लिए सर्वप्रथम पुस्तकों की आवश्यकता थी । सबसे पहले जो पुस्तक मेरे हाथ में आयी वह थी "देवगढ़ की जैन कला", जिसका सम्बन्ध कहीं न कहीं मेरे शोध क्षेत्र से ही था । अनेक पुस्तकालयों जिनमें मेरठ विश्वविद्यालय का पुस्तकालय, पुरातत्व सर्वेक्षण दिल्ली का पुस्तकालय, राष्ट्रीय संग्रहालय का पुस्तकालय आदि में अध्ययन करने के पश्चात तथा डा० गोपीनाथ राव व डा० बी०सी० भट्टाचार्य आदि की पुस्तकें पढ़ने के पश्चात मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि बिना फोटोग्राफी के आगे का अध्ययन कठिन है । अतः मैंने दो-बार समय-समय पर जाकर अपने इस क्षेत्र की विस्तृत फोटोग्राफी की है, तथा पूरे क्षेत्र के लगभग पाँच सौ फोटोग्राफ इकट्ठा किये हैं । इसी मध्य मुझे झाँसी संग्रहालय द्वारा आयोजित "बुन्देलखंड की कला एवं पुरा संस्कृति" संगोष्ठी में उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । वहाँ टैगोर प्रोफेसर डा० के०डी० वाजपेयी, डा० बी०बी० लाल, डा० एन०पी० जोशी, डा० आर०सी० अग्रवाल, डा० आर०एस० शर्मा आदि विद्वानों के विचार सुनने का अवसर प्राप्त हुआ, जो मेरे इस अध्ययन में बहुत सहायक हुआ, यहीं इन विद्वानों से व्यक्तिगत अपने इस क्षेत्र पर विचार-विमर्श करके मैंने अपनी समस्याओं का समाधान किया । कुल मिलाकर मैंने अपने क्षेत्र के पाँच सर्वे किये हैं, जिनमें प्रथम तीन में तो मुझे श्रद्धेय गुरुवरों का सहयोग मिला है । जबकि शेष दो मैंने स्वयं अपने अनुभव के आधार पर किये हैं, तथा स्थानीय बुजुर्गों के अनुभव व इन क्षेत्रों के क्षेत्रीय इतिहासकारों व साहित्यकारों

से विस्तृत विचार विमर्श किया है । अपने सर्वेक्षण में मैंने न सिर्फ मदनपुर - बानपुर का ही भ्रमण किया है, बल्कि ओरछा, दतिया, तालबेहट, गढ़कुण्डार, टोडीफतेहपुर, टहरौली तथा जबलपुर के चौंसठ योगिनी मन्दिर व खजुराहों तथा देवगढ़ की भी यात्रा की है, तथा उन स्थानों की कला व संस्कृति के परिपेक्ष्य में मदनपुर व बानपुर की कला व संस्कृति का अनुशीलन किया है । गढ़कुण्ढार की यात्रा में तो मुझे राजकीय संग्रहालय लखनऊ के वाहन का सहयोग प्राप्त हो गया था, उसके बिना उस दुर्गम मार्ग वाले दुर्ग का भ्रमण अत्यन्त कठिन था । बानपुर के श्री शत्रुघ्न सिंह, तालबेहट के इतिहासकार व साहित्यकार श्री पाठकजी, मदनपुर के एम०एल०ए० साहब आदि ने मुझे इस क्षेत्र के अध्ययन में बहुत सहयोग दिया । डा० पी०सी० मुखर्जी की सर्वेक्षण रिपोर्ट के अध्ययन ने मेरे अध्ययन मार्ग को प्रशस्त करने में बहुत सहयोग दिया । झाँसी राजकीय संग्रहालय के पुस्तकालय से क्षेत्रीय साहित्य व अनेकों दुर्लभ पुस्तकों के अध्ययन से मुझे अपने लेखन को परिमार्जित करने में बहुत लाभ मिला

अध्याय-२

मानचित्र- 3

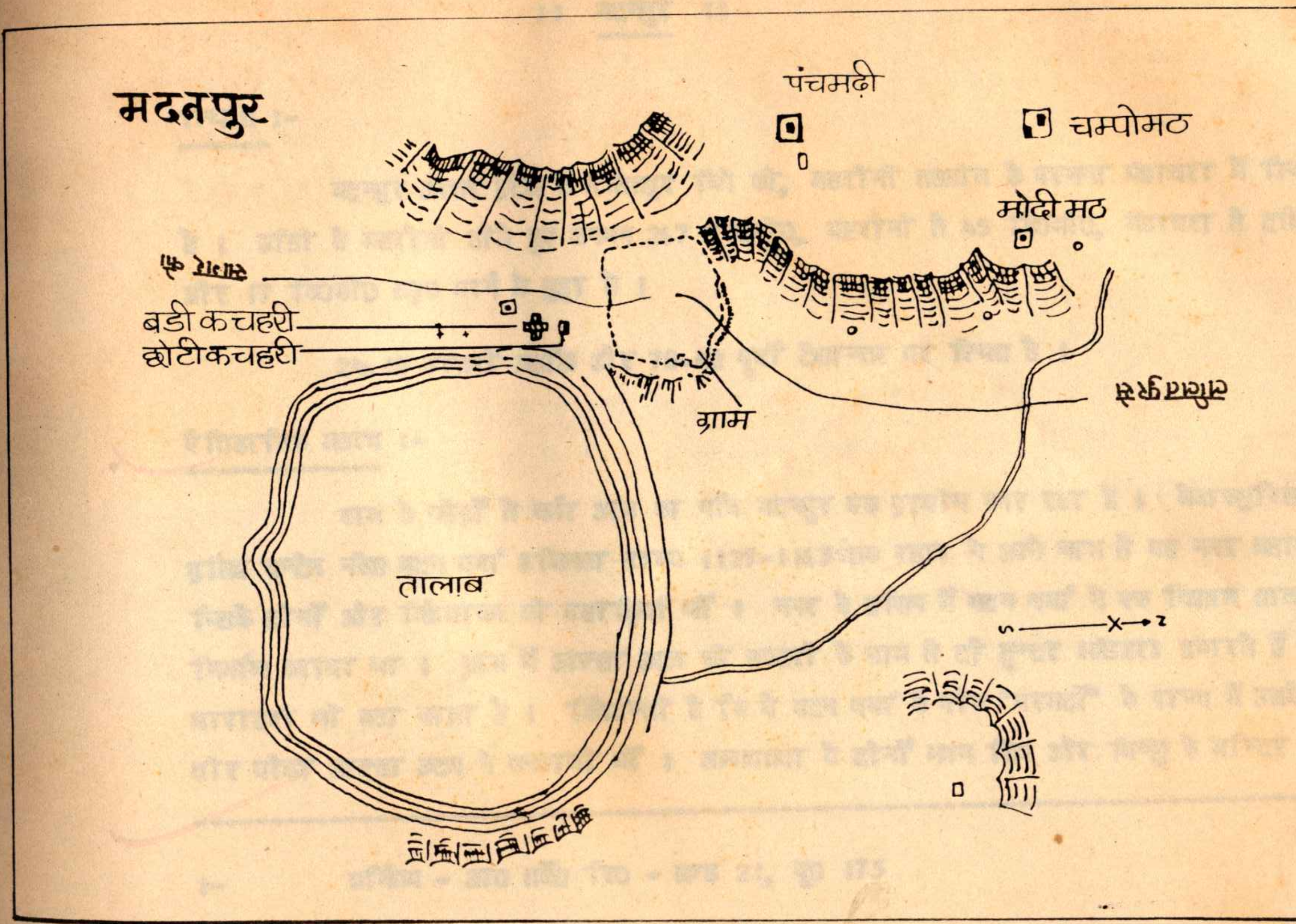

:: मदनपुर ::

स्थिति :-

मदनपुर उत्तर प्रदेश के ललितपुर जिले की, महरौनी तहसील के परगना मँडावरा में स्थित है । झाँसी से महरौनी होते हुए लगभग 267 कि०मी०, महरौनी से 45 कि०मी०, मँडावरा से दक्षिण की ओर 17 कि०मी० सड़क मार्ग से जुड़ा है ।

24.15 उत्तरी अक्षांश और 78.42 पूर्वी देशान्तर पर स्थित है ।

ऐतिहासिक महत्व :-

काल के थपेड़ों से जर्जर आज का गाँव मदनपुर एक प्राचीन नगर रहा है । जैसा कि विदित है प्रसिद्ध चन्देल नरेश मदन वर्मा (जिनका राज्य 1129-1163 ई० तक रहा) ने अपने नाम से यह नगर बसाया था । जिसके दोनों ओर विंध्याचल की पहाड़ियाँ थीं । नगर के दक्षिण में मदन वर्मा ने एक विशाल तालाब का निर्माण कराया था । ग्राम में आल्हा ऊदल की कचहरी के नाम से दो सुन्दर (खंडहर) इमारते हैं । जिन्हें बारादरी भी कहा जाता है । किंवदन्ती है कि ये मदन वर्मा के पौत्र "परमर्दी" के राज्य में उसके दोनों वीर योद्धा आल्हा ऊदल ने बनवायी थीं । सम्भवतया ये दोनों भवन शिव और विष्णु के मन्दिर रहे हैं ।[1]

1- कनिंघम - आ० सर्वे० रि० - खण्ड 21, पृ० 173

छोटी कचहरी, शिव मन्दिर व बड़ी कचहरी, विष्णु मन्दिर रहे हैं ।[1] यहाँ छोटी कचहरी में एक शिलालेख है ।चित्र संख्या - 16। जिससे यह पता लगता है कि दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान में चन्देल राजा परमर्दी को संवत 1239 ।1182 ई0। में हराकर यह राज्य जीत लिया था ।[2] इसी मन्दिर की छत में एक सुन्दर चित्र भी है ।

कनिंघम ने 6 फिट 2 इंच ऊँची एक वाराह मूर्ति का उल्लेख किया है ।[3] जो मदनपुर ग्राम के बाहर पड़ी थी जिसके आसन ।पादपीठ। पर एक बड़ा नाग बना था, वाराह के हाथ पर एक नारी आकृति ।पृथ्वी। की लगभग 2 फिट ऊँची मूर्ति थी । पी0सी0 मुखर्जी ने भी अपने सर्वे रिपोर्ट में इस मूर्ति का उल्लेख किया है[4] व मदनपुर ग्राम के बनाये नक्शे में वाराह मूर्ति का स्थान निर्दिष्ट किया है । मदनपुर के पश्चिम में प्राचीन भवनों के खण्डहर पड़े हैं । जो पाटन या पुरपट्टन नगर के कहे जाते हैं, जिससे प्रतीत होता है कि चन्देलों के काफी पहले से ही यहाँ नगर बसते थे और इस प्राचीन नगर-पट्टन का राजा मंगल सेन या मदनसेन था । आज भी उसी राजा की याद में यहाँ पर स्त्रियाँ व्रत रखती हैं । उन्हीं खण्डहरों में जैन

1- पी0सी0 मुखर्जी - रि0आ0एन्टी0आ0डि ललितपुर, खण्ड-1, पृ0 14
2- कनिंघम - आ0सर्वे0रि0 - खण्ड-10, पृ0 98-99
3- कनिंघम - आ0सर्वे0रि0 - खण्ड -21, पृ0 173
4- पी0सी0 मुखर्जी - रि0आ0ऐन्टी0आ0डि0 ललितपुर, खण्ड-1, पृष्ठ-37

मन्दिर मिलते हैं । जिन्हें पंचमढी, चम्पोमठ तथा मोदी मठ कहते हैं । जिनमें पचमढी व मोदी मठ का अब जीर्णोद्धार हो चुका है । यहाँ पर जैन धर्म से सम्बन्धित अनेकानेक जैन मूर्तियाँ बिखरी पड़ी हैं ।

मदनपुर के पश्चिम में लगभग 4 मील दूर जामनी नदी की घाटी में कुछ प्रागैतिहासिक काल के मूर्तिशिल्प[1] जिसमें पत्थर को काट कर शिवलिंग बनाये गये हैं, जो एक चबूतरे पर हैं, यह स्थान ।पाँडवा। कहलाता है । किंवदन्ती है कि पाँचो पाँडव अपने निष्कासन के समय में कुछ समय यहाँ पर ठहरे थे ।

जैन किंवदन्ती के अनुसार तीर्थंकर मल्लीनाथ व मुनि सुव्रत के मध्य काल में सत्रहवें कामदेव बलराज ।नलराज। अपर नाम मदन कुमार हुए थे । वे बुन्देलखण्ड के गगनचुम्बी वलयाकार पर्वत पर मोक्ष पधारे । वहाँ गगनपुर नगर था, जिसका राजा विघ्नवर्धन था । उसकी रानी का नाम शान्ति देवी था । रानी ने मुनि प्रभाचन्द के उपदेश से पहाड़ पर भगवान शान्तिनाथ की खड्गासन प्रतिमा स्थापित कराई थी । इन्हीं के वंश में आगे निषिद्धपुर नगर में राजा निषधर और रानी विरला देवी से नलराज ।मदन कुमार। का जन्म हुआ था, उनका विवाह कुन्डलपुर के राजा भीमसेन की पुत्री दमयन्ती से हुआ था । पिता के बाद मदनकुमार ने शासन किया । किंवदन्ती है कि इन्हीं मदनकुमार ने मदनपुर नगर बसाया ।

प्राचीन काल में यह नगर मथुरा से पवाया ।पद्मावती। होते हुए सागर के मुख्य वाणिज्य मार्ग

1- पी०सी० मुखर्जी - रि०आ०ऐन्टी०आ०डि० ललितपुर, खण्ड-1, पृष्ठ -38

पर पड़ता था । यही मार्ग अनेक तीर्थ स्थानों से भी जुड़ा हुआ था, इसलिये प्राचीन काल से ही इस नगर का महत्व रहा है ।

एक छोटा शिलालेख, ।चित्र संख्या -7। जो बड़ी कचहरी ।शिव मन्दिर। के एक खम्भे पर खुदा हुआ है, के अनुसार यह भवन भगवान शिव को समर्पित था अर्थात शिव मन्दिर था । कनिंघम ने इस शिलालेख का उच्चारण निम्न प्रकार किया है ।[1]

ओः चन्द्र-शेखर भवानीय,
त्रियाम्बक, त्रिपुरान्तक,
चक्रहा, विधाधर देव,
तुभ्म न्योति प्रानान्तक सदा ।

यहाँ चन्द्रशेखर का अर्थ अर्धचन्द्र से, भवानीय का अर्थ "भवानी" ।उमा। के पति "त्रियाम्बक" त्रिनेत्र वाले त्रिपुरान्तक त्रिपुरा राक्षस को जीतने वाले, ये सब नाम "शिव के नाम के पर्यायवाची हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह मन्दिर शिव को समर्पित था ।

एक अन्य शिलालेख जो इसी भवन के एक अन्य स्तम्भ पर खुदा हुआ है, में संवत् 1239 स्पष्ट उत्कीर्ण है, जिसके अनुसार अन्ना राजा के पौत्र व सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वी राज चौहान ने जेजाकभुक्ति देश के राजा परमर्दी को संवत् 1239 में जीता था । इस प्रकार का उल्लेख छोटी कचहरी ।विष्णु मन्दिर। में उत्कीर्ण एक अन्य शिलालेख ।चित्र संख्या-16। में भी है । इस लेख से यह स्पष्ट होता है कि चन्देल राजा परमर्दी देव के समय में यह देश ।जेजाकसुक्ति। या ।जेजाकभुक्ति। कहलाता था ।

1- कनिंघम - आ०सर्वे० रि० खन्ड-10, पृष्ठ-99

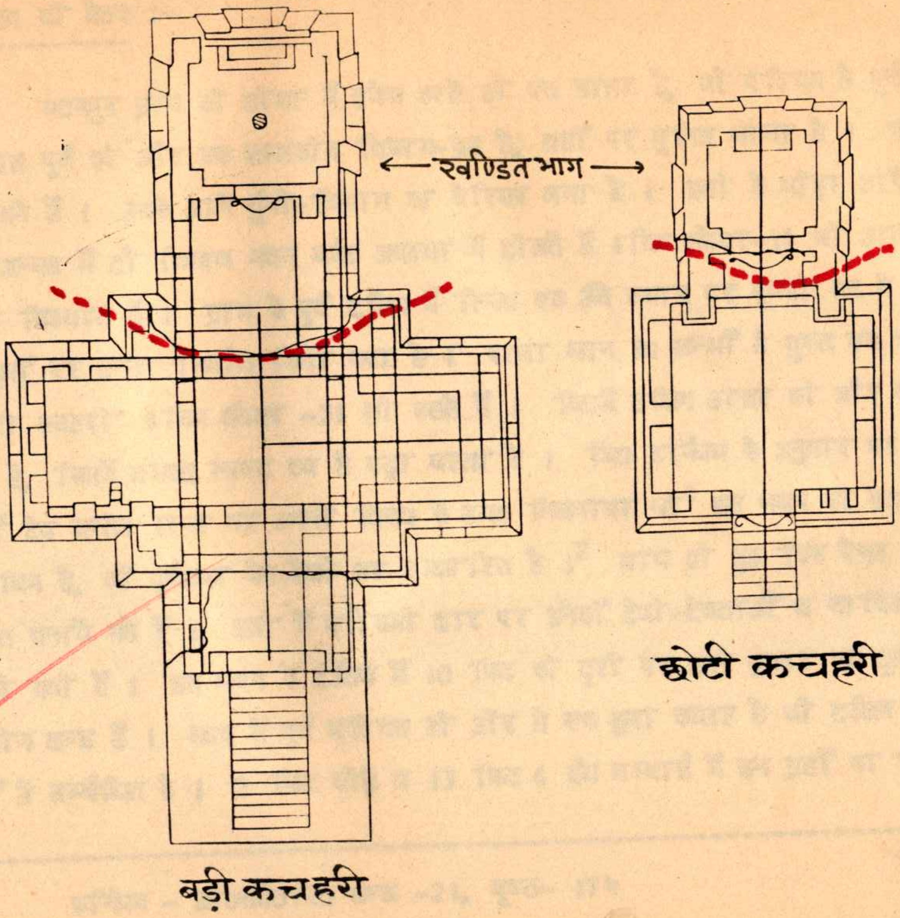

तलछन्द

आल्हा उदल की बैठक :-

मदनपुर ग्राम की सीमा में प्रवेश करते ही एक नाला है, जो पश्चिम से पूर्व की ओर बहता है। इसी के पास पूर्व की ओर एक शासकीय विश्राम-ग्रह है, वहीं पर पुलिस थाना है। थोड़ा आगे ही गाँव के मकान बने हैं। उसके आगे चुंगी-विभाग का बेरियर लगा है। इसी के थोड़ा आगे चलने पर शान्त-उतंग पर्वतों के अन्चल में दो विशाल भवन जर्जर अवस्था में दीखते हैं।चित्र संख्या-1। जो आल्हा-उदल की बैठक के नाम से विख्यात हैं। ग्राम के पूर्व दक्षिण में स्थित एक ऊँचे स्थान पर पृथ्वी तल से 10 फिट ऊँची पत्थरों की एक कुर्सी पर इनका निर्माण किया गया है। पहला भवन 10 खम्भों से युक्त एक चौकोर खुली बैठक है। इसे "छोटी कचहरी" ।चित्र संख्या -3। भी कहते हैं। जिसमें दक्षिण उत्तर की ओर लगे पत्थर पर एक शिलालेख है, जिसमें सम्बत् स्पष्ट रुप से पढ़ा जाता है। मि० कनिंघम के अनुसार यह लेख पृथ्वीराज चौहान ने परमर्दी देव चन्देल राजा पर अपनी विजय के समय लिखवाया था[1] इस भवन की छत में एक बहुत सुन्दर भित्ति चित्र है, जो पूर्णतया जैन शैली पर आधारित है।[2] साथ ही कुछ चित्र पैनल पंचतन्त्र की कहानी पर आधारित बनाये गये हैं। इसी में पश्चिमी द्वार पर अनेकों देवी-देवताओं व नायिकाओं की सुन्दर मूर्तियाँ अंकित की गयी हैं। इस भवन के दक्षिण में 10 फिट की दूरी पर इसी प्रकार का दूसरा भवन बना हुआ है, जिसमें तीन खण्ड हैं। मध्य में पूर्व पश्चिम की ओर से एक खुला कमरा है जो दक्षिण व उत्तर की ओर बने हुए ग्रहों से सम्बंधित है। 7 फिट चौड़े व 13 फिट 6 इंच लम्बाई में इन ग्रहों का निर्माण किया गया है।

1- कनिंघम - आ०सर्वे०रि० खण्ड -21, पृष्ठ- 174

2- आनन्द कृष्ण - दा मालवा पेन्टिंग, पृ० - 3

प्रत्येक ग्रह के ऊपर छत के रूप में एक ही पत्थर का उपयोग किया गया है, जो 10 इंच मोटा है । इस पत्थर पर सुन्दर आकार की पच्ची कारी से युक्त बेल-बूटे बने हैं । आस पास की बैठकों में तीन तरफ 2 फिट 8 इंच चौड़े व 10 फिट लम्बे बेंचनुमा पत्थर लगे हैं । इन पत्थरों में खाँचा देकर 1 फिट 10 इंच ऊँची व 3 इंच मोटी और लगभग 5 फिट लम्बे पत्थरों की पीठिका बाहर की दीवारों के समानान्तर लगी हैं । मध्य के ग्रह के चारों दिशाओं पर तीन-तीन स्तम्भ खड़े हैं । पूर्व दिशा से इन बैठकों में आने के लिए 10 सीढ़ियाँ चढ़ना होता है । इन कमरों के सभी खम्भे विशालकाय हैं, जिनके ऊपर भारवाहक बनाये गये हैं । प्रत्येक खम्भा आकार में एक दूसरे से समानता लिए हुए है । इन पर शिलालेख अंकित हैं, जिन्हें मि0 कनिंघम ने स्पष्ट रूप से पढ़ा है ।[1] मध्य कमरे की छत बीच से गोल कटी हुई है । (चित्र संख्या -4) जिसमें कुछ मूर्तियाँ बनी हैं । सम्भवतया पहले कभी इसके ऊपर शिखर रहा होगा । कनिंघम ने इस भवन की ऊँचाई का अनुमान 100 फिट बताया है ।

इन भवनों से दक्षिण में लगभग 50 मीटर आगे एक विशाल नन्दी (चित्र संख्या -2) पड़ा है, जिसकी लम्बाई लगभग 45 इंच व ऊँचाई 35 इंच है ।[2] भवनों के चारों ओर अनेक विशाल कलात्मक प्रस्तर खण्ड व मूर्तियाँ पड़ी हैं, जो सम्भवतया भवन के पूर्ण होने पर इन्हीं का भाग रही होंगी ।

1- कनिंघम - आ0सर्वे0रि0 , खण्ड -10, पृष्ठ-99

2- कनिंघम - आ0सर्वे0रि0, भाग-21, पृष्ठ-173

ग्राम का जैन मन्दिर :-

मदन पुर ग्राम में एक शिखर युक्त विशाल जैन मन्दिर है । इसमें एक वेदिका है । शिखर व भवन जीर्ण-शीर्ण हो रहा है । अन्दर 24 पत्थर के खम्भों पर आधारित पूरे मन्दिर की छत है । मध्य के छः खम्भों के बीच दीवारें खड़ी करके मन्दिर का गर्भग्रह बना हुआ है । गर्भग्रह के ऊपर मन्दिर का लगभग 35 फिट ऊँचा शिखर बना हुआ है । इसी गर्भग्रह में वेदी बनी हुई है । वेदी प्राचीन समय की ही निर्मित है । इसमें किसी प्रकार का भी नव निर्माण नहीं किया गया है । भवन के उत्तर में एक द्वार है, जिसे अब बन्द कर दिया गया है । एक द्वार दक्षिण की ओर है । इसके आगे 10 खम्भों का खुला दालान बनाया गया है । मन्दिर के अन्दर वेदिका के चारों ओर एक परिक्रमा पथ है, लेकिन यह बहुत संकीर्ण व अंधकारमय है । मन्दिर की वेदिका में कुल 15 मूर्तियाँ हैं । ।चित्र संख्या -5।। इनमें 7 पत्थर की हैं, जिनमें 6 मूर्तियाँ सफेद संगमरमर की पद्मासन मूर्तियाँ हैं । जिनमें एक प्रतिमा पद्मप्रभु की है, जिस पर सं0 1548 पड़ा है । एक सहस्त्र फणावली युक्त भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा है, जिस पर वैशाख शुक्ल सम्बत 1595 पड़ा हुआ है । शेष दो प्रतिमाऐं 17वीं शताब्दी की व दो 18वीं शताब्दी की हैं । एक छोटी सी प्रतिमा काले पत्थर की है जो किसी तीर्थंकर भगवान की खड्गासन प्रतिमा है । शायद यह कहीं खुदाई में प्राप्त हुई हो और यहाँ बाद में रखदी गयी है । इसके अतिरिक्त यहाँ 8 प्रतिमाऐं धातु की हैं, जिनमें पाँच प्रतिमाऐं फणावली युक्त हैं । ये भी सभी प्रतिमाऐं पद्मासन में हैं तथा सभी पीतल से निर्मित की गयी हैं । दो प्रतिमाऐं भगवान महावीर स्वामी की हैं, जिनमें सिंहासन पर सिंह बना हुआ है । इन प्रतिमाओं में 2 सोलहवीं शताब्दी, 1 सत्रहवीं शताब्दी व 3 अठारहवीं शताब्दी की निर्मित हैं । सभी प्रतिमाओं पर प्रशस्तियाँ अंकित हैं ।

पंच मढ़ी :-

ग्राम से उत्तर की ओर पर्वत श्रेणी पर लगभग ग्राम से आधा मील की दूरी पर यह मन्दिर स्थित है।[1] (चित्र संख्या -30) ग्राम व मन्दिर के बीच में सूखा बरसाती तालाब नुमा नाला है। यहाँ चबूतरों पर पाँच मठ (मन्दिर) बने हैं इसलिए इसे पंचमढ़ी कहा जाता है। चबूतरे के चारों कोनों में चार तथा एक मध्य में मठ बना हुआ है। जिनमें प्रत्येक में एक-एक खड्गासन में तीर्थंकरों की देशी पत्थर से निर्मित लगभग 5 - 5 फिट की प्रतिमाएँ स्थापित हैं, जो ऊँची दीवार से मिलाकर खड़ी की गयी हैं। प्रत्येक मूर्ति की पादपीठ पर शिलालेख अंकित है। चारों मठों की ऊचाई 15 - 15 फिट व बीच के मठ की ऊँचाई लगभग 20 फिट है। सभी मठों के द्वार पूर्व की ओर हैं। मध्य के मठ में महावीर स्वामी तथा शेष चार में शान्तिनाथ, चन्द्र प्रभु, वासु पूज्य व नेमीनाथ की प्रतिमाएँ हैं।[2] दि0 जै0 अति0 क्षे0 मदनपुर ने इस पंचमढ़ी का जीर्णोद्धार कर दिया है, जिसमें मुख्य मूर्ति को उसी स्थान पर रखकर चारों ओर नयी दीवारों का निर्माण कर दिया गया है तथा प्रत्येक द्वार पर लोहे का द्वार लगा दिया गया है। इस पंचमढ़ी के सामने लगभग 10 फिट पूर्व की ओर भगवान शान्तिनाथ का मन्दिर है (चित्र संख्या -31) जो जमीन तल से 3 फुट ऊँचे आसन पर स्थित है। यह 28 फिट ऊँचा 18 फिट लम्बा व 13 फिट चौड़ा है। मन्दिर के शिखर में एक कोठरी है। मन्दिर का मूल द्वार पश्चिम की ओर (पंचमढ़ी के सामने) है। जिसके सामने 13 वर्गफुट का चबूतरा है। जिस पर पत्थर के पायों पर बरामदा बना हुआ है। मन्दिर का मुख्य प्रवेश

1- कनिंघम - आ0सर्वे0 रि0 खण्ड-21, पृष्ठ - 172

2- कनिंघम ने इनमें से तीन को आदिनाथ, चन्द्रप्रभा, सम्भवनाथ कहा है जो गलत प्रतीत होता है। कनिंघम - आ0सर्वे0 खण्ड-21, पृष्ठ-172

द्वार 8 फिट ऊँचा व 4 फिट चौड़ा है । द्वार के ललाट बिम्ब में एक पद्मासन मूर्ति है । द्वार से गर्भगृह लगभग 4 फिट गहरा है । इसमें भगवान शान्ति नाथ की 10 फिट ऊँची प्रतिमा है, जो खड्गासन मुद्रा में है । यह खण्डित है, जिसे घुटने के पास से जोड़ा गया है । इस प्रतिमा के नीचे एक पत्थर लगाया गया है । उसके नीचे एक सिंहासन है, जिस पर सिंह अंकित है तथा बीच में भगवान शान्ति नाथ का चिन्ह मृग बना है । वहाँ एक लेख है, जो बहुत अस्पष्ट है और चूने से पोत दिया गया है । शान्तिनाथ की मूर्ति के हाथों के नीचे दो छोटी प्रतिमाएँ हैं, जिनका एक-एक हाथ अपने पैर पर तथा एक-एक हाथ ऊपर की ओर उठा हुआ है । इसी चार दीवारी के अन्दर एक नवनिर्मित मन्दिर है, जिसमें शिखर नहीं है । इसमें भगवान आदि नाथ की खड्गासन में लगभग 12 फिट ऊँची मूर्ति है (चित्र संख्या -33) । इस मन्दिर के द्वार के ललाट बिम्ब पर भी एक पद्मासन प्रतिमा है । कथनानुसार भगवान आदिनाथ की यह प्रतिमा किसी दूसरे स्थान से लाकर यहाँ स्थापित की गयी है । मन्दिर के बाहर एक बरामदा है, जिस पर टीन पड़ी हुई है ।

पंचमढ़ी, शान्तिनाथ मन्दिर व आदिनाथ चैत्यालय का चारों ओर का क्षेत्रफल लगभग 400 वर्ग गज है, जिसकी दि0 जैन क्षेत्र मदन पुर ने चार दीवारी कर दी है तथा फर्श पक्का बनवा दिया गया है । इसी चार दीवारी में अनेक खण्डित मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं । (चित्र संख्या - 38) इन सभी मूर्तियों पर लेख खुदे हुए हैं, जिनके अनुसार इनका काल निर्धारण 12 शताब्दी से लेकर सम्भवत 16वीं शताब्दी तक है ।

मोदीमठ :-

पंचमढ़ी से लगभग 1 कि0मी0 आगे पहाड़ी पर एक मठ है । जिसे मोदी मठ कहते हैं । [चित्र संख्या -40] इसका मुख्य द्वार पूर्व की ओर है । अब से कुछ समय पूर्व तक इसका शिखर जीर्ण शीर्ण अवस्था में पड़ा था । अन्दर का गर्भग्रह भी बहुत खराब अवस्था में था । मन्दिर के द्वार के सामने कोई छायावान नहीं था, मठ की ऊँचाई 25 फिट व चौड़ाई लगभग 6 फिट थी । इसके अन्दर तीन मूर्तियाँ हैं । मध्य में शान्ति नाथ भगवान की 7 फिट ऊँची प्रतिमा है तथा दायें कुन्थुनाथ व बायें अरहनाथ स्वामी की लगभग 5 - 5 फिट ऊँची प्रतिमाएँ हैं । ये तीनों प्रतिमाएँ एक आसन पर खड़ी हैं । अर्थात यह भगवान शान्ति नाथ, कुन्थुनाथ, अरह नाथ की त्रिमूर्ति हैं । मन्दिर का द्वार 6 फिट ऊँचा व 4 फिट चौड़ा है । प्राप्त आँकड़ों के अनुसार कभी यहाँ चारों तरफ 4 मठ होने के अवशेष प्राप्त थे । यहीं पर भगवान ऋषभदेव की 8 फिट ऊँची खड्गासन मूर्ति एक वृक्ष की जड़ के आधार से झुकी हुई खड़ी थी, जो अब यहाँ से उठाकर पंचमढ़ी के नवनिर्मित आदिनाथ चैत्यालय में स्थापित है । शेष तीन मठों के अब कोई चिन्ह नहीं हैं । अभी 3, 4 वर्ष पूर्व दि0 जैन अति0 क्षेत्र मदनपुर कमेटी ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करा दिया है । जिसमें इस मठ के चारों ओर की पुरानी दीवार के स्थान पर नयी दीवार व शिखर बना दिया गया है । त्रिमूर्ति को उसी स्थान पर रखा गया है, जहाँ वह थी, लेकिन बाह्यमठ एक प्रकार से नवनिर्मित कर दिया गया । द्वार के सामने एक बरामदा बना दिया गया है जो पहले नहीं था । गर्भग्रह लगभग 3 फिट गहरा है । पूरे क्षेत्र की एक चार दीवारी करा दी गयी है । इस एक मन्दिर के अतिरिक्त अब यहाँ कोई और अवशेष प्राप्त नहीं हैं । कमेटी की ओर से अब नित्य प्रति पूजा होती है । तीनों मूर्तियों के नीचे अभिलेख प्राप्त हैं, जिसमें तिथि स्पष्ट पढ़ी जा सकती है । इसके अनुसार इनकी स्थापना फाल्गुन शुक्ल 4 सम्वत 1688 में हुई थी ।

चम्पोमठ :-

पंचमढ़ी से लगभग 2 कि0मी0 आगे घने जंगल में अब दो खण्डित मठ मिलते हैं जिन्हें चम्पोमठ कहते हैं। (चित्र संख्या -42) यह मठ प्राचीन भारतीय कला का उत्तम उदाहरण है। आज इसका शिखर जीर्ण - शीर्ण है। लेकिन यह 11वीं 12वीं शताब्दी की मूर्तिकला व वास्तुकला के उत्तम नमूने हैं। इस मठ तक जाने के लिए बीहड़ जंगल व झाड़-झाड़ियों के बीच से होकर जाना पड़ता है। इस मठ के चारों ओर पत्थर के कटावदार तोरण व मूर्तियों के अवशेष पड़े हैं। इस मठ की कुर्सी जमीन तल से 4 फिट ऊँची है। मठ के सामने द्वार से मिला हुआ चार विशाल पायों पर खुला पत्थर का बरामदा है। इसका द्वार नाना प्रकार के देवी-देवताओं, नवग्रह, पशु-पक्षियों तथा अन्य मूर्तियों से सुसज्जित तत्कालीन कला से युक्त है। द्वार के सिरदल पर नवग्रह व यक्षिणियों की मूर्तियाँ हैं। उसके नीचे की पंक्ति में पद्मासन में तीर्थंकरों की मूर्तियाँ हैं। द्वार स्तम्भों पर विभिन्न मुद्राओं में देव-देवियाँ बने हैं। नीचे की ओर गंगा व यमुना की सुन्दर मूर्तियाँ हैं। उनके बराबर में द्वारपाल हैं तथा ऊपर की ओर नाग कन्याएँ बनी हैं। देहली पर सुन्दर हाथी व सिंहों का अंकन है।

मन्दिर का मुख पूर्व दिशा की ओर है, जिससे गर्भगृह में जाने के लिए 4 सीढ़ियाँ बनी हैं, गर्भग्रह लगभग 4 फिट 6 इंच गहरा है। गर्भग्रह में अष्ट प्रतिहार युक्त शान्ति नाथ भगवान के साथ त्रिमुर्ति बनी है। जो सम्भवतया कुन्थुनाथ व अरहनाथ की हैं। भगवान शान्तिनाथ की मूर्ति खड्गासन अवस्था में 7 फिट 6 इंच ऊँची है दोनों ओर लगभग 6 फिट 6 इंच ऊँची दो अन्य तीर्थंकर प्रतिमाएँ जिन्हें महावीर बताया जाता है, तीनों मूर्तियाँ लगभग 2 फिट ऊँचे कलात्मक आसन पर खड़ी हैं। इसके नीचे लगभग 1 फिट का

प्रशस्ति शिलालेख है । जिसके अनुसार इसका प्रतिष्ठाकाल फाल्गुन सुदी 10 सम्वत् 1204 है । तीनों मूर्तियों के चरणों के समीप लगभग 2 फिट 6 इंच के छः इन्द्र खड़े हैं जो चंवर लिए हुए हैं । मूर्तियों के हाथ खण्डित हैं । दोनों ओर की मुख्य मूर्तियों के ऊपर दो पद्मासन मुद्रा में तीर्थंकर लगभग 2 वर्ग फुट के पत्थर पर अंकित हैं, जिनमें दाहिनी ओर के तीर्थंकर चन्द्र प्रभु है और बायीं ओर के खण्डित हैं । ।चित्र संख्या-45। इस मठ के दक्षिण में लगभग 10 गज की दूरी पर एक और अर्धमग्नावशेष दूसरा मठ है । जिसका शिखर पूर्णतया गिर चुका है तथा छत भी नहीं है, केवल चारों ओर की दिवारें खड़ी हैं । मन्दिर का द्वार उत्तर की ओर है । उसके सामने जीर्ण - शीर्ण चबूतरा बना है । इसके अन्दर भी भगवान शान्ति नाथ कुन्थुनाथ व अरह नाथ की मूर्तियाँ हैं । माना कि वे पहले मठ की मूर्तियों के समान कलात्मक नहीं हैं । मध्य की भगवान शान्ति नाथ की मूर्ति लगभग 8 फिट ऊँची है तथा दोनों ओर की दोनों मूर्तियाँ लगभग 6 - 6 फिट ऊँची हैं । मूर्तियों के हाथ खण्डित हैं । चारों ओर की दीवारों की ऊँचाई लगभग 8 फिट है । फर्श जीर्ण-शीर्ण है । गर्भग्रह 6 फिट चौड़ा 6 फिट 6 इंच लम्बा है । द्वार की ऊँचाई 5 फिट के लगभग है । इसके अतिरिक्त यहाँ ऐसे अवशेष हैं जो यह दर्शाते हैं कि यहाँ और भी मठरहे होंगे, लेकिन अब पूर्ण रूप से धराशाही हो चुके हैं । इस मठ के चारों ओर बीहड़ जंगल है, जिसमें चम्पों के वृक्ष बहुत खड़े हैं । सम्भवतया इसी कारण इस मठ का नाम चम्पोमठ पड़ गया है ।

खण्डित मठ :-

पंचमढ़ी से चम्पोमठ जाते हुए रास्ते में एक मठ पूर्णतया खण्डित अवस्था में पड़ा है । जिसकी नींव के पत्थर ही मात्र उस मठ के अवशेष हैं । उसके मध्य एक तीर्थंकर की खण्डित मूर्ति खड़ी है, ।चित्र संख्या -50। जो लगभग घुटनों की ऊँचाई तक मिट्टी में दबी हुई है । इस मूर्ति की ऊँचाई लगभग 6 फिट है । यह खड्गासन मुद्रा में है । इसके दोनों हाथ खण्डित हैं । मिट्टी में दबे होने के कारण इसका चिन्ह व प्रशस्ति लेख नहीं पढ़ा जा सका है ।

:: बानपुर ::

स्थिति :-

उत्तर प्रदेश राज्य के नवनिर्मित जिला ललितपुर के महरौनी तहसील के अन्तर्गत परगना बानपुर है। जिसकी स्थिति 24, 43 उत्तरी अंक्षास पर है।

यह ललितपुर से महरौनी होते हुए 53 कि०मी० तथा महरौनी से 14 कि०मी० है और निकटवर्ती मध्यप्रदेश के टीकम गढ़ नगर से 9 कि०मी० पश्चिम में वर्तमान बानपुर कस्बा अवस्थित है। लगभग 7000 आबादी वाला यह ऐतिहासिक महत्व का प्राचीन पावन-पुण्य-स्थल ब्रिटिश काल का विद्रोही और वर्तमान में आधुनिक प्रगति की नजर से ओझल कालजयी कला केन्द्र है। बानपुर पहुँचने के लिए मध्य रेलवे की दिल्ली - बम्बई लाईन पर स्थित प्रमुख रेलवे स्टेशन ॥ललितपुर, उत्तर प्रदेश॥ से महरौनी होकर सीधी बस सेवा उपलब्ध है। टीकम गढ़ से बानपुर पहुँचने के लिए 9 कि०मी० को पक्की सड़क पर अपने निजी वाहनों द्वारा आसानी से पहुँचा जा सकता है। वर्तमान में झाँसी से बार होते हुए बानपुर सीधी बस सेवा उपलब्ध है। झाँसी ललितपुर और झाँसी के मध्य स्थित है।

नामकरण और प्राचीनता :-

महाभारत में बानपुर का "बाणपुर" नाम से अनेक स्थानों पर उल्लेख हुआ है। पौराणिक गाथाओं के अनुसार "बाणासुर" नाम का दैत्य यहाँ राज्य किया करता था। जिसके नाम पर ही कदाचित इस स्थान का नाम "बाणपुर" पड़ा जो कालान्तर में प्रयत्न लाघव के कारण बानपुर कहलाने लगा। आज

भी बानपुर और टीकम गढ़ को मिलाने वाले मार्ग में प्रवाहित "जामनें" नदी के सेतु को "बाणाघाट" कहते हैं ।

बानपुर का राजनैतिक इतिहास :-

भारत की स्वतन्त्रता में नींव का कार्य करने वाले सन् 1857 के गदर का अपना विशेष राष्ट्रीय महत्व है । इस स्वतन्त्रता-संग्राम में बुन्देलखण्ड के बानपुर राज्य का अत्यन्त उल्लेखनीय योगदान रहा है ।

बुन्देलखण्ड का सुप्रसिद्ध राज्य ओरछा के राजा मधुकर शाह (सम्वत् 1612 से सम्वत् 1650) अपने समस्त आठ पुत्रों में जागीरों का बटवारा कर, राज-काज से निश्चित होकर, ईश-ध्यान में लीन रहने लगे । इस बटवारे में ओरछा का राज्य-तिलक राजाराम शाह के नाम हुआ । इन्द्रजीत सिंह को कछौवा-पिछोर व वीर सिंह जूदेव को बड़ौनी की जागीर मिली और इस तरह विशाल बुन्देलखण्ड का राज्य विभाजित हो गया । अपनी जागीर से असंतुष्ट वीर सिंह जूदेव ने मुगल सम्राट अकबर के शहजादे सलीम के कहने पर अब्दुल फज्ल का वध कर डाला । इस कारण भारत सम्राट अकबर बहुत नाराज हो गये और वीर सिंह जूदेव को जंगल की शरण लेनी पड़ी । अकबर की मृत्यु के पश्चात जब सलीम दिल्ली की गद्दी पर बैठा और उसने जहाँगीर की उपाधि धारण की तो वीर सिंह देव को पुरस्कार स्वरूप सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड का राज्य अधिकार दे दिया । इस प्रकार वीर सिंह जूदेव को ओरछा का राज्य मिल गया । ओरछा के तत्कालीन राजा और वीर सिंह जूदेव के अग्रज राजा "रामशाह" को मुगल साम्राज्य में से चन्देरी का राज्य दिया गया । चन्देरी राज्य में बानपुर, ललितपुर नगर तो थे ही, ओरछा राज्य के "तालबेहट" आदि कस्बे भी चन्देरी राज्य के आधीन

कर दिये गये । राजा रामशाह ओरछा के सिंहासन पर सम्वत् 1650 में बैठे । इन्होंने ओरछा और चन्देरी का कुल मिलाकर 35 वर्ष तक राज्य किया और सम्वत् 1685 में गोलोकवासी हुए । राजाराम शाह अपने पीछे दो पुत्र छोड़ गये, जिसमें से कुंवर संग्राम सिंह ने चन्देरी की गद्दी सम्भाली । राजा संग्राम शाह के पाँच पुत्रों में से भारत शाह सम्वत् 1711 में चन्देरी में सिंहासनस्थ हुए । भारत शाह ने तालबेहट में एक किले का निर्माण कराया और उसका नाम "भारत गढ" रखा । भारत शाह के बाद राजा देवी सिंह और उनके बाद उनके दो पुत्रों में से दुर्ग सिंह तथा उनके बाद उनके पुत्र कुंवर दुर्जन सिंह चन्देरी पर सिंहासनस्थ हुए । राजा दुर्जन सिंह के पश्चात उनके पाँच पुत्रों में कुंवर मान सिंह सम्वत् 1790 में चन्देरी के शासक हुए । इनमें से हो कुंवर धीरज सिंह को बानपुर की जागीर दी गयी । राजा मानसिंह के दो पुत्रों में बड़े महाराजा अनुरूद्ध सिंह ने सम्वत् 1803 से 1831 तक चन्देरी का राज्य संभाला । इनके दो कुंवर हुए, जिनमें कुंवर रामचन्द्र जूदेव सम्वत् 1831 में सिंहासनारूढ़ हुए पर राजा रामचन्द्र जूदेव कुछ वर्षों तक राज्य करने के पश्चात ही तीर्थ यात्रा पर चले गये और उनके चार पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र कुंवर प्रजापाल चन्देरी के राजा हुए । प्रजापाल रजवाड़े वालों के विरूद्ध लड़ाई में काम आये । तब तीसरे कुंवर मोर-प्रह्लाद सम्वत् 1859 में चन्देरी के राजा हुए ।[1]

राम शाह की वंश परम्परा में सिंहासनारूढ़ राजा मोर प्रह्लाद अति विलासी थे, जिससे चन्देरी का राज्य कार्य अव्यवस्थित और शिथिल हो गया व अनेक लोग नाराज होकर उनके शत्रु बन गये । ग्वालियर की सिंधिया सरकार ने इस फूट का लाभ उठाते हुए अंग्रेजी सेनानायक कर्नल जॉन बैप्टिस्ट को

1- कनिंघम - आ०सर्वे०रि० न० -2, पृष्ठ-412

चन्देरी राज्य पर आक्रमण के लिए आमन्त्रित कर दिया । परिणाम स्वरूप सम्वद् 1869 में बैप्टिस्ट ने तालबेहट पर आक्रमण कर दिया और तालबेहट के किले को जीतकर यहाँ सिंधिया का झंडा फहरा दिया और अन्य स्थानों को जीतता हुआ बैप्टिस्ट ललितपुर जा पहुँचा । जान बैप्टिस्ट के ललितपुर से राजघाट आने की सूचना पाकर मोर प्रह्लाद जंगल में सपरिवार भाग गये । लेकिन राज्य भक्त जाखलौन वाले "बखतसिंह" ने चन्देरी के सिपाहियों को संगठित कर सिंधिया की बड़ी सेना से चार माह तक युद्ध किया, लेकिन अन्त में बखत सिंह को चन्देरी का किला छोड़ना पड़ा । सिंधिया सरकार ने चंदेरी को अपने राज्य में मिला लिया व मोर प्रह्लाद को जीवन-यापन के लिए दो ग्राम-बार व केलगवां प्रदान किये । राजा मोर प्रह्लाद के तीन पुत्र थे । जेठी रानी के कुंवर मर्दन सिंह, जो सम्वद 1899 में बानपुर राज्य में सिंहासनारूढ़ हुए ।[1] मँझली रानी के कुंवर रावगज सिंह तथा कुंवर रणजीत सिंह थे ।

कुंवर मर्दन सिंह इनमें से अत्यन्त वीर, दूरदर्शी, साहसी व स्वाभिमानी थे । उनमें बाल्यकाल से ही अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति घृणा पनपती रही थी । वे स्वराज्य के समर्थक होते हुए भी उन विषम परिस्थितियों में अपनी अल्प शक्ति लगाकर स्वयं को नष्ट नहीं करना चाहते थे । मोर प्रह्लाद के शान्तिपूर्ण प्रयासों से जब कोई आशा न बनी तो उन्हें कुंवर मर्दन सिंह की संघर्ष वाली बात ही स्वीकार करनी पड़ी । जिसके फलस्वरूप उन्हें चन्देरी राज्य की आय का एक तिहाई भाग मिला तथा चन्देरी के तीन प्रमुख किलों में से बानपुर का किला प्राप्त हुआ । अतः सन् 1830 (सम्वत 1887) में मोर प्रह्लाद ने बानपुर को अपनी राजधानी बनाया । सम्वत 1899 में मोर प्रह्लाद की मृत्यु हो गयी ।

1- कनिंघम - आ०स०रि० खण्ड-2, पृष्ठ 412

अपने दोनों भाईयों से असहयोग व विरोध तथा ओरछा राज्य से भी मनमुटाव के बीच सम्वत 1899 में बानपुर की उस गद्दी पर "मर्दन सिंह" सिंहासनारूढ़ हुए । मर्दन सिंह ने अपने साहस व बुद्धिचातुर्य से अपने राज्य में शान्ति स्थापित की । उन्होंने क्षेत्रीय अंग्रेज अधिकारियों का भी विश्वास प्राप्त कर लिया । जो निकटतम देशी राजा थे, वे उनसे सहयोग लिया करते ही थे । लेकिन धीरे-धीरे राजा मर्दन सिंह का विरोधी स्वरूप अंग्रेजों के सामने प्रकट होने लगा, क्योंकि आन्तरिक मामलों में अंग्रेजों का हस्तक्षेप उन्हें पसन्द न था । झाँसी अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लेने के पश्चात रानी लक्ष्मीबाई को सशक्त सहयोग देने वालों में राजा मर्दन सिंह प्रमुख थे । अतः रानी व मर्दन सिंह में गुप्त मंत्रणाऐं होने लगी । सन 1857 मार्च में कलकत्ता में देशी राजाओं की सभी में एक मात्र मर्दन सिंह ही थे, जिन्होंने सरकार के प्रस्ताव का खुलकर विरोध किया था ।

रानी लक्ष्मीबाई और मर्दन सिंह ने मिलकर सैनिक संगठन प्रारम्भ कर दिया, इस कार्य में नानासाहब, तात्याटोपे, शाहगढ़ के बखत वली प्रमुख सहयोगी बने ।

3 जून सन् 1857 ई० को क्रान्ति की ज्वाला भड़की । रानी ने झाँसी का राज्य अपने हाथ में ले लिया । ललितपुर के विद्रोहियों ने खजाने व शस्त्रागार पर अपना अधिकार कर अंग्रेजों को चेतावनी देकर भगा दिया । राजा मर्दन सिंह ने ऐसे समय अपना क्षत्रिय व राष्ट्रधर्म दोनों का निर्वाह किया । जो अंग्रेज अधिकारी भागकर उनकी शरण में आये, उन्होंने उन्हें सुरक्षित सागर जबलपुर भिजवा दिया । इससे अंग्रेजों का राजा पर विश्वास बैठा पर यह भेद शीघ्र ही खुल गया कि विद्रोहियों को भड़काने व सम्पूर्ण योजना में बानपुर के राजा मर्दन सिंह का हाथ है । उधर ह्यूरोज मार्ग में विद्रोहियों को जीतता हुआ

बानपुर आ पहुँचा । दुर्ग पर ह्यूरोज ने आक्रमण किया, राजा मर्दन सिंह तो यहाँ नहीं थे, थोड़े बहुत सिपाही थे, जिन्होंने मुकाबला किया पर सभी कुछ नगण्य था । ह्यूरोज ने दुर्ग का एक भाग सुरंग लगवाकर तुड़वा दिया और सिपाहियों को गिरफ्तार कर फाँसी दे दी गयी । राजा मर्दन सिंह के संग्रहालय तथा पुस्तकालय में आग लगवा दी गई । सिर्फ दुर्ग का बिहारी जी के मन्दिर वाला भाग इसलिए शेष छोड़ा गया ताकि हिन्दू सिपाही विद्रोह न कर बैठें । इस प्रकार 10 मार्च 1858 को ह्यूरोज ने बानपुर पर अपना अधिकार कर लिया । मर्दन सिंह की शक्ति इन दिनों क्षीण प्रायः हो चुकी थी । अतः इसी क्रम में ह्यूरोज ने बानपुर राज्य के परगना तालबेहट तथा चंदेरी पर भी अधिकार कर लिया । यद्यपि मर्दनसिंह का राज्य अंग्रेजों के आधीन हो गया था पर वे झाँसी की रानी के साथ विद्रोहियों का नेतृत्व करते रहे ।

28 सितम्बर, 1858 को जब मर्दन सिंह व बखत बली सिंह ग्वालियर जा रहे थे कि मुरार में अंग्रेजों द्वारा बन्दी बना लिये गये व लाहौर की जेल में नजर बन्द कर दिये गये । मर्दन सिंह ने बुन्देलखण्ड की ओर आने के प्रयास किये पर अंग्रेजों ने उनकी एक न सुनी । उन्हें मथुरा, वृन्दावन में रहने की अनुमति मिल पायी, राजा अकेले रह गये । उन्हें दुखः ने चारों ओर से घेर लिया । 4 फरवरी 1873 को उनके छोटे पुत्र शिखर सिंह का दतिया में युवावस्था में निधन हो गया ।

13 मार्च को प्रमुख कामदार दुलारे लाल मिश्र का निधन और 14 मई को 18 वर्षीय पौत्र का निधन सुनकर मर्दन सिंह सिसक उठे । अन्तिम समय मथुरा में राधाकृष्ण के ध्यान में ही बीता । 22 जौलाई, सन् 1879 को बुन्देलखण्ड के यशस्वी स्वराज्य के प्रणेता का वृन्दावन में देहावसान हो गया ।

भारत की आजादी के इस सुदृढ़ नींव के पत्थर के रूप में राष्ट्र भक्त सेनानी मर्दन सिंह का नाम इतिहास में सदैव चमकता रहेगा ।

बानपुर का सांस्कृतिक व प्राकृतिक वैभव :-

बानपुर की शौर्यमयी माटी में संस्कृति, प्रकृति और आध्यात्म का शाश्वत सौन्दर्य अद्भुत रूप से समाहित है । उत्तरी भाग में बड़े ताल के निकट पार्वती - नन्दन "गणेश" की 18 भुजाओं वाली, नृत्य मुद्रा में, विशाल मूर्ति दर्शनीय है, जो वर्षों जंगल के उदर में खोई रही । इसे कुछ वर्ष पूर्व ही गणेश खेड़ा में स्थापित कर दिया गया है । बजरंग गढ़ का हनुमानजी का मन्दिर नमनीय है । ग्राम के मध्य दो विशाल जैन मन्दिर "नया मन्दिर" व "बड़ा मन्दिर" स्थित हैं । इनमें बड़ा मन्दिर, प्राचीन, भव्य व उत्तर कालीन शैली का श्रेष्ठ प्रतीक है । नगर के दक्षिण में अतिशय दिगम्बर जैन क्षेत्र अवस्थित है, जो अपनी प्राचीनता व शिल्प कला के कारण गौरवपूर्ण स्थान रखता है । नगर के पूर्व में "ऊआघाट" "बरीघाट" और "अजय घाट" आदि प्राकृतिक प्रदत्त रमणीक स्थल है । "जामनेर" और "जमड़ार" नदियों से आवृत बानपुर को प्रकृति ने अपने मनोमुग्ध कारी श्रृंगार से संवारा है ।

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र :-

प्राचीनता -

लगभग 280 x 200 मीटर के क्षेत्रीय प्रांगण में श्री 1008 अतिशय दिगम्बर जैन क्षेत्र अवस्थित है । जिसके अन्तर्गत दसवीं शताब्दी के पूर्व तक की मूर्तियां विद्यमान हैं । पाड़ाशाह द्वारा निर्मित प्राकृतिक छटा

से परिपूरित, पावन प्रांगण में पाँच विशाल मन्दिर स्थापित हैं । जिनमें देशी पत्थर से निर्मित भव्य कलात्मक मूर्तियाँ विद्यमान हैं । लम्बे समय तक यह जंगलों के उदर में विलीन मानव दृष्टि से अपरिचित रहा । मूर्तिभंजकों की विध्वंसकारी कुदृष्टि का भी यह क्षेत्र शिकार हुआ, जिसकी कहानी क्षेत्र व आस-पास पड़ी खण्डित मूर्तियाँ कहती हैं ।

आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व तक इस निर्जन क्षेत्र को ग्रामवासी "खिराउल" के नाम से जानते थे, जैन अनुयायी खण्डित मूर्तियों के कारण इसे अपूज्य, और जैनतर ग्रामवासी "लिंगन" के नाम से सम्बोधित कर महत्व हीन स्थल मानते थे । लम्बे समय तक यह क्षेत्र बानपुर के बागी व चोरी छिपे दुष्कर्मों में लिप्त व्यक्तियों के अड्डों के रूप में रहा ।

जीर्णोद्धार :-

सन् 1940 के आस-पास मुनि 108 श्री श्रुतसागर जी महाराज बानपुर पधारे और इस क्षेत्र का दर्शन कर दंग रह गये । उन्होंने इसे अपना साधना स्थल बनाया और यही क्षण इस क्षेत्र के लिए पुर्नजीवन का प्रारम्भ बन गया । साधना करते-करते मुनि श्री के मन में यह बात घर करती गयी कि यह क्षेत्र आध्यात्म, पुरातत्व और शिल्प कला तीनों दृष्टियों से अद्भुत होते हुए भी ग्रामवासी इसके महत्व से अपरिचित हैं, अतः जनमानस को परिचित कराने पर इस क्षेत्र की खोई हुई गरिमा लौट सकती है अतः उन्होंने मनोवैज्ञानिक ढंग से कार्य किया और अपना आहार इसी क्षेत्र में लेने लगे, अतः जैन परिवार मजबूरी में आहार देने के लिए नित्य प्रति आने लगे । लेकिन वे खण्डित मूर्तियों को देव दर्शन मानने के लिए तैयार न थे । देव-दर्शन के लिए वे गाँव के मन्दिर में ही जाते । अतः मुनिश्री ने एक बार अनन्त चतुर्दशी के अवसर पर विमान जी में गाँव

के मन्दिर से आयी मूर्ति को जबरदस्ती यहाँ स्थापित करवा लिया । समाज में इससे कुछ असंतोष तो रहा पर मुनि श्री की दृढ़ता के सामने कुछ न कर सके । अन्ततोगत्वा ग्रामवासियों को नित्य ही क्षेत्र पर आकर पूजन व्यवस्था करनी पड़ी और मुनि श्री अपने उद्देश्य में सफल हुए । क्षेत्र का जीर्णोद्धार करना उन्हें अनिवार्य हो गया । देखते-देखते क्षेत्र का कायाकल्प हो गया । आज ग्रामवासी इस क्षेत्र को "क्षेत्रपाल" के नाम से जानते हैं । इस क्षेत्र का दि0 जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी द्वारा सन् 1965 में वास्तविक जीर्णोद्धार किया गया है, जिसके अन्तर्गत इस क्षेत्र पर चारों ओर लगभग 4 फिट ऊँचा परकोटा निर्मित कर दिया गया है तथा लोहे का गेट लगा दिया गया है एवं जीर्णोद्धार करके पांच कमरे बनाये गये हैं । क्षेत्र पर कुल 5 मन्दिर हैं, जिनमें 4 मन्दिरों का निर्माण जीर्णोद्धार के समय किया गया है तथा उन पर मन्दिर संख्या डाल दी गयी है । मन्दिर संख्या 1 से 4 तक नवनिर्मित है लेकिन मंदिर 2-3-4 में मूर्तियाँ प्राचीन ही हैं, तथा मन्दिर न0 5 अपने प्राचीन वैभव सहित स्थित है । इसके चारों ओर बहुसंख्या में मूर्तियों का बिखराव और भग्नावशेषों के निरीक्षण व विश्लेषण से ऐसा प्रतिलक्षित होता है कि इस क्षेत्र में मन्दिरों की संख्या कहीं अधिक रही होगी ।

मन्दिर संख्या - 1 :-

इस मन्दिर की बाह्य बनावट साधारण है, यह शिखर नागर शैली का है तथा इस क्षेत्र के शिखरों में सबसे अधिक ऊँचाई का है । मन्दिर के बाह्य भाग में 5 फिट 4 इंच की संगमरमर की आधुनिक प्रतिमा है । इसी प्रतिमा की पूजा की जाती है । मूर्ति की सौम्य भाव मुद्रा शान्ति प्रदायक है । अन्दर के भाग में एक वेदी पर प्राचीन काल की संगमरमर की पद्मासन मूर्ति है, जिस पर सम्वत 1141 अंकित है । इस मूर्ति की ऊँचाई डेढ़ फिट है ।

मन्दिर संख्या - 2 :-

प्रथम मन्दिर से संलग्न ही यह दूसरा मन्दिर है । इस मन्दिर में भी अन्दर व बाहर मूर्तियाँ हैं । बाहरी भाग में एक विशाल मूर्ति लगभग 8 फिट ऊँची है । यह स्थानीय पत्थर से निर्मित है । यह तीर्थंकर शान्तिनाथ की खड्गासन प्रतिमा है । मूर्ति की नासिका व अधर का कुछ भाग खण्डित है । जिसे मुनि श्री श्रुत सागर जी के काल में सुधारने का असफल प्रयत्न किया गया था । मन्दिर के आन्तरिक कोष्ठ में लगभग 8 फिट 6 इंच ऊँची खड्गासन अवस्था में तीर्थंकर मूर्ति स्थापित है । (चित्र संख्या - 105) इसके चरण-पाद के पास दोनों ओर छोटी-छोटी मूर्तियाँ शासन देवियों की स्थित हैं । इस मूर्ति पर कोई चिन्ह अंकित नहीं है, जिससे तीर्थंकर की पहचान की जा सके ।

मन्दिर संख्या - 3 :-

यह मन्दिर मध्य का मन्दिर कहलाता है । इसका शिखर गुम्बदाकार है । मंडपयुक्त एक बाहरी बरामदा है । इस मन्दिर के मुख्य द्वार के ऊपर (ललाट बिम्ब में) "क्षेत्रपाल" की मूर्ति विराजमान है । अन्दर आधुनिक प्रकार की रंग-बिरंगी वेदी पर प्राचीन काल के "श्री चरण" विराजमान हैं, जिसे देखकर कुछ लोग इसे अतिशय न कहकर सिद्ध क्षेत्र मानते हैं । इसी वेदी पर श्वेत संगमरमर की पद्मासन मूर्ति है जिसकी ऊँचाई लगभग 8 इंच है । इस प्रतिमा पर सम्वत् 1541 अंकित है ।

इस मन्दिर की बाह्य भित्ति पर तीनों ओर 19 आलों में विभिन्न प्रकार की प्राचीन मूर्तियाँ

जीर्णोद्धार के समय जड़ दी गयी हैं । ये मूर्तियाँ आकर्षक व कलात्मक हैं । इनमें देवी-देवताओं के युगल, शासन देवियाँ, तीर्थंकर आदिनाथ उमा-महेश आदि हैं ।

मन्दिर संख्या - 4 :-

"बड़े बाबा का मन्दिर" के नाम से विख्यात यह मन्दिर इस क्षेत्र का विशिष्ट मन्दिर है । शिखर विहीन इस जिनालय का मूल भाग तो पूर्व का ही बना हुआ है पर बाह्य भाग सन् 1964-65 में "साहू" शान्ति प्रसाद जैन ट्रस्ट द्वारा पुनर्निमित कराया है । इस मन्दिर में मूल, विशालकाय प्रतिमा तीर्थंकर शान्तिनाथ की है जिसकी ऊँचाई 18 फिट है । खड्गासन मुद्रा में यह मूर्ति भी अन्य मूर्तियों की तरह देशी पत्थर से निर्मित है । इस मूर्ति के पाद पीठ पर एक लेख है जिसके अनुसार इसका प्रतिष्ठाकाल सम्वत् 1001 है । भगवान शान्तिनाथ की यह प्रतिमा इस क्षेत्र की मूल नायक प्रतिमा मानी जाती है । लेख के पास दोनों और छोटी-छोटी मूर्तियाँ सुन्दर ढंग से उभरी हुई हैं । तथा दोनों और भगवान कुन्थुनाथ व अरहनाथ की प्रतिमाएँ हैं । इस प्रकार इस मन्दिर में शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ व अरहनाथ की त्रिमूर्ति हैं (चित्र संख्या - 77) ।

शान्तिनाथ की मूर्ति के बाँयी ओर 7 फिट ऊँची दिव्य मूर्ति है जो भगवान कुन्थुनाथ की मानी जाती है । इस मूर्ति की विशेषता यह है कि इस मूर्ति के केश कंधों से झूलते हुए छाती और बाहु तक बिखरे हुए हैं, जिससे यह मूर्ति प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की लगती है । दाँयी ओर भी 7 फिट ऊँची भगवान अरहनाथ की खड्गासन प्रतिमा है । जो शान्तिनाथ की प्रतिमा की तरह ही सौम्य व मनोहारी है ।

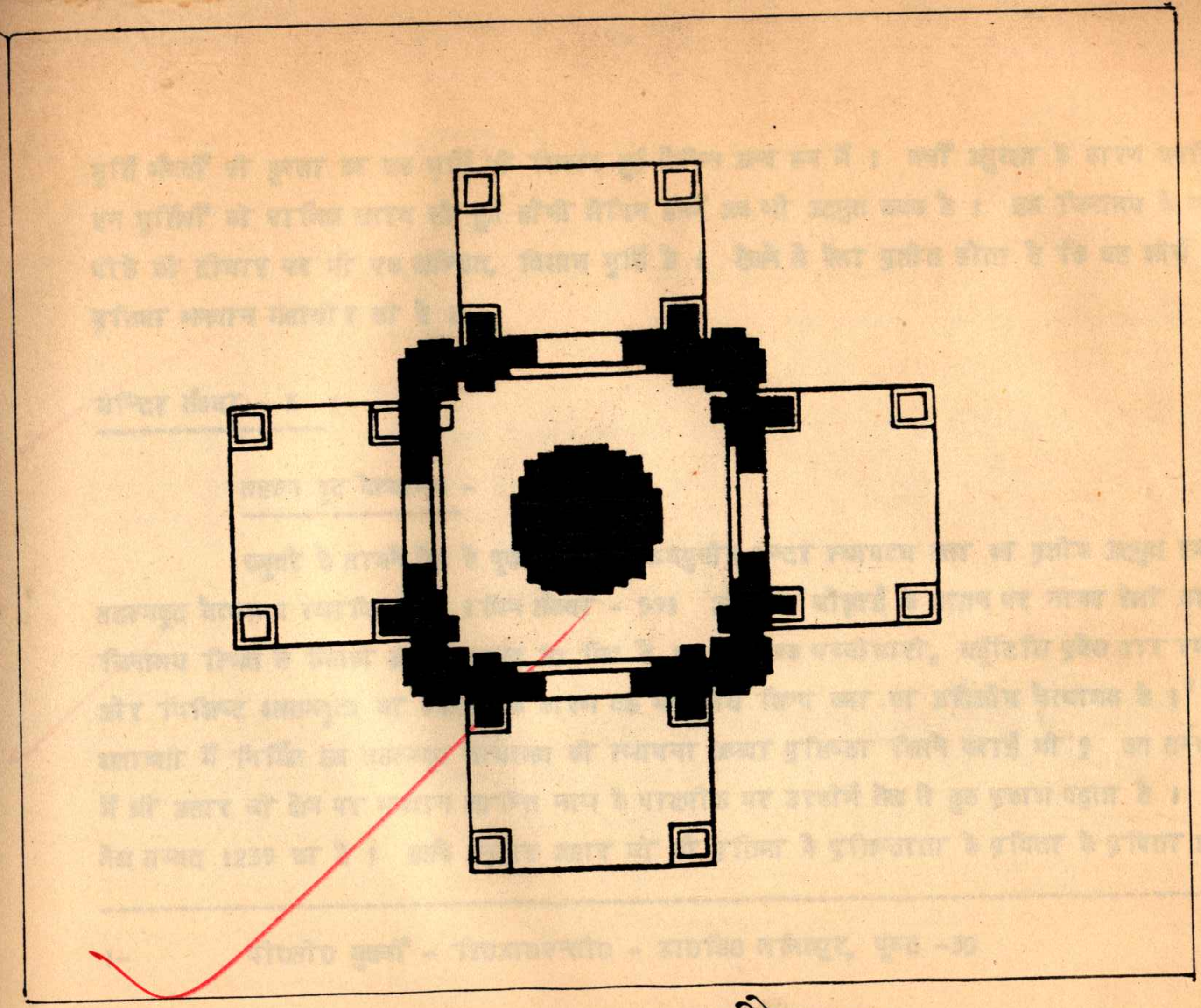

तलछन्द सहस्त्रकूट चैत्यालय

रेखाचित्र- 2

मूर्ति भंजकों की क्रूरता का यह मूर्ति भी शिकार हुई लेकिन अल्प रूप में । वर्षों असुरक्षा के कारण यद्यपि इन मूर्तियों की पालिश खराब ही हुई होगी लेकिन इनमें अब भी अद्भुत चमक है । इस जिनालय के बाहर पीछे की दीवार पर भी एक खण्डित, विशाल मूर्ति है । देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह शीर्ष विहीन प्रतिमा भगवान महावीर की है ।

मन्दिर संख्या - 5 :-

सहस्त्र कूट चैत्यालय -

चबूतरे के सामने क्षेत्र के पूर्वी भाग में मध्ययुगीन सुन्दर स्थापत्य कला का प्रतीक अद्भुत रमणीक सहस्त्रकूट चैत्यालय स्थापित है । (चित्र संख्या - 59) 22 फिट चौड़ाई के आसन पर नागर शैली का यह जिनालय स्थित है जिसकी ऊँचाई लगभग 30 फिट है । कलात्मक पच्चीकारी, चहुँदिशि प्रवेश द्वार स्थापना और विशिष्ट (सहस्त्रकूट) या (लिंग) के कारण यह भारतीय शिल्प कला का अद्वितीय चैत्यालय है ।[1] 10वीं शताब्दी में निर्मित इस सहस्त्रकूट चैत्यालय की स्थापना अथवा प्रतिष्ठा किसने कराई थी ? इस सम्बन्ध में श्री अहार जी क्षेत्र पर भगवान शान्ति नाथ के पादपीठ पर उत्कीर्ण लेख से कुछ प्रकाश पड़ता है । यह लेख सम्वत् 1239 का है । इसके अनुसार अहार जी की प्रतिमा के प्रतिष्ठाता के प्रपिता के प्रपिता इस

1- पी०सी० मुखर्जी - रि०आ०स्०टी० - आ०डि० ललितपुर, पृष्ठ -30

सहस्त्रकूट चैत्यालय के प्रतिष्ठापक थे । उल्लिखित श्लोक इस प्रकार है :-

गृहपति वंश सरोरुह सहस्त्ररश्मिः सहस्त्र कूट्यः ।
वाणपुरे व्यधितासीद श्री मानिह देवपाल इति ।।

गृहपति वंश रूपी कमलों को प्रफुल्लित करने के लिए सूर्य के सदृश्य यहाँ श्री सम्पन्न देवपाल हुए जिनके द्वारा बानपुर में सहस्त्रकूट चैत्यालय का निर्माण कराया गया था । इस जिनालय का निर्माण काल इस श्लोक के विश्लेषण से सम्वद 1000 के आस-पास होना चाहिए । आहार जी के लेख में ही इस मन्दिर के रूपकार ।वास्तुकार। का नाम भी स्पष्ट होता है ।[1]

वाल्हणस्य सुतः श्री मान् रूपकारो महामतिः ।
पापटो वास्तुशास्त्रज्ञस्तेन बिम्ब सुनिर्मितम् ।।

अर्थात यह रचना वास्तुकला विद "पापट" द्वारा निर्मित हुई ।

मध्य आकार के इस चैत्यालय में नीचे से ऊपर तक आकर्षक मूर्तियाँ चारों और उत्कीर्ण हैं । मन्दिर में मुख्य मूर्ति के रूप में सहस्त्रकूट वेदिका ।चित्र संख्या- 63। है । वेदिका में चारों दिशाओं में मध्य में तीर्थंकर आदिनाथ का भव्य व्यक्तित्व दृष्टव्य है । भगवान के शरीर में एक सहस्त्र अष्ट शुभ लक्षणों

1- स0 महेन्द्र द्विवेदी - टीकमगढ़ दर्शन, पृष्ठ -6।

के प्रतीक अथवा वीतराग के एक हजार आठ गुणों के आधार पर सहस्त्रकूट वेदिका का निर्माण होता है। यहाँ की वेदिका 4 फिट x 4 फिट के शिलाखण्ड पर लगभग 8 फिट ऊँची है। जिस पर चारों ओर 1008 मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं।

गर्भग्रह पर सुन्दर कलात्मक शिखर है। बाहर के पटलों के माध्यम से पर्वताकार उत्तरोतर तीक्ष्ण होते हुए शिखर के अंत में आमलक, घटपल्लव और कुम्भ-कलश शोभायमान हैं। चँहुदिशि द्वारों पर बाहर की ओर दरवाजों से लगे हुए स्तम्भों पर आधारित चार मण्डप (चित्र सं0 60) बने हुए हैं। मण्डपों के बीच में गर्भग्रह के चारों कोनों पर अष्ट दिशाओं के अधिष्ठाता अष्ट-दिक्पालों की मूर्तिया बनी हुई हैं। मुख्य द्वारों के ललाट बिम्बों पर तीर्थंकर, यक्ष यक्षिणियाँ, गज वाहक, नवगृह आदि का सुन्दर व कलात्मक अंकन किया गया है।

चारों ही दरवाजों पर नीचे दोनों ओर द्वार पाल बनाये गये हैं। पौराणिक कथाओं पर आधारित मुख्य द्वारों के नीचे की ओर ही मकर वाहिनी गंगा व कच्छप वाहिनी यमुना का अंकन है। उनके पास ही चाँवर ग्रहिणी बनी हुई है। दरवाजों की चौकियों पर गज व सिंहों का सुन्दर अंकन है। शिखर के मध्य में उत्तर की ओर चौबीस तीर्थंकर (चौबीसी) का सुन्दर अंकन किया गया है। चारों ओर देव कुलिकाओं में बीणावादिनी सरस्वती, आम्र-वृक्षाश्रिता अम्बिका, चक्रेश्वरी अप्सराएँ, सुर सुन्दरी, व्याल आदि शोभायमान है। मण्डप के स्तम्भ बहुत कला पूर्ण हैं। उन पर कीर्ति मुख, घटपल्लव आदि बने हैं।

काल के दुर्दान्त प्रभाव से यह एक ओर को झुक गया है, जिसे अस्थाई तौर पर एक आलम्ब-स्तम्भ पर टिकाया गया है।

बानपुर ग्राम के जैन मन्दिर :-

बानपुर ग्राम में दो जैन मन्दिर हैं। जिनमें एक "नया मन्दिर" है और दूसरा "बड़ा मन्दिर" के नाम से प्रचलित है।

बड़ा मन्दिर :-

बड़ा मन्दिर [चित्र संख्या -93] काफी प्राचीन काल का बना हुआ है। यह आकार में काफी विशाल तिमंजिला भवन है। मन्दिर का शिखर गुम्बदाकार है। मन्दिर में कुल तीन वेदियाँ हैं। एक नीचे की मंजिल में है तथा दो ऊपर की मंजिल में हैं। पहली "मड़वैया सुरई" दूसरी "सिंघई सुरई" और तीसरी "स्व0 बाबू सिंघई की सुरई" के नाम से जानी जाती है। नीचे की वेदिका में 5 मूर्तियाँ पाषाणकी हैं जिनमें तीन श्वेत संगमरमर की व दो काले पत्थर से निर्मित हैं। तथा साथ ही पीतल की लगभग उसी काल की पद्मासन मूर्तियाँ हैं। साथ ही मुख्य विशेषता के रूप में पीतल के चार कीर्ति स्तम्भ हैं। जिन पर ऊपर की ओर चारों दिशाओं में "जिन" प्रतिमाएँ हैं। ऊपर की दूसरी सुरई में अधिकतर प्रतिमाएँ धातु की ही हैं, जिनमें तीन प्रतिमाएं खड्गासन अवस्था में हैं तथा शेष पद्मासन में हैं। मन्दिर का मुख्य आकर्षण यहाँ की भित्तियों पर बने सुन्दर अलंकरण हैं। [चित्र संख्या -95] जो बाहरी मुख्य दीवार पर, तथा अन्दर दरवाजों के ऊपर बने हुए हैं। जिनमें स्त्री आकृतियाँ, पक्षी व फूल पत्तियों के सुन्दर अलंकरण हैं।

नया मन्दिर :-

यह मन्दिर अभी कुछ दशक पूर्व ही निर्मित हुआ है, इसी लिए "नया मन्दिर" [चित्र संख्या- 98]

इसका द्वार मुख्य सड़क पर ही है, इसमें दो वेदियाँ हैं, जिनमें नवीन मूर्तियाँ हैं। वेदिका कहलाता है। इसका द्वार मुख्य सड़क पर ही है, इसमें दो वेदियाँ हैं, जिनमें नवीन मूर्तियाँ हैं। यह मन्दिर बड़ा मन्दिर से ऊँचाई में कुछ कम है। इस मन्दिर में बाहर की सुसज्जित ढंग से बनी हुई है। यह मन्दिर बड़ा मन्दिर से ऊँचाई में कुछ कम है। इस मन्दिर में बाहर की दीवार पर पहली मंजिल की तोड़ियों में कुछ चित्र बने हुए हैं।

गणेश डेड़ा :-

गणेश गंज के नाम से विख्यात बानपुर ग्राम से लगभग 2 कि0मी0 उत्तर की ओर बड़े ताल के निकट एक छोटा टीला है। जहाँ काल के गर्भ में लम्बे समय तक विलीन गणेश जी की प्राचीन प्रतिमा[1] एक आधुनिक ढंग के बने, लेकिन जर-जरकमरे में स्थापित है। जिस पर कोई शिखर आदि नहीं बना हुआ है। चित्र संख्या-90। 8 फिट ऊँची 4 फिट चौड़ी नृत्य गणेश की यह प्रतिमा 18 भुजाओं से परिपूर्ण हैं। ।चित्र संख्या - 91। आज इस प्रतिमा की पूजा की जाती है, जिस कारण पूरी प्रतिमा पर सिंदूर का लेप चढ़ा हुआ है। किंवदन्ती के अनुसार बाणासुर की पुत्री "ऊषा" यहीं पर गणेश जी की पूजा के लिए आया करती थी।

इसी मन्दिर के बाहर तीन नन्दी रखे हुए हैं।चित्र संख्या -92। जिनके मुख तेजधार वाले किसी अस्त्र से काटे गये प्रतीत होते हैं।[2] ऐसा लगता है कि किसी समय ये सुन्दर नन्दी कहीं पर मूर्ति-भंजको की दुष्ट पिपासा का घूंट बने होंगें। तथा अब कहीं से लाकर इस मन्दिर के बाहर रख दिये गये हैं। ये स्थानीय बलुए लाल पत्थर से निर्मित हैं।

1- इशा बसन्ती जोशी - उ0प्र0 डि0 गजेटियर, झाँसी, पृष्ठ - 328

2- वही, पृष्ठ -328

3- पी0सी0 मुखर्जी - रि0आ0एन्टी0आ0 डि0 ललितपुर, पृष्ठ -30

मानिक टीला :-

ग्राम के उत्तर पूर्व में एक छोटा टीला है जहाँ एक विशाल बरगद के पेड़ के नीचे कुछ मूर्तियों का संग्रह किया गया है जो आस-पास पान की खेती करने वाले लोगों द्वारा संग्रहीत की गयी हैं। चित्र संख्या - 102। उनके अनुसार वे लोग इनकी पूजा करते थे, वास्तव में ये लोग नाग-पूजा में विश्वास करते हैं। इनके अनुसार इससे उनकी पान की बेलें नाग के समान ही बढ़ती हैं।

यहाँ पर शेषशायी विष्णु, नवग्रह, हनुमान, नाग-नागी मानवीकृत नाग-नागी युगल आदि की मूर्तियाँ हैं। शेषशायी विष्णु की यह मूर्ति लगभग 6 फिट लम्बाई की है। भगवान विष्णु शेषनाग पर लेटे हैं तथा शेषनाग के फण का छत्र उनके ऊपर है। वहाँ पर शेषशायी विष्णु की इस प्रतिमा को नाग देवता मानकर जमीन में खड़े रूप में गाड़ रखा था।[1] ।चित्र संख्या - 101। अब यह शेषशायी विष्णु, नाग-नागी पट व हनुमान जी की खण्डित मूर्ति इस स्थान से लाकर झाँसी राजकीय संग्रहालय में संग्रहीत कर दी गयी है।

यहाँ पर पौराणिक उल्लेख के रूप में शिवभक्त "वाणासुर" की अनन्य सुन्दरी "उषा" के नाम पर उषाघाट भी विद्यमान है। किंवदन्ती है कि "उषा" इसी मार्ग से शिव की पूजा करने हेतु "कुंड़ा देव" ।कुण्डेश्वर। जाती थी।

1- पी0सी0 मुखर्जी - रि0आ0एन्टी0आ0डि0 ललितपुर, पृष्ठ - 30

बुन्देल खण्ड (चन्देलों के पूर्व) :-

यमुना का दक्षिणवर्ती प्रदेश रामायण काल में तपोभूमि कहलाता था । उस युग के प्रसिद्ध ऋषि इस तपोभूमि में रहते थे । बाल्मीकि, अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, अत्रि (चन्देले जिन्हें अपना वंश पिता कहते थे) आदि ऋषियों के आश्रम चित्रकूट के पास इसी प्रदेश में थे । उस काल में यह प्रदेश कौशल राज्य का एक अंग था । महाभारत काल में यह प्रदेश शिशुपाल के अधिकार में था ।[1] शिशुपाल की राजधानी चंदेरी थी । आधुनिक धसान नदी का प्रदेश दशार्ण कहलाता था ।[2] उस प्रदेश में हिरण्य वर्मा का राज्य था । महाभारत में हिरण्य वर्मा के पुत्र सुधर्मा और पाँडव सेनापति भीमसेन में युद्ध होने का उल्लेख है ।

महाभारत काल के बाद इस भूभाग का क्रमबद्ध इतिहास अप्राप्त है । मौर्यकाल में इस भू-भाग का कुछ भाग उज्जैन के शासक के आधीन था । शेषभाग में छोटे-छोटे गणतन्त्र राज्य थे ।[3] शुंग राज्यकाल में इस प्रदेश का शासन पुष्पमित्र शुंग के युवराज अग्निमित्र के हाथ में था । उसकी राजधानी "वैस नगर" (विदिशा के निकट) थी । शुंग वंश के बाद इस प्रदेश में नागवंश के राजाओं की सत्ता स्थापित हो गयी ।

1- (अ) महाकवि माघ - शिशुपाल वध महाकाव्य, पृ०ठ - 15-17
   (ब) विमल चन्द्र पाण्डेय - प्राचीन भारत का राजनैतिक व सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ 266
2- (अ) वही, पृ०ठ 246
   (ब) गोरे लाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ०ठ 4
3- वही, पृ०ठ 10-11

नाग राजाओं की राजधानी पद्मावती ।आधुनिक पवाया। थी । नाग राजाओं के राज्य काल के इतिहास की जानकारी पवाया, कान्तिपुरी, नवना, कुठारा, सेरनभुमरा आदि स्थानों के भग्नावशेषों से मालूम होती है ।[1] इन राजाओं के बहुत से सिक्के प्राप्त हैं, जिससे पता चलता है कि उनके अधिकार से मालवा एवं वैदिका भू-भाग भी था । नाग वंश के ह्रास के बाद इस क्षेत्र में वाकाटकों का शासन रहा । इस वंश का प्रथम शासक विंध्यशक्ति था । उसकी राजधानी विदिशानगर में थी ।[2] डा० जैसवाल के मतानुसार वाकाटकों के काल में नचना-कुठारा मत्स्य मन्दिरों एवं राजभवनों से सुशोभित एक सुन्दर नगर था । सन् 321 के लगभग उत्तर भारत में चन्द्रगुप्त के राज्य की स्थापना होने के पश्चात बुन्देल खण्ड के नागों की सत्ता क्षीण होने लगी थी । चन्द्र गुप्त के पुत्र समुद्रगुप्त ने अपनी दिग्विजय में पद्मावती व एरन ।एरीकेन। पर अधिकार कर लिया था । समुद्र गुप्त के पश्चात चन्द्रगुप्त द्वितीय ने इस प्रदेश पर अपना अधिकार सुरक्षित रखा । एरन नगर को अपने भव्य भवनों से सुशोभित करके इसका नाम "स्वभोग नगर" रखा था । स्कन्दगुप्त के राज्य तक गुप्तों का अधिकार इस क्षेत्र पर बना रहा ।[3] हूणों के आक्रमण ने गुप्त सत्ता का अन्त कर दिया और बुन्देल खण्ड में कुछ समय के लिए हूणों का राज्य हो गया । 606 ई० में हर्षवर्धन ने थानेश्वर की गद्दी पर बैठने के बाद सारा उत्तरी भारत अपने अधिकार में कर लिया जिसके फलस्वरूप बुंदेलखण्ड भी उनके अधिकार में आ

1- ।अ। गोरे लाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ 12
 ।ब। राजबली पाण्डेय, प्राचीन भारत - पृष्ठ 221

2- वही, पृष्ठ 184-185

3- गोरे लाल तिवारी - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ 14

गया । 646 ई0 में हर्ष की मृत्यु के पश्चात् सार्वभौमिक सत्ता का इस प्रदेश में अन्त हो गया । परिहारों ने कई छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिए, उनमें ओरछा, मउसहानियां तथा महोबा प्रमुख थे । इसी काल में ग्वालियर के दक्षिण में "नरवर" के आस-पास कछवाहा राजपूतों का राज्य था ।

नवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में चन्देलों ने परिहारों को हराकर अपना राज्य स्थापित किया । जो राज्य चन्देलों के आधिपत्य में रहा व धसान नदी के पूर्व तथा विन्ध्याचल पर्वत के उत्तर और पश्चिम में था । उत्तर में उनका राज्य जमुना और दक्षिण में केन नदी के उद्‌गम स्थान तक फैला था । इनका राज्य "जुझौती" कहलाता था । कालिंजर, खजुराहो, अजयगढ़, महोबा, मदनपुर इनके प्रसिद्ध स्थान थे ।

चन्देल वंश का इतिहास :-

प्रतिहार वंश के पतन के पश्चात पश्चिमी भारत और मध्य भारत में अनेक नवीन राजवंशो का उदय हुआ । इनमें से एक चन्देल-वंश भी था । इसे "चन्द्रात्रेय-वंश" भी कहते हैं ।[1] चन्देल अभिलेखों का कथन है कि ब्रह्मा ने अत्रि ऋषि को जन्म दिया, अत्रि के नेत्र से चन्द्रमा उत्पन्न हुए, चन्द्रमा से ऋषि चन्द्रात्रेय उत्पन्न हुए । चन्देल वंश इन्हीं चन्द्र वंशी चन्द्रात्रेय की सन्तान हैं ।

1- डा0 विमल चन्द पाण्डेय - प्राचीन भारत का इतिहास, पृष्ठ 367

टाड महोदय ने कुमारपाल चरित्र के आधार पर जो 36 राजपूत वंशों की सूची बनाई उसमें "चन्देल" नाम भी मिलता है । इसी लिए चन्देल भी राजपूत थे । जनश्रुतियों और अभिलेखों से प्रकट होता है कि खजुराहो, कालिंजर, महोबा और अजयगढ़ चन्देलों के मूल प्रदेश थे । चन्देल राज्य को "जेजाकभुक्ति", "जेजभुक्ति" या "जेजाहुति" कहा जाता है । महोबा अभिलेख से प्रकट होता है कि चन्देलों के एक राजा जयशक्ति ने जिसे "जेय" और जेज्जक" भी कहा जाता[1] था । अपने नाम पर चन्देल राज्य का नाम जेजभुक्ति या जेजाक भुक्ति रखा था । आज यह प्रदेश बुन्देलखण्ड के नाम से जाना जाता है ।

मध्ययुगीन भारत के इस प्रसिद्ध राजवंश ने इस प्रदेश पर 10 शताब्दी से 12 शताब्दी तक शासन किया । नंनुक इस वंश का संस्थापक था ।[2] धंग देव या धंग ‡950 से 1000 ई0 इस वंश का सर्वाधिक प्रसिद्ध राजा हुआ । उसने खजुराहो के विश्वनाथ व पार्श्वनाथ मन्दिर बनवाये । उसका पुत्र गंड ‡1001-1017 ई‡ ने जगदम्बी, वैष्णव मन्दिर व शिव मन्दिर बनवाया । उनके उत्तराधिकारियों में विजयपाल, कीर्तिवर्मन, मदन वर्मन ‡जिसने मदनपुर नगर बसाया था‡ सल्लवर्मन, जयवर्मन, पृथ्वीवर्मन और परमर्दी देव ‡परमाल‡ ने लगभग 1208 ई0 तक चन्देल वंश के गौरव को कालिंजर में बनाये रखा । चन्देलवंश के अन्तिम शासक परमर्दी देव ‡1165 से 1208 ई0‡ का पृथ्वीराज चौहान से संघर्ष हुआ, जिसमें परमर्दी देव की हार हुई तथा उसमें ऊदल मारा गया ।[3] इस युद्ध की पुष्टि मदनपुर में प्राप्त अभिलेख से होती है । इसके बाद चन्देल राज्य की

1- आर0के0 दीक्षित - चन्देलस आफ जेजाकभुक्ति, पृष्ठ 47

2- वही, पृष्ठ 40

3- डा0 अयोध्या प्रसाद पाण्डेय - चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, पृष्ठ 110-111

स्थिति बड़ी संकटपूर्ण हो गयी । कुतुबदीन ने कालिंजर पर (1202 ई0) में आक्रमण कर दिया । परमर्दी बड़ी वीरता से लड़ा अन्त में उसे आत्म समर्पण करना पड़ा । कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गयी । कालिंजर पर कुतुबुदीन का अधिकार हो गया । उसने वहाँ लूटपाट की, मन्दिर तोड़कर मस्जिद बनवाई । इस प्रकार मुसलमान आक्रमण से चन्देल राज्य व कला संस्कृति को भारी धक्का पहुँचाया ।

चन्देल नरेश बहुत धार्मिक थे । अब तक प्राप्त सभी लेख शिव व विष्णु की वन्दना से प्रारम्भ होते हैं । अतः ये लोग शिव व विष्णु के उपासक थे । शिव को इस समय महादेव, विश्वनाथ, महेश्वर, केदार आदि नामों से पुकारा जाता था । उनकी मूर्तियों के साथ-नन्दी और त्रिशूल की मूर्तियाँ मिलती हैं। शिव को चन्द्रधारी बताया जाता था । इस समय लिंग पूजा का भी प्रचलन था ।[1]

विष्णु की पूजा उनके अनेक अवतार-रूपों में होती थी, यथा नरसिंह, वाराह, वामन, कृष्ण ।[2] खजुराहो का प्रसिद्ध चतुर्भुज मन्दिर विष्णु भगवान का ही है । इस समय शैव व वैष्णव धर्म में बड़ी सहिष्णुता थी । कुछ अभिलेखों में शिव व विष्णु की वन्दना एक साथ की गयी है । खजुराहों के एक मन्दिर में शिव व विष्णु की प्रतिमा एक साथ स्थापित की गयी है । इसी सहिष्णुता का प्रभाव हमें मदनपुर में देखने को मिलता है । जहाँ शिव व विष्णु के मन्दिर बराबर-बराबर बने हैं । जो छोटी व बड़ी कचहरी के नाम से प्रसिद्ध हैं । इस काल में जैन धर्म व बौद्धधर्म भी विद्यमान थे । इसीलिए जैनियों के कुछ महत्वपूर्ण मन्दिरों का निर्माण हुआ । खजुराहो के प्रसिद्ध जैन मन्दिर इसके उदाहरण हैं । मदनपुर में भी इस काल की जैन मूर्तियाँ हमें देखने को मिलती हैं ।

1- डा0 अयोध्या प्रसाद पाण्डेय - चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, पृष्ठ 163
2- वही, पृष्ठ 162

बुन्देल खण्ड (बुन्देलों से पूर्व) :-

सन् 1182 (सम्वत 1239) में दिल्ली नरेश चौहान पृथ्वीराज ने परमर्दी (परमाल) पर आक्रमण करके महोबा सहित समस्त जैजाकभुक्ति पर अपना अधिकार कर लिया ।[1] परिमल केवल कालिंजर और उसके समीपवर्ती प्रदेश का शासक बना रहा । पृथ्वीराज ने चंदेल राज्य की देख-रेख के लिए "गढ़कुंडार" के खंगार को सूबेदार नियुक्त कर दिया । 1192 सन् में पृथ्वीराज को मोहम्मद गौरी ने थानेश्वर के युद्ध में हरा दिया तथा कुतुबुद्दीन ऐबक को दिल्ली का शासक नियुक्त किया ।

गढ़कुंडार का खंगार शासक निर्बल था अतः कुतुबुद्दीन ऐबक ने सन 1190 में महोबा व कालपी खंगारों से छीन लिया । यद्यपि चंदेलों का राज्य क्षीण हो गया था फिर कालिंजर व अजयगढ़ में उनका राज्य बना रहा । यद्यपि सम्वत् 1203 में चन्देल नरेश परमर्दीदेव [illegible] से कुतुबुद्दीन ने कालिंजर का किला छीन लिया था । फिर भी चन्देलों ने शीघ्र ही इसे अपने अधिकार में कर लिया और सन् 1543 तक उनका राज्य कालिंजर पर बना रहा । जब इस प्रदेश में पूर्ण रूप से चन्देलों का राज्य था तब भी कुछ भाग में गौड राजाओं का अधिकार था ।[2] तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में लगभग समस्त प्रदेश पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था । मुसलमान सरदार मुहम्मद खाँ ने सन् 1434 के लगभग कालपी में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की । उसके बाद इस जनपद पर मालवा के खिलजियों का आधिपत्य हो गया । इस प्रकार इस प्रदेश में

1- मदनपुर अभिलेख के अनुसार - कनिंघम - आ०सर्वे रि०, खण्ड-10, पृष्ठ 99

2- कनिंघम - आ०सर्वे रि०, खण्ड-9, पृष्ठ 155

कहीं हिन्दू और कहीं मुसलमानों का राज्य था । कालिंजर के पूर्व में बघेल बढ़ रहे थे तो सागर, दमोह में गौड, चन्देरी पर कछवाहों का राज्य था । सन् 1256 में सोहन पाल बुन्देला ने "गढ़कुंडार" के खंगार राजा को मार कर उस पर अपना अधिकार कर लिया । बाबर के आक्रमण से पूर्व बुन्देलखण्ड की स्थिति इसी प्रकार रही । 1530 सन् में बाबर ने चंदेरी पर आक्रमण किया तथा मेदनीराय को परास्त कर दुर्ग पर अधिकार कर लिया ।

बाबर के बाद भी जितने मुगल शासक दिल्ली की गद्दी पर आये, सभी ने इस प्रदेश को अपने अधिकार में करने के लिए आक्रमण किये परन्तु बुंदेले शाही सेनाओं का डटकर मुकाबला करते रहे और इस क्षेत्र में अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखी ।

जनपद ललितपुर में कला के विकास का इतिहास :-

कला मानव संस्कृति की उपज है । मानव के द्वारा कला को प्रतिष्ठा हुई है और उसके द्वारा वह आत्म चैतन्य व आत्म गौरव प्राप्त करता रहा है । सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य की भावनाओं तथा विचारों का प्रत्यक्षीकरण कला के द्वारा होता रहा है । किसी देश की कला एक व्यक्ति विशेष के उत्साह का फल नही है, बल्कि कलाकारों की शताब्दियों की मनोरम कल्पना का परिणाम है । अतः किसी क्षेत्र विशेष की कला के अध्ययन में उसका इतिहास व विकास निहित रहता है ।

जिला ललितपुर के पुरातत्व एवं शिलालेख बहुत प्राचीन हैं । विंध्याचल के इस प्राचीन भाग में मनुष्य का अस्तित्व बहुत प्राचीन काल से है । इसका दिग्दर्शन हमें उस क्षेत्र में प्राप्त सामान्य अथवा कुछ सुगढ़ शिल्पित पत्थरों से होता है । ललितपुर के विभिन्न स्थलों से प्रागैतिहासिक उपकरण प्राप्त हुए हैं ।

यहाँ के आदिवासी पहले "शबर" और बाद में "गौड़" लोग थे । इस दोनों के वंशज आज भी यहाँ पर रहते हैं । शबर जाति का वर्णन महाभारत की कथाओं में आता है । जहाँ उन्हें पाँडवों द्वारा हराये जाने का उल्लेख है । गौड़ों का अर्विभाव परम्परानुसार शबरों के बाद हुआ है । गौड़ों द्वारा बनाये गये कठोर ग्रेनाइट पत्थर से निर्मित कुछ छोटे मन्दिर इस क्षेत्र में प्राप्त होते हैं ।[1] जिनकी कला निम्न स्तर की है । गौड़ लोग गौंड बाबा की पूजा करते थे । ऐसे गौड़वाणी मन्दिर तालबेहट के उत्तर पूर्व । जो मदनपुर के दक्षिण में हैं। देखे जा सकते हैं । ये गौंड लोगों के स्वर्णयुग के प्रतीक हैं ।[2] ये मन्दिर छोटे तथा इनकी छत

1- पी०सी० मुखर्जी - रि०आ०एन्टी० आ०डि० ललितपुर, पृष्ठ ।

2- कनिंघम - आ०स०रि०, खण्ड-9, पृष्ठ 155

पिरामिड़ के आकार की है । ऐसे मन्दिर खुरा ग्राम में जिसे "पंचमोरिया" कहा जाता है, जिनमें चार छोटे-छोटे और एक मुख्य मन्दिर है । चारों मन्दिर मुख्य मंदिर के चारों ओर स्थित है । पिपरई (तालबेहट के निकट) दो मन्दिर हैं जो एक गौंड बाबा का व दूसरा महादेव का है । ऐसे ही कुछ अवशेष भदौना, ढंगोल गाँवों में भी प्राप्त होते हैं । ऐसे यह मन्दिर सामान्य वर्गाकार ऊंचे चबूतरे पर बने हैं उनमें कोई नक्काशी नही है । गौड़वाणी मन्दिरों में गौंड़ बाबा के अतिरिक्त, हिन्दू देवताओं की मूर्तियां भी मिलती हैं । यद्यपि वे हिन्दू परम्परा के विरुद्ध गायों को खेतों में जोतते थे ।

स्थानीय परम्पराओं से ऐसा प्रतीत होता है कि गौड़ों को चन्देलों ने हराया था और कुछ विद्वान चन्देलों को गौड़ों का वंशज मानते हैं । लेकिन यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि चन्देलों से पूर्व गुप्त व देव वंश सत्ता में रहे हैं तथा इस क्षेत्र में उस काल के अकाट्य प्रमाण मिलते हैं । गुप्त काल के स्थापत्य मूर्तिशिल्प व शिलालेख देवगढ़ में विस्तृत रूप से प्राप्त है जो इस राज्य के इस क्षेत्र में होने के स्वतः प्रमाण हैं । देवगढ़ में नाहर घाटी व सिंह गुफा में दो शिलालेख प्राप्त हैं जो निश्चित रूप से गुप्तकालीन हैं तथा उन पर सम्वत् स्पष्ट हैं । इस काल की मूर्ति कला का सर्वोत्तम उदाहरण देवगढ़ में ही प्राप्त दशावतार मन्दिर है, जो अपनी महान कला के कारण जग प्रसिद्ध है, जिसकी राजधानी कन्नौज थी ।

गुप्त राजाओं के बाद कन्नौज में देववंश का राज आया । ये लोग कला प्रेमी थे, इसके अकाट्य प्रमाण हमें इस जनपद में ही प्राप्त होते हैं । देवगढ़ के जैन मन्दिर सं0 12 के तोरण के लेख पर इस वंश के राजा भोजदेव का नाम व सम्वत् 919 (883 ए0डी0) दिया गया है । इसका ऐतिहासिक शिलालेख जखौरा में प्राप्त है जिस पर जैन मन्दिरों को दान दिये जाने का वर्णन है । यद्यपि यहाँ नरवर में संवत 1 से 275 तक

नागवंश का प्रभाव रहा है, लेकिन वर्तमान में बानपुर व उसके आस-पास नाग पूजक लोगों के अतिरिक्त उस काल के कला के कोई साक्ष्य प्राप्त नहीं हैं ।

चन्देलों के स्थानीय शासन से पूर्व यहाँ पर मदनपुर में जिसका पूर्ववर्ती नाम "पाटन" या पट्टन था । एक बहादुर राजा मंगलसेन हुआ था जिसके महल के भग्नावशेष गाँव के घरों के आस-पास आज भी दिखाई देते हैं । किंवदन्ती है कि मदनवर्मा ने जो मीनार अपने नाम से पुनः प्रतिष्ठित की थी वह इसी राजा की थी ।[1] मध्यभारत के राजा सुमेर सिंह ने अपनी पत्नि ललिता देवी के नाम पर ललितपुर नगर बसाया था, जिसने राजा को पेट में पल रहे साँप से बचाया था । स्थानीय किंवदन्ती के अनुसार देवपत व क्षेमत दो वैश्य भाई थे जिन्होंने देवगढ़ व दुधई के जैन मन्दिर बनवाये और पार्लिशाह एक धनी जैन था जिसने चाँदपुर व बानपुर के जैन मन्दिर का निर्माण कराया था ।[2] चन्देल वंश इस क्षेत्र में इतना महत्वपूर्ण रहा है कि इस क्षेत्र में प्राप्त किसी भी प्राचीन वास्तु अथवा मूर्ति के बारे में पूछने पर स्थानीय लोग उसे "चन्देली" कहते हैं, चाहे वहगौड़वाणी हो या गुप्त या फिर कोई और ।

ललितपुर जनपद में चन्देल काल के मुख्य मन्दिर देवगढ़, मदनपुर, बानपुर, दुधई, चाँदपुर आदि में प्राप्त हैं, जो योजना व विवरणों में भिन्न है । कीर्ति वर्मा के समय के ॥1040 - 1100 ए०डी०॥ जो कि वत्सराज का मंत्री था, के राजघाटी के चट्टानों में मूर्तिकला के कुछ उदाहरण प्राप्त हैं । उसने यहाँ "कीर्ति दुर्ग"

1- पी०सी० मुखर्जी - रि०आ०एन्टी०आ०डि० ललितपुर, पृष्ठ 2

2- वही, पृष्ठ 2

नामक एक किला बनवाया, जिसकी दीवारें 15 फिट चौड़ी व 20 फिट ऊँची बनी हैं। यह केवल पत्थरों से निर्मित है, उसमें कहीं भी सीमेन्ट का प्रयोग नहीं है।[1]

मदनपुर में दो मन्दिर हैं, जो परमाल (परमर्दी) के सेनापति आल्हाउदल की कचहरी के नाम से विख्यात है। इन दोनों मन्दिरों के अवशेष चन्देल कालीन कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। बड़ी कचहरी, जैसा कि उसमें शिलालेख से पता चलता है, शिव का मन्दिर था तथा छोटी कचहरी विष्णु को समर्पित थी। यह कमरे के आकार का है तथा इसकी वेदी नष्ट हो गयी है। इसकी छत व चारों ओर के किनारों पर चित्र हैं। बड़ी कचहरी की छत बीच से गिरी हुई है, उसमें शिव की विशाल मूर्ति थी जो अब नहीं है। इसमें पश्चिमी द्वार पर अनेक मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं, जो बहुत सुन्दर व कलात्मक हैं। दोनों मन्दिर बहुत ऊँचे चबूतरे पर बने हैं, जिनमें जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। छोटी कचहरी में ही एक शिलालेख है, जिससे पता चलता है कि दिल्ली के चौहान नरेश पृथ्वीराज ने परमर्दी को हराया था जिसमें सम्वत् 1239 (1182 ई०) पड़ा है।

चाँदपुर में चार जैन मन्दिर हैं, जो एक ही स्थान पर बने हैं। एक मन्दिर का बरामदा जिसके दो स्तम्भ व द्वार शिल्प कला के अच्छे उदाहरण हैं। इनमें तीर्थंकर की खण्डित मूर्ति हैं एक दूसरे मन्दिर का मण्डप नष्ट हो चुका है जिसमें कायोत्सर्ग तीर्थंकर की प्रतिमा बनी है। दुधई में दो मन्दिर हैं,

---

1- भाग चन्द जैन - देवगढ़ की जैन कला, पृष्ठ 41-42

जो एक दूसरे के सामने स्थित है । पूर्वी मन्दिर में एक बहुत बड़ी पद्मासन मुद्रा में तीर्थंकर की मूर्ति है । पश्चिम के मन्दिर में कुछ समूहों में मूर्तियाँ बनी हैं तथा कुछ मूर्तियाँ दीवार के पास बनी हुई हैं ।[1]

बानपुर गाँव से एक कि0मी0 दक्षिण में भव्य आकृति का मंदिर है, इसका शिखर कलात्मक है । चारों द्वारों पर मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं । यह मन्दिर क्षेत्रपाल के नाम से प्रसिद्ध है । इस प्रकार चन्देली कला के अनेक उदाहरण पूरे जनपद में देखने को मिलते हैं । जिससे पता चलता है कि चन्देल राज्य कला प्रेमी व संस्कृति का पोषक था । चन्देलों के बाद इस जनपद में मुसलमानों का राज्य रहा लेकिन उस काल में कला का ह्रास हुआ है और न ही उस काल के कलात्मक अवशेष हमें इस जनपद में प्राप्त होते हैं ।

मुसलमानों के बाद बुन्देलों का काल प्रारम्भ होता है । इस काल के शिलालेख देवगढ़ में प्राप्त हुए हैं । ललितपुर जनपद में बानपुर का किला व ग्राम का जैन मन्दिर जिसमें सुन्दर चित्रकारी प्राप्त है जो इस काल के शौर्य की कहानी कहते हैं । 1857 के क्रांति युद्ध में बानपुर का यह किला नष्ट हुआ, जिससे इस किले में बुन्देलकालीन चित्रकला नष्ट हो गयी । अब उसके अवशेष मात्र ही देखने को मिलते हैं । मदनपुर में पंचमढ़ी में इस काल के जैन प्रतिमाएँ प्राप्त हैं लेकिन उनमें चन्देल काल जैसी कला नहीं है ।

1- पी0सी0 मुखर्जी - रि0आ0एन्टी0आ0डि0 ललितपुर, पृष्ठ 14

अध्याय – ३

-: मूर्तिशिल्प :-

:: भारतीय मूर्ति कला के ऐतिहासिक विकास की पृष्ठभूमि ::

प्रतिमा कला के विकास की कथा अत्यन्त प्राचीन है । धर्म के साथ-साथ प्रतिमा कला, नीति तथा मनोरंजन से भी जुड़ी रही है तथा कालान्तर में सभी क्षेत्रों में इसका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । भारत की प्राचीनतम सभ्यता सिन्धुघाटी की सभ्यता है, तत्कालीन प्रतिमाओं को देखने से विदित होता है कि उस समय धर्म के क्षेत्र में कलाकारों का दृष्टिकोण अधिक व्यापक न था । यह युग कालान्तर में प्रादुर्भूत होने वाले सभी सम्प्रदायों को उपास्य प्रतिमाओं का मूल स्रोत एवं प्रारम्भिक अवस्था है ।

महावीर स्वामी और बुद्धदेव के अनन्तर भारत के सांस्कृतिक संरक्षण का उत्तराधिकार प्रतापी मौर्यवंश (321 -148 ई०पूर्व) को प्राप्त हुआ, इस काल की मूर्ति कला में बारीकी व समानता है, विशेष प्रकार की चमक (ओप) इस काल की मूर्तियों की विशेषता है । मौर्यकाल की कला भारत में एक नयी तर्ज लेकर आयी और यह भी सत्य है कि मौर्य कला अशोक के साथ भारत में आयी तथा अशोक के साथ ही चली गयी ।

मौर्यकाल के बाद का राजनैतिक इतिहास बहुत उलझा हुआ है । शुंग काल को भारतीय संस्कृति का पुर्नजागरण-युग की संज्ञा दी जाती है । शुंग ब्राह्मण थे तथा इस सम्प्रदाय के मन्दिरों की शैली का आधार पर्वत शिखर थे । इस काल की पकाई मिट्टी की मृण मूर्तियां भी मिलती हैं इनका चिपटापन इस काल की मूर्तिकला की विशेषता है ।

50 ई० पूर्व के लगभग शकों का दूसरा प्रवाह भारत आया, इनमें एक सरदार "कुषाण" बहुत शक्तिशाली हुआ है । कुषाण काल मूर्तिकला की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है । इसमें मूर्तिकला के दो केन्द्र

"मथुरा" व "गांधार" विकसित हुए । मथुरा की सभी मूर्तियाँ चित्तिदार लाल पत्थर से निर्मित हैं । यहाँ की मूर्तियों में डौल का चिपटापन नहो है वे श्रृंगार रस प्रधान, सुन्दर अंग-प्रत्यंग व भावपूर्ण है । बुद्ध की भारतीय प्रतिमा बनाने का श्रेय यहाँ के कलाकारों को है । इस काल की कला भारत में उत्तरोत्तर नये शिल्प और सुरुचिपूर्ण प्रतिमानों की अभिव्यंजन करती हुई बाद में अनेक शतियों तक निरन्तर फलती-फूलती रही हैं और भारतीय मूर्तिकला के इतिहास को एक प्रशस्त मार्ग प्रदान कर गयो है ।

नागों के समय में एक विशेष वास्तु शैली का जन्म हुआ जिसे नागर शैली कहा गया । इस काल में वास्तु शास्त्र व मूर्ति शास्त्र के नियम निर्धारित हो चुके थे । कुषाण काल के गोल चेहरों के स्थान पर अब लम्बोत्तर चेहरे बनने लगे थे । इस काल में नदी देवियों की प्रतिमाएं मन्दिर द्वारों के चौखटों पर बनने लगी जो मध्य काल तक चली ।

गुप्तकाल भारत का स्वर्ण काल कहलाता है । गुप्तों का कला प्रेम और उत्कृष्ट रुचि उनके युग की प्रत्येक कृति में टपकती है । उनकी कला में एक साथ भावुकता, अध्यात्मिकता, गांभीर्य और रमणीयता है, अलंकरण का प्रयोग कम से कम हुआ है । गुप्त काल की सभी मूर्तियाँ विशेष अनुपात में बनी हैं व अनुपात मुख की लम्बाई से निश्चित किया गया है । शरीर पर मांसपेशियों के चिन्ह नहो हैं । गुप्तकाल की सर्वप्रथम प्रमुख विशेषता उनकी भाव प्रवोणता है । बुन्देलखण्ड में ललितपुर के पास देवगढ़ में प्राप्त दशावतार मन्दिर आदि गुप्त काल को मूर्ति कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं ।

10वीं शताब्दी के प्रारम्भ के साथ मध्यकाल का उत्तरार्द्ध चलता है। इनमें मुख्यतया चन्देल, परमार आदि राज्य हुए। इस समय कलाकारों की कल्पना प्रौढ़ावस्था को प्राप्त होने लगी थी। मध्यकालीन उत्तरी भारत के सर्वोत्कृष्ट मूर्तिकला के उदाहरण खजुराहो के मन्दिर है जो बुन्देलखण्ड में चन्देलों के राज्य में बने। इसके अतिरिक्त चन्देली मूर्तिकला के अन्य उदाहरण हमें महोबा, देवगढ़, कालिंजर, मदनपुर, बानपुर, दुधई, चाँदपुर, सिरोन खुर्द आदि में देखने को मिलते हैं। यह क्षेत्र मूर्तिकला का समुद्र है जहाँ कलाकार ने मानव जीवन के प्रत्येक पहलू को अपना विषय बनाया। इनके राज्य में तीनों धर्मों की त्रिवेणी बही है। इस काल में मूर्तियों को गहराई से कोरने की परम्परा बन गयी थी जो पन्ना की खानों से लाये गये मटियाले, पीले अथवा गुलाबी रंग के पत्थर पर उत्कीर्ण की गयी। चेहरे अण्डाकार, ठोड़ी नुकीली, आँखें अर्धखुली, भौंहें बारीक व लम्बी, ऊँची नाक व होंठ मोटे बनाये गये जिससे चेहरे का सौन्दर्य एक विशेष कोण से देखने पर कुछ अधिक बढ़ जाता है। अधिकतर मूर्तियाँ खड़ी हुई तथा भिन्न-भिन्न मुद्राओं से युक्त बनी हैं। इन मूर्तियों में जहाँ एक ओर गम्भीर आध्यात्मिकता है तो दूसरी ओर उत्कृष्ट लौकिकता की सूक्ष्मदृष्टि संनिहित है। उसमें जीवन का स्पन्दन देखने को मिलता है।

:: मूर्ति शिल्प ::

गुप्त काल से लेकर बुन्देल काल तक कलाकार के छैनी हथौड़े से निकला संगीत समस्त बुन्देलखण्ड को गुंजित करता रहा है। मदनपुर में चन्देल काल और बुन्देल काल का कलात्मक इतिहास पत्थरों के हृदय पर आज भी मूर्ति के रूप में लिखा मिलता है। यहाँ ब्राह्मण व जैन दोनों धर्मों की कलाधारा साथ-साथ बही है। ग्राम के दक्षिण में जहाँ दोनों कचहरियों में ब्राह्मण धर्म से ओत-प्रोत कला थाती दृष्टव्य है वहीं ग्राम के उत्तर की ओर पहाड़ी पर जैन धर्म के कलात्मक उदाहरण अपना प्रमाण स्वयं प्रस्तुत कर रहे हैं।

विष्णु-शेषशायी :-

हिन्दु सम्प्रदाय में वैष्णव सम्प्रदाय का एक विशिष्ट स्थान रहा है। विष्णु सर्वप्रथम वैदिक काल में एक साधारण देवता के रूप में दिखाई देते हैं। उत्तर वैदिक काल में विष्णु का महत्व धीरे-धीरे बढ़ गया था। महाकाव्यों और पुराणों के समय में विष्णु परवर्ती हिन्दु देवत्रयी-ब्रह्मा-विष्णु-महेश के सर्वाधिक महत्वपूर्ण देवता बन गये। निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के निर्मित देवताओं के रूप धारण करने का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। भगवान का मनुष्य अथवा पशु के रूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण होना "अवतार" कहलाता है।

परवर्ती शास्त्रों में विष्णु के दशावतारों का उल्लेख मिलता है। ई0पू0 के अनेक अभिलेखों में

भागवत देवग्रहों का उल्लेख मिलता है ।[1] मध्यकाल में वैष्णव मन्दिरों के सम्मुख गरूड़ ध्वज निर्मित करने की परम्परा थी और आज भी इस परम्परा का प्रचलन है । इन मन्दिरों में पूजार्थ मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करने की
परम्परा थी और आज भी इस परम्परा का प्रचलन है । इन मन्दिरों में पूजार्थ मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करने की
अधिक सम्भावना है ।[2] शुंग काल में विष्णु-मूर्तियाँ बनने के अनेक साक्ष्य प्राप्त होते हैं ।[3] कुषाण काल में विष्णु मूर्तियाँ बनने लगी थीं । मथुरा संग्रहालय में ऐसी अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध हैं, उनमें विष्णु के आयुध पूरी तरह निश्चित नहीं हो पाये थे । यद्यपि सभी मूर्तियाँ चतुर्भुज हैं । हाथ में जलपात्र या अमृतघट उस समय की देव मूर्तियों की विशेषता थी ।[4] विष्णु की अनेक मूर्तियाँ, स्थानक, आसन, शेषशायी रूप तथा विभिन्न अवतार रूपों में गुप्तकालीन मथुरा, उदयगिरी, देवगढ़ आदि में प्राप्त हुई हैं । कलादृष्टि से बहुत सुन्दर है । मध्य युग में प्रतिमा विज्ञान अधिक जटिल हो गया था, फलतः विष्णु मूर्तियों के नये रूप विकसित हुए । विष्णु धर्मोत्तर पुराण में शेषशायी विष्णु पद्मनाभ नाम से वर्णित है । पद्मनाभ जल के बीच पड़े शेष पर शयन करते हैं । उनका एक चरण लक्ष्मी की गोद में और दूसरा नाग की गोद में रहता है । एक हाथ जानु पर, दूसरा नाभि पर तीसरा मस्तक के नीचे और चौथा सन्तान मंजरी युक्त होता है । नाभि से उत्पन्न कमल पर ब्रह्मा आसीन होते हैं । मधु-कैटभ असुर कमल नाल से संलग्न रहते हैं । ।विष्णु धर्मोत्तर -8।-2-8। पद्मपुराण में भी विष्णु का लगभग वही विवरण मिलता है, किन्तु वहाँ उनकी दो भुजाओं-एक जानुपर प्रसारित तथा दूसरी

1- वासुदेव शरण अग्रवाल - मथुरा कला, पृष्ठ 14
2- जे0एन0 बनर्जी - डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी, पृष्ठ 93
3- वही, पृष्ठ 95
पृष्ठ १८७
4- वासुदेव शरण अग्रवाल - मथुरा कला, पृष्ठ 59

मुर्धन्यदशान्त वर्णित है । अपराजित पृच्छा व रूप-मण्डन में विष्णु का यह रूप जल शायी नाम से वर्णित है । अपराजित पृच्छा के अनुसार किरीट, माला, हार, कुण्डल से अलंकृत शेष पर शयन करते हों, चतुर्भुजा हों, दाहिना एक हाथ सिर के नीचे दूसरा कमलहस्त हो । बायाँऊर्ध्व एवं सुदर्शन चक्र व गदा से युक्त हो । चरणों के पास लक्ष्मी, नाभि कमल पर ब्रह्मा आसीन हों, यहाँ मधु-कैटभ का उल्लेख नहीं है ।[1]

रूपमण्डन में जल शायी विष्णु का वर्णन संक्षिप्त है । नाभिकमल पर ब्रह्मा सिर के निकट "श्री भूदेवी", दोनों पार्श्वों में मधु व कैटभ तथा निधि व अस्त्र आदि का चित्रण बताया गया है ।[2] जलशायी रूप का सर्वप्रथम वर्णन "रघुवंश" में मिलता है । तथा इसी विवरण के अनुसार गुप्तकाल में मूर्तियाँ बनीं । देवगढ़ में दशावतार मन्दिर के बाहर शेष-शायी विष्णु की सुन्दर मूर्ति गुप्त काल की है । खजुराहों में शेषशायी विष्णु की मूर्ति प्राप्त हुई है ।

बानपुर में मानिक टीला में शेषशायी विष्णु की एक सुन्दर, विशाल, लेकिन खण्डित मूर्ति प्राप्त हुई है जोअब राजकीय संग्रहालय झाँसी में है । (101-अ)

यह विष्णु भगवान की शेषनाग की छत्र छाया में लेटी हुई लगभग 6 फिट लम्बी मूर्ति (चित्र संख्या -101) है । बायें दोनों हाथ खण्डित हैं, दायाँ एक हाथ गदा पकड़े हैं तथा दूसरा हाथ सर के नीचे तकिये के रूप में खड़ी मुद्रा में है । शेषनाग -फणावली सात फणों से युक्त थी, जिसमें से तीन फण खण्डित हैं ।

1- अपराजितपृच्छा - 219/1-9

2- रूपमण्डन - सूत्रधार रूपमण्डन- सम0 बलरामश्री वास्तव - मोती लाल बनारसीदास- पृष्ठ 56

बाँया पैर खण्डित है । सिर पर सुन्दर मुकुट कानों में कुण्डल, गले में माला पहने हैं । मोतियों का यज्ञोपवीत एवं मेखला से सुशोभित हैं । हाथों में बाजु-बन्द व कंकण दृष्टिगोचर होते हैं । मूर्ति के मुखांग कुछ घिसे हुए हैं । चरणों के पास लक्ष्मी की मूर्ति होने के चिह्न प्राप्त हैं । शेषनाग बहुत सुन्दर जिह्वा बाहर निकाले हुए चमकदार आँखें व त्वचा के सुन्दर अंकन से परिपूर्ण है । यह मूर्ति कुछ लोगों ने शायद नाग देवता की समझकर जमीन में खड़ी अवस्था में गाड़ रखी थी । जो लगभग 1 फिट 6 इंच मिट्टी में घुटनों तक दबी हुई थी । यह मूर्ति स्थानीय बलुऐ पत्थर से निर्मित है व तीनों ओर से गहराई में कोरी गई है ।

शिव :-

भारतीय मूर्ति-विधान में प्रकृति और पुरुष की एकता का आभास अनेक रूपों में कराया जाता है । उमा-महेश्वर के प्रतिमाविधान का भी यही उद्देश्य है । उमामहेश्वर की प्रतिमा का विधान विष्णु-धर्मोत्तर पुराण[2] और रूपमण्डन में है । रूपमण्डन का विवरण मूल रूप में "अपराजित पृच्छा" का है । अपराजितपृच्छा[3] व रूप मण्डन[4] के अनुसार चतुर्भुज शिव उमा के साथ आसीन दिखाये जाने चाहिये । शिव के दाहिने हाथ में त्रिशूल और दूसरे दाहिने हाथ में मातुलिंग होना चाहिए । बाँए ओर का एक हाथ उमा के स्कन्ध पर स्थित होना चाहिए तथा दूसरा सर्प लिये होना चाहिये । उमा के एक हाथ शिव के स्कन्द

1- पी०सी० मुखर्जी- रि०आ०ऐन्टी० इन डि० ललितपुर, खण्ड-1, पृष्ठ 30

2- वि०ध० पुराण - 3/55

4- रूपमण्डन - 4/27-39

3- अपराजित पृच्छा - 213/25-27

पर हो तथा दूसरे हाथ में दर्पण होना चाहिए । उमा-महेश्वर की प्रतिमा के नीचे वृषभ तथा सिंह प्रदर्शित करने का विधान है । तथा बीच में भृंगी ऋषि नृत्य करते बनाये जाने चाहियें । बानपुर में अतिशय क्षेत्र के एक मन्दिर की दीवार में उमामहेश्वर की एक प्रतिमा लगी हुई है, जो सम्भवतया कहीं और से प्राप्त हुई हो और मन्दिर के जीर्णोद्धार के समय यहाँ लगा दी गई है ।

बानपुर के उमा-महेश की प्रतिमा :-

उमा-महेश की लाल पत्थर से निर्मित एक मूर्ति अतिशय क्षेत्र बानपुर के जैन मन्दिर न0 3 की दीवार के एक बाहरी आले में जड़ी हुई है ।।चित्र संख्या 80। इसमें पार्वती ।उमा। शिव के बायें पैर पर बैठी है । तथा शिव का दाँया पैर नीचे रखा है । चतुर्भुज शिव का दाँया आगे वाला हाथ वरद मुद्रा में है तथा पीछे वाले हाथ में नाग लिये हैं तथा बाँया एक हाथ उमा के स्कन्ध पर रखा है । तथा दूसरे बाये हाथ में त्रिशूल पकड़े हैं । उमा द्विभुजी है, जिनका दाहिना हाथ शिव के बाये पैर पर तथा अपना बाँया हाथ अपने बांये पैर पर रखा है । दोनों ही सुन्दर आभूषणों से सुशोभित है। नीचे नन्दी व सिंह बैठी मुद्रा में बने हैं । यह मूर्ति गहराई में कोर करके बनाई गयी है ।

बानपुर में गणेश खेड़ा में प्राप्त 3 विशाल नन्दी व उपरोक्त प्राप्त उमा-महेश पर मिलना इस बात का द्योतक है कि किसी समय यह विशाल शिवालय रहे होगें क्योंकि नन्दी की मूर्ति की स्थापना शिव के साथ ही होती है । बानपुर में ही एक सहस्त्रलिंग होने के उल्लेख भी प्राप्त हुए हैं, जो मुझे नही मिला ।

मदनपुर के शिव मन्दिर(बड़ी कचहरी) में भी विशाल शिव मूर्ति का उल्लेख कनिंघम ने किया है लेकिन अब यह मूर्ति भी अप्राप्त है, वहाँ भी अब मात्र नन्दी की मूर्ति मिलती है । इनसे ऐसा प्रमाणित होता है कि दोनों स्थानों पर शिव की अनेक मूर्तियाँ रही होंगी ।

ब्रह्मा :-

वैदिक साहित्य की अपेक्षा पौराणिक साहित्य में ब्रह्मा का महत्व गौण है । उपासना की दृष्टि से जो महत्ता विष्णु व शिव यहाँ तक की गणपति और सूर्य को प्राप्त है, वह भी ब्रह्मा को नहीं है । इसका प्रभाव मूर्ति शास्त्र पर भी पड़ा है । आसन और वाहन भेद से ब्रह्मा की मूर्ति दो प्रकार की बनाई जाती है ।

1- कमलासन 2- हंसारूढ़

हंसारूढः क्वाचिद् कार्यः क्वचित्तु कमलासनः । मत्स्य पुराण 259/40

रूप मण्डन में ब्रह्मा की कमलासन की मूर्ति का ही विधान बताया गया है । यहाँ ब्रह्मा के चार मुख व चार हाथ बताये गये हैं । जिनमें दक्षिणी निचले हाथ में जयमाला व ऊपरी हाथ में स्रुवा और बायें ओर के ऊपरी हाथ में पुस्तक व नीचे के हाथ में कमण्डलु बताया गया है ।[1] मत्स्य पुराण में ब्रह्मा को दण्डधर बताया गया है, जबकि अपराजित पृच्छा में कमलासन ब्रह्मा-प्रतिमा दण्डधर नहीं है । मत्स्य पुराण में ब्रह्मा के बायें सावित्री

1- रूपमण्डन-सूत्रधार रूपमण्डन- सम्पादक- बलराम श्रीवास्तव, अध्याय-2, श्लोक-7

व दायें सरस्वती प्रतिमा बैठाने का विधान है ।

वामे पार्श्वेऽस्य सावित्री दक्षिणे च सरस्वतीम् । मत्स्यपुराण 259/44

मदनपुर की कमलासन-ब्रह्मा प्रतिमा :-

मदनपुर में कमलासन-ब्रह्मा की एक प्रतिमा प्राप्त है, जो इस समय बड़ी कचहरी के पतनाले के ऊपर पड़ी हुई है । यह 2 फिट लम्बे व 1 फिट 6 इंच चौड़े शिलापट पर उत्कीर्ण की हुई है । ब्रह्माणी ब्रह्मा के बायें पैर पर विराजमान है व दोनों ही के मुख पूर्णतया खण्डित हैं । ब्रह्मा की दाढ़ी स्पष्ट है । चतुर्भुज ब्रह्मा का दाहिना सामन्य हाथ वरद मुद्रा में है, जबकि पिछला हाथ पूर्णतया खण्डित है । बाँया सामान्य हाथ कमण्डलु लिये हुए है और पिछले हाथ में पुस्तक है जो अर्धखण्डित है । ब्राह्माणी के चारों हाथ खण्डित हैं । दोनो अनेकों आभूषणों से अलंकृत है । ब्रह्मा का दाँया पैर नीचे की ओर लटका हुआ है । और बायें पैर के नीचे हंस उत्कीर्ण है ।

शक्ति :-

मातृदेवी या मातृका की पूजा का विधान सिन्धु सभ्यता से ही भारत में चला आ रहा है । मातृकाएँ भारतीय-मूर्ति-विधान व उपासना में विशेष मान्यता रखती हैं । इनकी संख्या ग्रन्थ-भेद से सात, आठ व सोलह तक गिनायी गयी है । सामान्यतया सप्तमातृकाओं में ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी,

वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा की गणना होती है ।[1] सप्तमातृकाओं की उत्पत्ति के विषय में पुराणों में कई परम्परायें हैं । वराह पुराण के अनुसार सप्तमातृकाओं की उत्पत्ति का सम्बन्ध अंधकासुर-वध से है । शिव व अंधकासुर के युद्ध के समय शिव की सहायता के लिए आये ब्रह्मा, कुमार, विष्णु, वराह, इन्द्र, यम, देवताओं ने अपनीशक्तियाँ उत्पन्न कीं, जिन्होंने अन्धकासुर का विनाश किया । इन्हीं देवों की शक्तियाँ इन्हीं के नाम से सप्तमातृकायें कहलायीं ।

मार्कण्डेय पुराण के दुर्गासप्तशती में सप्त मातृकाओं की उत्पत्ति का प्रसंग रक्तबीज और शुंभ-निशुम्भ वध से सम्बद्ध है । इस युद्ध में जिस देवता का जैसा रूप वेष-भूषा व वाहन है, ठीक वैसे ही साधनों से सम्पन्न होकर उनकी शक्तियाँ असुरों से युद्ध के लिए आयीं ।[2]

रूप मण्डन में सप्तमातृकाओं का विवरण मत्स्यपुराण के मातृ का विवरण सम्बन्धी श्लोकों के चयन पर आधारित है ।[3] कुषाण कालीन एक सप्तमातृका पट्ट मथुरा संग्रहालय में है, जिसमें मातृकाओं को साधारण व बिना वाहन के बनाया गया है ।[4] गुप्तकाल में मातृकाओं को बनाने की परम्परा रही है । सप्तमातृकायें वीरभद्र व गणेश के साथ अपने वाहनों व आयुधों के साथ बनायी गयी हैं । देवगढ़ में नाहर घाटी व राजघाटी में गुप्तकालीन सप्तमातृकाओं का अंकन अपने वाहनों व आयुधों के साथ स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है ।

1- गो०ना० राव - एलीमेन्ट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी भाग-1, खण्ड-2, पृष्ठ 379-80
2- दुर्गासप्तशती - देवी महात्म्य - 8/13-14
3- रूपमण्डन -सूत्रधार रूपमण्डन- सम्पादक-बलराम श्रीवास्तव, पृष्ठ-94
4- वी०एस० अग्रवाल - कैटलाग आफ ब्रह्मनीकल इमेज इन मथुरा आर्ट - पृष्ठ 59

मदनपुर की मातृका-प्रतिमाएँ :-

मदनपुर के विष्णुमन्दिर में दो मातृकाएँ अलग-अलग माहेश्वरी व वैष्णवी पश्चिमी द्वार के दोनों द्वार पक्षों पर नीचे की ओर बनायी गई है।

माहेश्वरी प्रतिमा :-

मदनपुर के विष्णु मन्दिर [छोटी कचहरी] के पश्चिमी द्वार के दक्षिणी द्वार पक्ष पर नीचे की ओर 10" x 8" आकार के आयत में "माहेश्वरी" की मूर्ति बनी हुई है, [चित्र संख्या -11] यह अपने वाहन नन्दी पर आसीन है। ये मुकुट, कुण्डल, माला, मेखला, कंकण व पायजेब से अलंकृत है। चतुर्भुजी है, बांये एक हाथ में नाग है जो खण्डित है तथा दूसरा हाथ खण्डित है। दांये ऊपर के हाथ में त्रिशूल है जो कुछ खण्डित है तथा दांया सामान्य हाथ वरद मुद्रा में है। मूर्ति सुअनुपातिक व सुन्दर है। नन्दी बैठी हुई मुद्रा में व ऊपर को देखते हुए उत्कीर्ण किया गया है।

वैष्णवी :-

द्वार के उत्तरी द्वार पक्ष पर नीचे की ओर 10" x 8" आकार के आयत में विष्णु की शक्ति वैष्णवी मातृका की मूर्ति उत्कीर्ण है। [चित्र संख्या -12] यह बैठी हुई मुद्रा में तथा चतुर्भुजी है। मुकुट, कुण्डल, माला, कंकण, बाजुबन्द, मेखला, पायजेब से अलंकृत है। दाहिना सामान्य हाथ वरद मुद्रा में है व पीछे के हाथ में गदा है। बांया सामान्य हाथ शंख पकड़े है व पैर पर रखा हुआ है जबकि बांये पिछले हाथ में चक्र है। एक पैर मुड़ा हुआ है जबकि दांया पैर लटका हुआ है। मूर्ति कुछ खण्डित अवस्था में है।

गणपति :-

गणपति शब्द का अर्थ "गणों के अधिपति " है । शिव गणों के अधिपति को गणपति कहा गया है । गणपति के अनेक नाम जैसे गणेश्वर, गजानन, लम्बोदर, एकदन्त आदि हैं । पाँच प्रमुख हिन्दू सम्प्रदायों में गणपति के उपासकों के "गणपत्य " सम्प्रदाय का भी स्थान है ।

"गणपति" शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद के एक मंत्र में हुआ है ।

"गणानांत्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपश्रवस्त मः । ।ऋग्वेद 2/33/1।

ऐतरेय ब्राह्मण यजुर्वेद आदि में कई स्थानों पर "गणपति" शब्द का प्रयोग हुआ है पर कहीं भी "गणेश" के अर्थ में नहीं है । वैदिक देव सूची में गणेश की गणना नही हुई है । ऐसा प्रतीत होता है कि गणपति भारत के अनार्यों में उपास्य थे । जो धीरे-धीरे आर्य देवों में परिगणित हो गये ।[1] मानवग्रह्यसूत्र तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में "विनायक" शब्द का वर्णन मिलता है । विनायक पूजा परम्परा बहुत प्राचीन होते हुए भी अम्बिकासुत गणपति-विनायक का आविर्भाव बहुत प्राचीन नही है । गणपत्य साम्प्रदायक का प्रचलन पाँचवी और आँठवीं शताब्दी के बीच हुआ था । गुप्त कालीन किसी भी अभिलेख में गणपति अथवा उनके उपासकों का उल्लेख नहीं हुआ है लेकिन हिन्दू देव परिवार में गणपति-विनायक का समावेश गुप्त काल तक हो गया था ।

प्रारम्भिक गणेश मूर्तियों में सम्भवतया यक्षों व नागों की विशिष्टताओं का समावेश था । गणेश के गजबदन होने का यह भी एक कारण हो सकता है । यक्षों की तुन्दिल विशिष्टता गणेश में प्रधान है ही

1- सम्पूर्णानन्द - हिन्दू -देव परिवार का विकास, पृष्ठ 147

और गज के रूप में उनके नाग का मस्तक भी है । ।नाग का अर्थ सर्प व गज दोनों ही होता है।[1] यद्यपि बृहत्संहिता के प्रतिमा-लक्षण अध्याय का वह श्लोक जिसमें गणेश प्रतिमा का वर्णन है प्रक्षिप्त माना जाता है । किन्तु इसमें किंचित भी सन्देह नहीं कि इस श्लोक में गणेश की प्राचीनतम प्रतिमा वर्णित है । इसके अनुसार प्रथमगणों के अधिपति को एक दन्त, गजमुख, लम्बोदर तथा परशु व मूल कन्दधारी निर्मित करना है ।

परवर्ती शास्त्रों के अन्तर्गत गणपति-प्रतिमा का पौराणिक वृतान्त सर्वप्रथम उल्लेखनीय है । विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार विनायक गजमुख और चतुर्भुज हैं । दायें हाथ में त्रिशूल व अक्षय माला बायें हाथ में मोदक पात्र और परशु होना चाहिये । वे एकदन्त व लम्बोदर होने चाहिएं । वहां उनके वाहन "मूषक" का उल्लेख नहीं है । मत्स्य पुराण में भी विनायक गजमुख, लम्बोदर, सर्पयज्ञोपवीत धारी विस्तृत कर्ण, विशाल तुण्ड और एकदन्त वर्णित है । अपराजितपृच्छा में गणेश प्रतिमा का वर्णन सामान्यता मत्स्य पुराण के वर्णन के समान है ।[2] रूपमण्डन में भी गणेश का वर्णन चतुर्भुज उल्लिखित है ।[3] भारतीय कला में गणपति का शुंग कालीन चित्रण का अभी तक कोई प्रमाण नहीं मिला है । पूर्वकुषाण काल की भी कोई मूर्ति देखने को नहीं मिलती है । मथुरा के एक कुषाण कालीन पट पर गज मस्तक युक्त यक्ष का अंकरण है पूर्व गुप्त काल की कुछ मूर्तियां प्राप्त हैं, जो मथुरा संग्रहालय में है जिसमें गणेश, द्विभुज, लम्बोदर, एकदन्त, मोदक खाते हुए प्रदर्शित हैं ।[4] पूर्व गुप्त काल की गणपति प्रतिमा उदयगिरि की चन्द्रगुप्त गुफा में देखी जा सकती

1- जे0एन0 बनर्जी - डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी, पृष्ठ 356
2- अपराजितपृच्छा - 212/35-37
3- रूपमण्डन -सुत्रधार रूपमण्डन सम्पादक -बलराम श्रीवास्तव, पृष्ठ 77
4- वासुदेव शरण अग्रवाल - मथुरा कला, पृष्ठ 74

हैं । गुप्त काल में गणपति-प्रतिमाओं का प्रचलन बढ़ गया था । मथुरा संग्रहालय में ठेठ गुप्त कालीन एक प्रतिमा देखी जा सकती है जिसमें द्विभुज गणेश खड़े हुए सर्पयज्ञोपवीत, एकदन्त, बाँई ओर मुड़ी हुई शुण्ड और बाएँ हाथ में मोदक पात्र के लक्षण पूर्ववत् है । मध्य काल में गणपति प्रतिमाओं का प्रचार बहुत बढ़ गया था । इस काल की गणपति की अनेक आसन, स्थानक व नृत्य-मूर्तियाँ समस्त भारत में उपलब्ध हुई हैं । नृत्य-गणेश मूर्तियों का निर्माण पूर्व गुप्त काल से प्रारम्भ हो गया था । गुप्त काल में इनका प्रचलन बढ़ने लगा था और मध्य युग में यह बहुत व्यापक हो गया । खजुराहो में नृत्य गणेश की मूर्तियों में विविधता देखने को मिलती है । वहाँ दो भुज , चतुर्भुज, अष्ठभुज, दशभुज, षोडश भुजी मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं । समस्त बुन्देल खण्ड में चन्देल काल में नृत्य गणेश की मूर्तियाँ खूब बनी हैं । बानपुर, मदनपुर, सिरोन, बरवासागर आदि में नृत्य गणेश की मूर्तियाँ बहुतायत में प्राप्त होती हैं । सिरोन से प्राप्त नृत्य गणेश की सुन्दर मूर्ति झाँसी राजकीय संग्रहालय में सुशोभित है ॥ चित्र संख्या 91श॥[1] धुबेला संग्रहालय में भी नृत्य गणेश की अनेक मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं ।

बानपुर के नृत्य-गणेश की प्रतिमा :-

बानपुर में गणेश खेड़ा में नृत्य-गणेश की एक प्रतिमा प्राप्त है । ॥चित्र संख्या-91॥ यह नृत्य-मुद्रा में 8 फिट ऊँची व 4 फिट चौड़ी मूर्ति है, जो चारों ओर से गहराई में कोरी गयी है । इसका बाँया पैर टिका हुआ है तथा दाहिना पैर नृत्य अवस्था में है । यह मूर्ति 18 भुजाओं से युक्त है । मुख्य बाँई भुजा

1- एस0डी0 त्रिवेदी - स्कल्पचर्स इन दा झाँसी म्यूजियम, पृष्ठ सं0 59

वरद मुद्रा में है तथा बाँई भुजा नृत्य मुद्रा में । बाई एक अन्य भुजा में मोदक स्पष्ट रूप से परिलक्षित है । दोनों कान फैले हुए तथा शुण्ड बाँई ओर मुड़ी हुई बनाई गयी है । गले में माला, हाथों में कंकण व पैरों में पैंजनी पहने हैं । कमर में बँधी धोती स्पष्ट है । शेष हाथों की मुद्रायें अस्पष्ट है । ऐसा लगता है कि कलाकार ने दोनों ओर भुजाओं को दो शिलापटों पर ही बनाने का असफल प्रयास किया है । दायों और बांयी ओर दो छोटी-छोटी मानव आकृतियां बनी हुई हैं । पूरी मूर्ति पर सिन्दूर पुता हुआ है जिसके कारण पत्थर के रंग का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है । सम्पूर्ण बुन्देल खण्ड में इतनी ऊँची नृत्य गणेश की यह एक ही प्रतिमा है ।

मदनपुर के नृत्य-गणेश की प्रतिमा :-

मदनपुर में एक स्कूल के आँगन में लाल बलुए पत्थर के शिलापट पर उत्कीर्ण एक नृत्य गणेश की प्रतिमा देखी गई है ।चित्र संख्या-52। जिसका आकार 3 फिट x 2 फिट है । यह षट्-भुजी मूर्ति है, जिसके समस्त हाथ खण्डित हैं । शुण्ड भी पूर्ण रूप से खण्डित है । गले में हार पहने है । नाग के यज्ञोपवीत व कटिसूत्र से अलंकृत है । बाया पैर जमीन पर टिका है व दाहिना पैर नृत्य मुद्रा में ऊपर उठा है जो खण्डित है । दाये पैर के नीचे ही उनका वाहन मूषक बना हुआ है । जिसका मुख खण्डित है दोनों ओर दो मृदंग वादक नृत्य मुद्रा में बने हुए हैं ।

हनुमान :-

रामायण में राम के भक्त के रूप में हनुमान का उच्च स्थान है । दशरथी राम के वनवास काल में राम के बहुत बड़े सहायक के रूप में रहे हैं । अग्नि पुराण में हनुमान की प्रतिमा का वर्णन मिलता है । गुप्त काल में हनुमान की प्रतिमा प्राप्त होती है, लेकिन वह स्वतन्त्र रूप में न होकर रामायण की कहानी के आधार पर उत्कीर्ण शिलापटों पर ही मिलती है । देवगढ़ में दशावतार मन्दिर में हनुमान की मूर्ति रामायण के प्रसंग में देखी जा सकती है । लेकिन वह बहुत खण्डित है । देवगढ़ में ही वाराह मन्दिर से प्राप्त मूर्तियाँ जो अब आर्कों सर्वे आ० इण्डिया के देवगढ़ के संग्रहालय में हैं । हनुमान जी की कई प्रतिमाएँ रामायण की कथाओं में उत्कीर्ण देखी जा सकती हैं । हनुमान की देवत्व के रूप में प्रतिमा नवीं शताब्दी में बननी प्रारम्भ हुई है । बुन्देलखण्ड में हनुमान की पूजा मध्य काल से ही व्यापक रूप में होती आयी है । चन्देल काल में हनुमान राजकीय देव के रूप में पूजे जाते थे । इसका प्रमाण चन्देल कालीन सिक्कों पर हनुमान की प्रतिमा से प्राप्त होता है । इस क्षेत्र में अधिकतर प्रतिमाएं शिलापटों पर उत्कीर्ण की गयी हैं । चारों ओर कोर कर वही प्रतिमाएं बनायी जाती थीं जो मन्दिर में मुख्य प्रतिमा होती थी । मदनपुर, बानपुर, सिरोन आदि में हनुमान जी की कोर कर बनायी गयी अनेक प्रतिमाएं प्राप्त हैं । जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ पर हनुमान जी के अनेक मन्दिर रहे होंगे । समस्त बुन्देलखण्ड में हनुमान जी की विशेष प्रकार की प्रतिमाएं प्राप्त होती हैं, जिनमें हनुमान जी अपने पैर के नीचे लंकिनी, राक्षसी को दबाते हुए बनाये गये हैं ।

मदनपुर में प्राप्त हनुमान प्रतिमाएं :-

हनुमान जी की एक खण्डित मूर्ति जो इस समय अतिशय क्षेत्र मदनपुर ।पंचमढ़ी। में रखी है, ।चित्र संख्या 39। पास के तालाब से प्राप्त हुई बतायी जाती है । यह मूर्ति लगभग 6 फिट ऊँची है । इस मूर्ति

में हनुमान जी लंकिनीयक्षी को अपने पैर के नीचे दबाये हुए बनाये गये हैं । इस मूर्ति का शीश खण्डित है, लेकिन वहीं पर रखा हुआ है । दोनों हाथ पूर्णतया खण्डित हैं । दाँया पैर भी खण्डित है लेकिन पूर्ण रूप से प्राप्त है । जिसमें नूपुर बंधे हैं । बाँया पैर अर्ध-खण्डित है जो ऊपर उठा हुआ है तथा लंकिनीयक्षी की पीठ पर रखा हुआ है । गले में हार व वनमाल है । यज्ञोपवीत व कटिसूत्र पहने हुए है । लंकिनी यक्षी घुटनों पर बैठी हुई व पीठ के बल झुकी हुई है । जैसे पैर के भार से दबी जा रही हो । चेहरे पर डर का भाव स्पष्ट है । अस्तिपिंजर स्पष्ट झलक रहा है । पूरी मूर्ति एक पत्थर की लगभग । फिट ऊँची चौकी पर बनी हुई है ।

हनुमान जी, एक अन्य मूर्ति जो मैंने स्वयं खोजी है, मदनपुर में ही कचहरी के सामने की ओर घनी झाड़ियों में ढकी हुई थी । यह मूर्ति एक शिलापट पर गहराई में कोरकर बनायी गयी है जो 5 फिट ऊँची है, ।चित्र संख्या-53। इसके दोनों हाथ व शीश पूर्णतया खण्डित हैं । दाँया पैर स्पष्ट है व बाँया पैर ऊपर उठा हुआ है जैसा उपरोक्त वर्णित मूर्ति में है । यह मूर्ति भी लंकिनीयक्षी को दबाये हुए हनुमान जी की मूर्ति है । घनी कटीली झाड़ियों से ढकी होने के कारण इस मूर्ति को मैं पूर्णतया स्पष्ट न कर सका । दृष्टव्य मूर्ति को ही निकालने में मेरे हाथ घायल हो गये थे ।

इसके अतिरिक्त ग्राम में एक पेड़ के नीचे अनेकों खण्डित मूर्तियाँ पड़ी हैं । हनुमान जी की एक छोटी खण्डित प्रतिमा उनमें भी देखी जा सकती है ।

बानपुर से प्राप्त हनुमान प्रतिमा :-

बानपुर के मानिक टीला में पेड़ के नीचे से प्राप्त मूर्तियों (चित्र सं० 102) में एक हनुमान जी की मूर्ति प्राप्त है जो अर्धखण्डित है । यह आयताकार शिलापट पर गहराई से कोर कर बनायी गई है । एक हाथ सिर के ऊपर दृष्टिगोचर होता है । दूसरा बाया हाथ सीने पर रखा हुआ है जो खण्डित है । लम्बी पूँछ कमर के पीछे से होकर बांयी ओर तक आ गई है । गले में सुन्दर माला व कमर में मेखला धारण किये है । कमर से नीचे का भाग खण्डित है तथा अप्राप्त है । सम्भवता यह मूर्ति खड़ी हुई अवस्था में बनायी गई होगी । आजकल ये मूर्ति राजकीय संग्रहालय झाँसी में रखी हुई है । (चित्र संख्या -102)

नवग्रह :-

हिन्दू ज्योतिष शास्त्र में सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु को नवग्रह कहा जाता है । भारत के विभिन्न भागों में नवग्रह पूजा परम्परा सनातन से चली आ रही है । अग्निपुराण विष्णुधर्मोत्तर, अपराजितपृच्छा, रूपमण्डन, शिल्परत्न, आगमों आदि में नवग्रह प्रतिमाओं के विवरण मिलते हैं । भारत के अनेक मन्दिरों में नवग्रह-प्रतिमाएँ मिलती हैं । उत्तर भारत में इनकी पृथक-पृथक मूर्तियां नहीं मिलती हैं । वरन् सभी ग्रह सामूहिक रूप से शिलापटों पर पंक्तिबद्ध चित्रित मिलते हैं । ये नवग्रह शिलापट अधिकांशतया मन्दिरों के प्रवेश-द्वारों पर उत्तुंग रूप में प्रयुक्त हुए हैं । नवग्रह प्रतिमा-समूह के पूर्ववर्ती चित्रण में सारनाथ से उपलब्ध उत्तर गुप्त कालीन एक अर्धशिलापट उल्लेखनीय है । यह भारतीय संग्रहालय दिल्ली (सं०) 1536) में है । जिसमें चार ग्रह शेष हैं, जो द्विभुज तथा खड़े हुए हैं । ऐसा प्रतीत

होता है कि आठ ग्रहों के चित्रण की परम्परा अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन है। नवां ग्रह केतु बाद में संयुक्त हुआ है। भुवनेश्वर में शत्रुघ्नेश्वर (575 ई0) में प्राप्त ग्रहपट में आठ ही ग्रह बने हैं। यह परम्परा नवीं शती तक देखी जा सकती है। केतु इसके बाद नवग्रह पट पर चित्रित किये गये हैं। अधिकतर नवग्रह कमण्डलु वे अक्षमाला लिये हुए द्विभुज बनाये जाते हैं। सूर्य के साथदण्ड व पिंगल भी बनाये जा सकते हैं। तालबेहट में नवग्रह पट में इन्हें देखा जा सकता है। (चित्र संख्या 57) राहु के दोनों हाथ तर्पण मुद्रा में बने रहते हैं। डा0 बनर्जी का यह कथन कि सामान्यतः नवग्रह प्रतिमाएँ खड़ी मिलती हैं, उनके बैठे चित्र दुर्लभ हैं।[1] मदनपुर व बानपुर में खरे नहीं उतरते हैं। एक ओर जहाँ मदनपुर में चम्पोमठ व छोटी कचहरी के पास खड़े हुए नवग्रह पट पर खड़े हुए नवग्रह बने हुए हैं, वहीं बानपुर में सहस्त्रकूट चैत्यालय के पूर्वी व पश्चिमी द्वारों पर बैठे हुए नवग्रह बनाये गये हैं। (चित्र संख्या 61,62) इनका पृथक-पृथक वर्णन आगे किया गया है।

मदनपुर नवग्रह पट :-

छोटी कचहरी के पश्चिमी ओर एक नवग्रह पट है। (चित्र संख्या 29) जिसकी लम्बाई 7 फिट व चौड़ाई 6 फिट है। जिसके मध्य में गरूड़ासन विष्णु तथा दोनों ओर शिव व ब्रह्मा बने हुए हैं। देवत्रयी के मध्य सभी ग्रहों का अंकन खड़ी मुद्रा में हुआ है। इनके बायें हाथ में कमण्डलु व दायें हाथ में अक्षमाल है, जो ऊपर की ओर उठा हुआ है। चन्द्रमा व मंगल कुछ खण्डित अवस्था में हैं। सभी ग्रह मुकुट माला, मेखला आदि से अलंकृत हैं। पट पर नीचे की ओर सुन्दर अलंकरण है तथा ऊपर की पंक्ति में प्रत्येक ग्रह के ऊपर छत्र या शिखर का अंकन है। जिनके मध्य में गजमुख बनाये गये हैं।

1- जे0एन0 बनर्जी - डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकनोग्राफी, पृष्ठ 144

सम्भवतया यह पट दोनों कचहरियों में से किसी एक द्वार पर लगा होगा । ॥ चूँकि शिलापट के मध्य में गरूड़ासन विष्णु बने हैं जो स्थान"ललाट बिम्ब" कहलाता है । "ललाट बिम्ब" में वही प्रतिमा होती है जो मन्दिर को मुख्य मूर्ति होती है । अतः बहुत सम्भव है कि यह नवग्रह पट छोटी कचहरी ॥विष्णु मन्दिर॥ का ही हो सकता है ॥ ।

चम्पोमठ व सहस्त्रकूट चैत्यालय के नवग्रह पट का वर्णन यथास्थान आगे करेंगें ।

नाग-पूजा ॥नाग-नागी प्रतिमा॥ :-

भारत में नाग पूजा का इतिहास बहुत प्राचीन है । अथर्ववेद में नाग देवताओं के अनेकों नामों से वर्णन मिलते हैं । ग्रामीण देवी-देवताओं में नाग-नागी बहुत प्रसिद्ध देव माने जाते रहे हैं । श्रावण मास में नाग पंचमी के दिन अष्ट नाग व नाग देवी "मनसा" की पूजा का विधान है । मथुरा में प्राचीन काल से ही कृष्ण द्वारा कलिया नाग से युद्ध का वर्णन मिलता है । जिससे कृष्ण द्वारा प्राचीन नाग पूजकों को जीतने पर प्रकाश पड़ता है । मथुरा क्षेत्र में कृष्ण से पहले नाग पूजा बहुत व्यापक थी "दधिकरण" नामक नाग इस क्षेत्र का प्रसिद्ध नाग देवता था । मथुरा संग्रहालय में एक बहुत सुन्दर नाग-मूर्ति है जो मानवाकार है व मथुरा के चरगांव नामक स्थान से प्राप्त है ।[1] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में अनन्त नाग के रूप का वर्णन इस प्रकार है जो चतुर्भुज व अनेक फणों से युक्त हैं । पृथ्वी देवी मध्य के फण पर खड़ी हुई है । नाग के दाहिने हाथ में

1- भगवन्त सहाय- आइकोनोग्राफी आफ माइनर हिन्दु एण्ड बुद्धिष्ट डाईटी, पृष्ठ-74

कमल व बायें हाथ में शंख आदि हैं, यह रूप विष्णु के अनन्त रूप से मिलता है ।[1] शिल्प रत्न में नाग के रूप का वर्णन कुछ इस प्रकार है वह दो भागों में बना होता है । ऊपर का भाग मानवीकृत है अर्थात उसका मुँह व धड़ मनुष्य का हो व नीचे का भाग नाग रूप होना चाहिये । मुख के पीछे एक, तीन, पाँच, सात और नौ फणों होनी चाहिये । प्रत्येक फणों दो जिह्वा युक्त हो । फणों पर मणियाँ सुशोभित होनी चाहिये । वह अपने हाथ में ढाल व तलवार लिये रहते हों ।[2]

बानपुर में मानिक टीला में नाग-नागी के नागा-रूप व मानवीकृत रूप की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं ।

नाग-नागी मूर्तियाँ :-

बानपुर के मानिक टीला से प्राप्त एक नाग-नागी की मूर्ति जो इस समय झाँसी संग्रहालय में देखी जा सकती है । यह एक चौकोर शिलापट पर कोरी गई है । जिसमें दोनों नाग आकृतियाँ आपस में विशेष प्रकार कुण्डली लपेटे हुए बनाये गये हैं । ये नाग रूप व एक फण से युक्त है । वहीं पर एक खण्डित नाग-नागी युग्म मानवीकृत रूप में है । जिसमें नाग व नागी खड़े हुए बने हैं । उनके पूरे शरीर मानवीकृत हैं । लेकिन शीश के स्थान पर फणावली बनायी गई है । वे अनेक आभूषणों से अंकृत हैं । यह युग्म आज भी अपने यथास्थान पर है । एक अन्य नाग-नागी युग्म जो मानवीकृत ही है तथा इस स्थान पर है । लगभग 1 फिट ऊँचा है । इसमें नाग व नागी पूर्ण रूप से मानवीकृत है तथा उनके शीश के पीछे फणावलियाँ अंकित हैं ।

1- के०एन० बनर्जी - डवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृष्ठ 345
2- गो०ना० राव - एलिमेन्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, खण्ड-2, पृष्ठ 274

इन अनेक नाग मूर्तियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ पर प्राचीन काल से नाग पूजा होती आयी है और आज भी यहाँ नाग-पूजक लोग रहते हैं । इस क्षेत्र में निश्चित रूप से नाग जाति का प्रभाव रहा होगा जिसकी परम्परा आज भी दृष्टिगोचर होती है ।

एक ही स्थान पर सुन्दर नाग पट मानवीकृत नाग-नागी तथा शेषशायी विष्णु (नाग-देवता) के रूप में मिलना इस बात का संकेत देता है कि सम्भवतया किसी समय में यहाँ नाग-मन्दिर अवश्य रहा होगा ।

मदनपुर के पास एक गाँव के बाहर एक सुन्दर मानवीकृत नाग-मूर्ति है जो एक चबूतरे पर स्थापित की हुई है । इसकी ऊँचाई लगभग 5 फिट है । इसमें पूरा शरीर नाग रूप में बना है व मुख मानवीकृत है । यहाँ भी ग्रामीण इसकी पूजा नाग-देवता के रूप में करते हैं ।

नन्दी :-

वेद व पुराणों में शिव वाहन "वृष" नन्दी, नन्दीश्वर आदि नामों से जाना जाता है । शिव वाहन के अतिरिक्त नन्दी का स्थान शिव के गणों में भी है । उत्तर वैदिक काल में नन्दी का शिव के वाहन के रूप में ही वर्णन मिलता है । प्रथम शताब्दी से गुप्त काल तक भी नन्दी को शिव के साथ बनाया गया है ।[1] नन्दी शिव के गणों के नेता माने जाते हैं । शिव गण के रूप में नन्दी को चतुर्भुज मानवीकृत रूप में बनाने का विधान है । रूपमण्डन में चतुर्भुज नन्दी का वर्णन है ।[2] वाहन के रूप में नन्दी को बैल रूप में ही बनाने का

1- जे०एन० बनर्जी - डवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृष्ठ 535
2- रूपमण्डन - सूत्रधार रूपमण्डन - सं० बलराम श्रीवास्तव, पृष्ठ 18।

विधान है । द्वार के बाहर उनकी वृष रूप मूर्ति स्थापित की जाती थी । मत्स्य पुराण के अनुसार नन्दी की स्थापना इस प्रकार होनी चाहिये जैसे वह शिव को देखने में तत्पर हों । मदनपुर में एक सुन्दर नन्दी की मूर्ति प्राप्त है ।[1]

मदनपुर का नन्दी :-

मदनपुर ग्राम में बड़ी कचहरी ॥शिव मन्दिर॥ से 50 मी० दक्षिण में एक बैठे हुए वृष की मूर्ति है । ॥चित्र संख्या 2॥ जिसकी लम्बाई 45 इंच व ऊँचाई 35 इंच है । वह एक आयताकार शिलापट पर बैठे हुए बनाया गया है । इसका अगला बाँया पैर आधा खड़ा हुआ बना है । मुख के नीचे एक पुरुष आकृति बैठी हुई मुद्रा में बनी हुई है । जिसका मुख खण्डित है । नन्दी के गले में माला है व अन्य अलंकरणों से युक्त है । नन्दी का शीश काफी घिसा हुआ लगता है । जिससे ऐसा प्रतीत होता किसी समय इसकी बहुत पूजा की जाती रही होगी । यह लाल बलुए पत्थर से बनाया गया है । सम्भवतया यह शिव मन्दिर के मुख द्वार के सामने स्थापित होगा । जो बाद में किन्हीं कारणों से वहाँ से दूर दक्षिण की ओर हो गया या कर दिया गया है ।

बानपुर के नन्दी :-

बानपुर के गणेश खेड़ा में मन्दिर के बाहर तीन नन्दी मूर्तियाँ रखी हैं ।[2] ॥चित्र संख्या 92॥ जो लाल रेतीले पत्थर से निर्मित हैं । इन तीनों के मुख तेजधार वाले हथियार से काटे हुए लगते हैं । तीनों ही कलात्मक दृष्टि से बहुत सुन्दर हैं ।

1- कनिंघम - आर्क० सर्वे रिपोर्ट, खण्ड-21, पृष्ठ 173
2- रमाबसन्ती जोशी - उ०प्र० डि०-गजे० झाँसी-1965, पृष्ठ 328

द्वारपाल :-

छोटी कचहरी के पश्चिमी द्वार के द्वार पक्षों पर दोनों ओर मात्रिकाओं के ऊपर की ओर 36" x 12" के आयत में द्वारपाल बनाये गये हैं। ।चित्र संख्या 10। जो खड़ी हुई मुद्रा में है। ये द्विभुज है लेकिन दोनों हाथ खण्डित हैं। ये अनेक आभूषणों से विभूषित हैं। दक्षिणी द्वारपक्ष के द्वारपाल की मूर्ति कुछ सही है। जबकि उत्तरी द्वारपक्ष के द्वारपाल की मूर्ति पूर्णतया खण्डित हो गयी है।

चाँवर धारणी :-

कचहरी के इसी द्वार के इन्हीं द्वारपक्षों के बाहरी ओर दोनों ओर दो चाँवरधारणी की सुन्दर मूर्तियाँ बनी हैं। ।चित्र संख्या 13। ये आकार में लगभग 36" ऊँची हैं। इनकी भंगिमा आकर्षक है। एक हाथ कटि पर है, व दूसरा हाथ चाँवर लिये हुए ऊपर उठा हुआ है। ये सुन्दर हाथ माला, मेखला, कंकण व पायजेब से अलंकृत हैं। उत्तरी द्वार पक्ष की चाँवर धारणी बहुत खण्डित अवस्था में है। ।चित्र संख्या 14।

:: जैन मूर्ति कला का ऐतिहासिक विकास ::

जैन धर्म में मूर्ति-पूजा के उल्लेख प्राचीनतम काल से पाये जाते हैं। पूजा पूज्य पुरुष की की जाती है। पूज्य पुरुष मौजूद न हो तो उसकी मूर्ति बनाकर उसके द्वारा पूज्य पुरुष की पूजा की जाती है। तदाकार स्थापना का आशय यही है। इसलिए इतिहासातीत काल से जैन मूर्तियाँ पायी जाती हैं और जैन मूर्तियों के निर्माण और उनकी पूजा के उल्लेख से तो सम्पूर्ण जैन साहित्य भरा पड़ा है। जैन धर्म में मूर्तियों के दो प्रकार बताये गये हैं। कृत्रिम और अकृत्रिम[1]

कृत्रिम प्रतिमाओं का जहाँ तक सम्बन्ध है, सर्वप्रथम भरत क्षेत्र के प्रथम चक्रवर्ती भरत ने अयोध्या और कैलाश में मन्दिर बनवा कर उनमें स्वर्ण और रत्नों की मूर्तियाँ विराजमान कराईं। आवश्यक चूर्णि आदि ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के जीवन-काल में उनके दीक्षा लेने से पूर्व उनकी चन्दन काष्ठ की प्रतिमा निर्मित की गयी थी, जिसे जीवन्त स्वामी की प्रतिमा कहा जाता था।[2] बाहुबली स्वामी ने एक वर्ष तक अचल प्रतिमायोग धारण किया था। उस स्थान पर उन्हीं की प्रतिमा निर्मित की गयी थी। ऐसे भी उल्लेख मिलते हैं कि दूसरे तीर्थंकर अजित नाथ के काल में सगर चक्रवर्ती के पुत्रों ने तथा बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत नाथ के तीर्थ में मुनिराज बाली और प्रतिनारायण रावण ने कैलाश पर्वत पर 72 जिनालयों की पूजा की थी।[3]

1- एवं चिरंतमाणंकट्टिमाण पडिमाणं - वसुनंदिश्रावकाचार, 446
2- उमाकान्त परमानन्द शाह - स्टडीज इन जैन आर्ट, पृष्ठ 4
3- बलभद्र जैन - भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ-ज्ञान पी0 प्रकाशन, पृष्ठ 15

पुरातात्विक दृष्टि से जैन मूर्ति-कला का इतिहास सिन्धु सभ्यता तक पहुँचता है । सिन्धु घाटी की खुदाई में मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा में जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई उनमें मस्तक हीन नग्न मूर्ति को जैन-धर्म से सम्बन्धित माना जाता है । भारत भर में उपलब्ध जैन मूर्तियों में सम्भवतया सबसे प्राचीन मूर्ति तेरापुर में स्थित पार्श्वनाथ की प्रतिमा है । इसका निर्माण पौराणिक आख्यानों के अनुसार कलिंग नरेश केरकाण्ड ने कराया था जो पार्श्वनाथ व महावीर के अन्तराल में हुआ था । यह काल ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी है ।

कलिंग-सम्राट खारवेल के हाथी गुम्फा अभिलेख से भी प्रमाणित होता है कि अबसे 2500 वर्ष पूर्व जैन मूर्तियों का निर्माण होता था ।[1]

इसके बाद मौर्य कालीन एक मस्तक हीन जिन प्रतिमा पटना के लोहानी पुर से प्राप्त है जो पटना संग्रहालय में सुरक्षित है ।[2] इसके पश्चात कुषाण काल ई0पू0 प्रथम से प्रथशती की और इसके बाद तो अनेक मूर्तियाँ मथुरा, देवगढ़ आदि स्थानों पर मिली हैं । खण्डगिरी और मथुरा में उपलब्ध विपुल शिल्प, प्रतिमाएं और आयागपट्ट आदि जैन प्रतिमा निर्माण के प्राचीनतम नमूने हैं ।[3] कंकाली टीले से प्राप्त कलाकृतियों में विभिन्न "जिन" प्रतिमाओं के अतिरिक्त स्तूप-चैत्यमूद्धा-ध्वज स्तम्भ, धर्मचक्र और अष्टमंगल द्रव्य आदि का रूपांकन मिला है । प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय की पार्श्वनाथ प्रतिमा लगभग 21 सौ वर्ष प्राचीन आँकी गयी है ।

1- काशी प्रसाद जयसवाल - कलिंग चक्रवर्ती महाराज खारवेल के शिलालेख का विवरण - नागरी प्रचारिणी पत्रिका- भाग-8, अंक-3, पृष्ठ 16

2- के0पी0 जायसवाल - जैन इमेजेज आफ मौर्य पिरीयड, खण्ड-23, भाग-1, पृष्ठ 130-132

3- वी0एस0 अग्रवाल - इण्डियन आर्ट- भाग, पृष्ठ 230

भारशिव, वाकाटक, चन्देल, कलचुरी, कच्छप प्रायः मुसलमानों के आक्रमण और शासन काल से पहले तक विशेषतया मौर्य, कुषाण, गुप्त वंश, प्रतिहार और गहड़वाल वंशों के शासन काल में जैन मन्दिरों, मूर्तियों, आयागपट्टों स्तूपों आदि का विपुल संख्या में निर्माण हुआ । आर्थिक दृष्टि से भी यह समृद्धि युग कहा जा सकता है ।

इसके पश्चात धर्मोन्माद से ग्रस्त होकर कुछ लोगों ने यहाँ न केवल धन सम्पदा को ही लूटा, बल्कि उन्होंने संस्कृति और कला के केन्द्रों का भी विध्वंस किया । कला और कला केन्द्रों के इस दीर्घकालीन और व्यापक विनाश के कारण जैन संस्कृति को गहरा आघात लगा । अन्वेषण व उत्खनन द्वारा जो जैन कला कृतियाँ उत्तर प्रदेश में उपलब्ध हुई हैं, उनका निर्माण काल ईसा पूर्व तीसरी चौथी शताब्दी से ईसा की पूर्व छठी शताब्दी तक है । जितनी मूर्तियाँ प्राप्त हैं, उनमें पद्मासन प्रतिमाएँ अधिक हैं । देवगढ़ में ऐसी प्रतिमाएँ अधिक हैं । अधिकांश प्रतिमाओं की पाद-पीठ पर निर्माण काल अभिलिखित है । इतना तो प्रायः निश्चित है कि जिन प्रतिमाओं पर अभिलेख नहीं हैं, वे ईसा पूर्व से लेकर गुप्त काल अथवा उसके बाद की मानी गयी हैं । मूर्तियों में विविध प्रकार की तीर्थंकर प्रतिमाएँ मिलती हैं, जिनमें सर्वभद्रिका, द्विमूर्ति, त्रिमूर्ति, चौबीस प्रतिमाएँ, सहस्त्रकूट चैत्यालय आदि विविध शैली की जटावली पंचफणावली, सप्त फणावली, सहस्त्र फणावली, सर्पासनवाली, नीचे से ऊपर तक सर्प की कुण्डली वाली मूर्तियाँ मिलती हैं ।

उत्तर प्रदेश में दो स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं । मथुरा व देवगढ़ । मथुरा में पुरातन कालीन जितनी जैन कला-सामग्री भूगर्भ से प्राप्त हुई, उतनी अन्यत्र कहीं से प्राप्त नहीं हुई है । इसी प्रकार देवगढ़ में जितना कला-वैविध्य और मूर्तियों का बाहुल्य विद्यमान है, उतना भारत भर में अन्यत्र कहीं नहीं है । यहाँ तीर्थंकर माता, पंचपरमेष्ठी और शासन देवियाँ की पृथक व विशाल मूर्तियाँ विपुल संख्या में मिलती हैं ।

देवगढ़ में मूर्तियों का निर्माण प्रचुरता में हुआ है । उनकी संख्या और विविधता से प्रतीत होता है कि यहाँ बहुत बड़ा मूर्ति-निर्माण-केन्द्र था ।[1] अन्यथा तीर्थंकरों तथा अन्य देवी-देवताओं की सैकड़ों मूर्तियाँ एक स्थान पर निर्मित होने का कारण दृष्टिगत नहीं होता । मथुरा की भाँति देवगढ़ में निर्मित मूर्तियाँ समीपवर्ती स्थानों को भी भेजी जाती रही होंगी । यहाँ छोटी-बड़ी बहुसंख्यक मूर्तियों की उपलब्धि तथा कुछ अनगढ़ी मूर्तियों का पाया जाना यही सिद्ध करता है कि देवगढ़ मूर्ति-निर्माण केन्द्र था । देवगढ़ के निकट मदनपुर, बानपुर, दुधई, चाँदपुर, सिरोन, अमनाचार, ललितपुर, क्षेत्रपाल आदि स्थानों पर उपलब्ध सहस्त्रों मूर्तियाँ और उनके समीप मूर्ति निर्माण सम्बन्धी किसी चिन्ह के उपलब्ध न होने से भी यह मान्यता अधिक पुष्ट होती है ।

1- भाग चन्द जैन - देवगढ़ की जैन कला, पृष्ठ 65

:: जैन मूर्ति शिल्प की पृष्ठ-भूमि ::

आचार्य हेमचन्द्र ने अभिधान चिन्तामणि के प्रथम काण्ड को "देवाधिदेवकाण्ड" नाम दिया है और उसमें वर्तमान अवसर्पिणी काल के चतुर्विंशति तीर्थंकरों, के नाम, उनके कुल, माता-पिता, लाँछन वर्ण आदि का विवरण दिया है। जैन सिद्धान्त की मान्यता है कि संसारी जीव अपने कर्मबंधन के कारण देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक इन चार गतियों में भ्रमण करता रहता है। कर्मबंधन से सर्वथा मुक्त होने पर जीवात्मा सिद्ध अवस्था प्राप्त करती है और लोक के अग्रतम भाग में जाकर स्थिर हो जाती है। तब उसे संसार में पुनः नहीं आना पड़ता। इन सिद्ध आत्माओं की संख्या अनन्तानन्त है। सभी सिद्ध आत्माएँ मनुष्य योनि से ही सिद्ध अवस्था को प्राप्त करती हैं। तीर्थंकर भी उसी प्रकार सिद्ध अवस्था को प्राप्त करते हैं। वे देवजाति के नहीं ह होते पर क्योंकि मानव शरीर धारण करते हुए भी वे देवताओं द्वारा पूजित होते हैं, इसलिए उन्हें देवाधिदेव कहा जाता है।[1]

काल रचना :-

जैन मान्यता के अनुसार संसार अनादि और अनंत हैं। अवसर्पिणी उत्सर्पिणी रूप से काल का चक्र घूमता रहता है और तदनुसार ह्रास एवं वृद्धि होती है। यह क्रम केवल भरत और ऐरावत क्षेत्र में चलता है अन्यत्र एक सा युग रहता है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में प्रत्येक के छः-छः अरे हुआ करते हैं। अवसर्पिणी अरों के नाम सुषमा - सुषमा, सुषमा, सुषमा - दुषमा, दुषमा - सुषमा, दुषमा, दुषमा, दुषमा। उत्सर्पिणी

1- अभिधानचिन्तामणि - देवधिदेवकाण्ड, पृष्ठ 24-25

उत्सर्पिणी के अरे विपरीत क्रम में होते हैं अर्थात् दुषमा-दुषमा, दुषमा, दुषमा-सुषमा, सुषमा-दुषमा, सुषमा, और सुषमा - सुषमा ।[1] इस समय अवसर्पिणी कालका पंचम अरा दुषमा चल रहा है । अवसर्पिणी के प्रथम तीन अरो में उत्तम, मध्यम, और जघन्य भोग भूमि की रचना होती है । भोग भूमि में मनुष्य अपने अन्न वस्त्र आदि की आवश्यकताएं कल्पवृक्षों से पूरी करते हैं । सुषमा-दुषमा नामक तीसरे अरे के अन्तिम भाग में भोगभूमि की व्यवस्था समाप्त होकर कर्मभूमि की रचना होने लगती है । उस समय क्रमशः चौदह कुलंकर होते हैं और मनुष्यों को कर्मभूमि सम्बन्धि बातें समझाते हैं ।

चौदह कुलकर :-

वर्तमान काल के चौदह कुलकरों के नाम ये बताएं गये हैं । प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान, यशस्वी, अभिचन्द्र, चन्द्राभ, मरूदेव, प्रसेनजित और नाभि । नाभि अन्तिम कुलंकर थे । उन्होंने ही लोगों को धान्य खाने और आजीविका के तरीके सिखाये । नाभि की पत्नि का नाम मरूदेवी था । प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव इन्हीं के पुत्र थे ।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष[2] :-

चौबीस तीर्थंकर, द्वादश चक्रवर्ती, नव बलराम, नव नारायण और नव प्रतिनारायण इन विशिष्ठ पुरूषों की गणना शलाका पुरुषों में की जाती है । इन शलाकापुरूषों ने अपने विशिष्ट कार्यों द्वारा महत्व का

1- तिलोयपण्णत्ति - 4/316-19

2- वे महान आत्माएं जिनका मोक्ष प्राप्त करना निश्चित है ।

स्थान प्राप्त किया था ।

24 तीर्थंकर + 12 चक्रवर्ती + 9 बलराम + 9 नारायण + 9 प्रतिनारायण = 63 शलाका पुरूष ।

तीर्थंकर :-

तीर्थंकर सहित सभी शलाका पुरूष चतुर्थ काल में हुआ करते हैं । किन्तु वर्तमान अवसर्पिणी हुण्डा अवसर्पिणी होने के कारण इसमें कुछ अपवाद भी हुए । इसके तृतीय काल ।सुषमा - दुषमा। के चौरासी लाख पूर्व, तीन वर्ष, आठ मास और एक पक्ष के शेष रहने पर प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव का जन्म हुआ । ऋषभदेव के निर्वाण के पश्चात् तीन वर्ष साढ़े तीन मास का समय व्यतीत होने पर चतुर्थकाल दुषमा-सुषमा प्रतिष्ठित हुआ ।[1] अन्य तेईस तीर्थंकर चतुर्थ काल में ही हुए । अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी के निर्वाण के पश्चात् तीन वर्ष और साढ़े आठ मास का समय और बीत जाने पर पंचम काल ।दुषमा। प्रारम्भ हुआ ।[2] जो अभी चल रहा है । पंचम और षष्ठ काल में भी तीर्थंकर नहीं होते । प्रत्येक अवसर्पिणी में हुए या होने वाले तीर्थंकरों की सूची जैन ग्रन्थों में मिलती है ।[3]

जैन साहित्य में जिनों या तीर्थंकरों के मूर्ति लक्षणों का यत्र-तत्र विवरण मिलता है । वृहत्संहिता में जिन प्रतिमा-विधान निम्न प्रकार बताया गया है ।

आजानुलम्बबाहुः श्री वत्सांकः प्रशान्त मूर्तिश्च ।
दिग्वासास्तरूणो रूपवांश्च कार्यो अर्हतां देवः ।।

1- तिलोयपण्णत्ती - 4/1276
2- वही, 9/1474
3- तिलोयपण्णत्ती महाधिकार 4, प्रवचन सारोद्धार द्वार-7, गाथा 290-92 आदि ।

यह तीर्थंकरों का सामान्य लक्षण है ।

रूपमण्डल छठे अध्याय में जैन-मूर्ति लक्षण का सूक्ष्म किन्तु उपयोगी विवरण प्रस्तुत करता है जो मूर्तिकारों में प्रचलित शिल्प की व्यवहारिक परम्परा सर्वथा मेल में है ।

पंच-कल्याणक :-

तीर्थंकरों के जीवन की पांच मुख्य घटनाओं को पंचकल्याणक कहा जाता है, वे हैं, तीर्थंकर के जीव का माता के गर्भ में आना, तीर्थंकर का जन्म, तीर्थंकर द्वारा गृह त्यागकर तपग्रहण करना, घातिया कर्मों का क्षय करके केवल ज्ञान प्राप्त करना, शेष कर्मों को सम्पूर्ण रूप से क्षय करके निर्वाण प्राप्त करना । इस प्रकार ।1। गर्भ कल्याणक ।2। जन्म कल्याणक, ।3। तपकल्याणक ।4। ज्ञान कल्याणक ।5। निर्वाण कल्याणक । इन कल्याणकों के अवसर पर देवताओं द्वारा उत्सव मनाये जाते हैं ।

तीर्थंकरों के लांछन :-

प्रारम्भ में तीर्थंकरों की प्रतिमाओं पर उनके अलग-अलग लांछन या चिन्ह नहीं बनाये जाते थे । उन प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण किये लेखों से ही तीर्थंकरों की पहचान होती थी । मथुरा के कुषाण कालीन प्रतिमाओं पर तीर्थंकरों के चिन्ह नहीं मिलते थे । कुछ तीर्थंकर प्रतिमाएँ अपने विशेष स्वरूप के कारण ही पहचानी जाती थी । ऋषभनाथ की प्रतिमाएँ जटामुकुट रूप शेखर से या कन्धों पर लहराते केश गुच्छों से,[1]

1- वातोद्धता जटास्तस्य रेजुराकुलमूर्तयः - रविषेणकृत - पद्म पुराण

सुपार्श्वनाथ की पंचसर्पफणावली से, पार्श्वनाथ की सप्तसर्पफणावली से पहचानी जाती थी । राजग्रह के वैभार पर्वत की एक नेमिनाथ प्रतिमा[1] ।जो चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय की है। रूपी सर्वप्राचीन प्रतिमा जान पड़ती है जिस पर तीर्थंकर का चिन्ह भी प्राप्त हुआ है । इससे पूर्व की अभी तक प्राप्त प्रतिमाओं पर चिन्ह परिलक्षित नहीं किये जा सके हैं ।

तीर्थंकरों के लांछन :-

चतुर्विंशति तीर्थंकरों की प्रतिमाओं में स्तम्भ होने के कारण उन्हें उनके लांछन, शासन देव, देवी, कदली वृक्ष के आधार पर अलग-अलग समझा जा सकता है । जयसेन ने उल्लेख किया है कि चिन्ह तीर्थंकरों के सुखपूर्वक पहचान लिए जाने पर और अचेतन में सव्यवहार सिद्धि के लिए स्थापित किये जाते हैं । रूप मण्डन की सूचि अनुसार तीर्थंकरों के चिन्ह निम्न प्रकार दशाये गये हैं ।

गौर्गजोअश्वः कपिः कोकः कमलं स्वास्तिकः शशि ।
मकरः श्री द्रुमों गण्डो महिषः कोल सेधिको ।
वज्रं मृगोऽजष्टगंर कलशः कूर्म उत्पलम् ।
शंखा नागाधिपः सिंहों लाम्छनान्यर्हतां क्रमाद ।।

1- आर्कोसर्वे० इण्डिया - वार्षिक - 1925-26, पृष्ठ-125

तिलोयपर्णति ने सातवें तीर्थंकर का चिन्ह "नन्दया वर्त" और दसवें तीर्थंकर का चिन्ह "स्वास्तिक" बताया है । जबकि परम्परा के पाश्चात्यकालीन ग्रन्थों में[1] सातवें तीर्थंकर का चिन्ह "स्वास्तिक" और दसवें तीर्थंकर का चिन्ह "श्री वृक्ष" मिलता है । अभिधान चिन्तामणि में सातवें तीर्थंकर का चिन्ह दिगम्बरों के समान स्वास्तिक दसवें तीर्थंकर का चिन्ह "श्री वत्स" है ।[2]

अष्ट-प्रतिहार्य :-

तीर्थंकर की मूर्ति में अष्ट-प्रतिहार्य बनाये जाते हैं । जिनमें सिंहासन, दिव्यध्वनि, चामरेन्द्र, भामण्डल, अशोक-वृक्ष, छत्रत्रय, दुंदुभि, और पुष्पवृष्टि हैं । जिन प्रतिमा के साथ इनका अंकन किया जाता है ।

अष्टमंगलद्रव्य :-

श्वेत छत्र, दर्पण, ध्वज, चाँवर, तोरण माला, तालवृन्द, नंद्यावर्त, और प्रदीपये अष्ट मंगलद्रव्य है । इनकी स्थापना जिन पूजा विधान में की जाती है । मथुरा के आयाग पट्टों पर इनकी प्रतिकृतियाँ उपलब्ध हुई हैं । तिलोयपर्णत्ति में श्रृंगार, कलश, दर्पण, ध्वज, चाँवर, छत्र, बीजन और सुप्रतिष्ठ ये आठ मंगलद्रव्य गिनाये गये हैं ।

1- प्रतिष्ठासार संग्रह - 5/72-74
प्रतिष्ठा पाठ - 346-47
प्रतिष्ठा सारोद्धार - 1/72-79

2- अभिधान चिन्तामणि - 1/7-48

शासन-देवता[1] :-

चौबीस यक्षों की गणना शासन देवताओं के समूह में की गयी है । ये यक्ष तीर्थंकर के रक्षक कहे गये हैं । प्रत्येक तीर्थंकर एक यक्ष से संबद्ध है । तीर्थंकर के दायें यक्ष की प्रतिमा बनाये जाने का विधान है ।[2] यक्ष की प्रतिमाएँ सर्वांग सुन्दर, सभी प्रकार के अलंकारों से भूषित और अपने-अपने वाहनों तथा आयुधों से युक्त बनाने का विधान है ।[3] शासन-देवता जिनके सेवकों के रूप में संघ की रक्षा करते हैं । 24 जिनों के 24 सेवक यक्षों की कल्पना जैन ग्रन्थों में की गयी है । छठी शती ई0 में जिन के साथ यक्षी (शासन-देवताओं) को सम्बद्ध करने की धारणा विकसित हुई । छठी शताब्दी में सर्वप्रथम यक्ष युक्त जिन प्रतिमा प्राप्त हुई । यक्ष-यक्षियों की प्रारम्भिक सूची तिलोयपणति में प्राप्त होती है । यक्ष-यक्षी युगलों के लाक्षणिक स्वरूपों का विस्तृत वर्णन सर्वप्रथम 11वीं 12वीं ई0 के ग्रन्थों "निर्वाण-कलिका एवं प्रतिष्ठासार संग्रह" में प्राप्त होता है ।

रूप मण्डल में कुछ विशिष्ट शासन यक्षों का वर्णन स्पष्ट रूप में भी किया है ।

शासन देवियाँ (यक्षियाँ) :-

चौबीस शासन यक्षों के समान ही जैन ग्रन्थों में 24 यक्षियों की मान्यता है । इनका स्थान भी तीर्थंकरों के रक्षकों में रहता है । ये यक्षी प्रतिमाएँ तीर्थंकर के बायें बनाने का विधान है । पाश्चात्य

1- कुमार स्वामी- यक्षज, भाग-1, पृष्ठ 36-37

2- वसुनन्दी - 5/12

3- यू0पी0 शाह -यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिटरेचर खण्ड-3, पृष्ठ 7।

काल में स्वतंत्र रूप से यक्षी प्रतिमाएँ बनाई जाने लगी थी । देवगढ़ में स्वतन्त्र यक्षी प्रतिमाएँ अपने भव्य रूप से देखी जा सकती हैं । परमागम में, शासन की रक्षा के लिए शासन देवी, देवताओं की कल्पना की गयी है । ये सभी यक्षियाँ अपने वाहनों व आभूषणों व आयुधों से युक्त रहती हैं ।

विभिन्न जैन ग्रन्थों में 24 यक्षों व यक्षियों की सूची दी गयी है ।

विद्या देवियाँ :-

जैन ग्रन्थों के अनुसार विद्या देवियों की संख्या 16 मानी गयी है । अभिधान-चिन्तामणी में विद्यादेवियों के नामों का उल्लेख करते हुए उन्हें वाक्, ब्रह्मस्त्री-वचस भी कहा गया है । विद्यादेवियों का स्वरूप बताते समय प्रायः सभी ग्रन्थों में उन्हें ज्ञान से संयुक्त कहा गया है । उनके नाम इस प्रकार हैं ।

1- रोहिणी
2- प्रज्ञाप्ति
3- वज्रश्रंखला
4- वज्रांकुशा
5- जाम्बूनदा
6- पुरूषदत्ता
7- काली
8- महाकाली
9- गौरी
10- गंधारी
11- ज्वालामालिनी
12- मानवी
13- वैरोटी
14- अच्युता
15- मानसी
16- महामानसी

विद्यादेवियों की सूची का शासन देवियों की सूची से मिलाने पर ज्ञात होता है कि इन देवियों में से प्रायः सभी को शासन यक्षियों के रूप में स्थान प्राप्त है ।

श्रुतदेवी सरस्वती :-

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में सरस्वती का उल्लेख मेधा व बुद्धि की देवी के साथ में "सरस्वती" रहा है। मथुरा में जैन शिल्प में प्राचीनतम सरस्वती की प्रतिमा प्राप्त हुई है, जो लेखयुक्त है। बीकानेर तथा अन्य कई स्थानों पर जैन सरस्वती प्रतिमाएँ सुप्रसिद्ध हैं। सरस्वती की प्रतिमाओं के निर्माण और उनकी पूजा की परम्परा जैनियों में अति प्राचीन काल से चली आ रही है। जैनों की सरस्वती प्रतिमा जैनेतर की सरस्वती प्रतिमा से विशेष भिन्न नहीं हैं।

अष्ट मातृकाएँ :-

जैन ग्रन्थों में मातृकाओं के रूप का वैसा ही वर्णन है जैसा हिन्दू शिल्प ग्रन्थों में है। इनकी संख्या आठ बतायी गयी है। कहीं-कहीं चामुण्डा व महा लक्ष्मी को छोड़कर छः मातृकाएँ भी बतायी गयी हैं। शिल्प-शास्त्रों में मातृकाओं की सामान्य संख्या सात ही है। इनमें प्रथम चार की स्थापना दिशाओं में और अन्य चार की स्थापना विदिशाओं में की जाती है। ये अपने-अपने वाहन व आयुधों से युक्त बनायी जाती हैं। इनके निम्न प्रकार हैं :-

1- इन्द्राणी
2- वैष्णवी
3- कौमारी
4- वाराही
5- ब्राह्मणी
6- महालक्ष्मी
7- चामुण्डा
8- भवानी

क्षेत्रपाल :-

जैन मन्दिरों में क्षेत्रपाल की प्रतिमाएँ स्थापित रहती हैं । जिन्हें जिन मन्दिर का रक्षक माना जाता है । प्रतिष्ठा कल्प में क्षेत्रपाल को जिनेश्वर और जैन मुनियों का भक्त एवं धर्मवत्सल कहा गया है । उनके जटामुकुट में "जिन" पूजा का चिन्ह होना बताया गया है । क्षेत्रपाल को तेल से अभिषिंचित कर सिंदूर से धूसरित किये जाने का विधान है ।[1] क्षेत्रपाल की प्रतिमाएँ कायारूप भी होती हैं और लिंग रूप भी ।[2]

दस दिक्पाल :-

जैन परम्परा ने दिक्पालों की संख्या दस बतायी है । ऊर्ध्व और अधर दिशाओं के दिक्पालों की कल्पना जैनियों की अपनी विशेषता है । जैन परम्परा में इन्हें द्विभुज माना गया है । ये अपनी निश्चित दिशाओं के रक्षक माने गये हैं । तथामूर्ति विधान में इनकी मूर्ति की स्थापना निश्चित दिशा में बतायी गयी है । ये विभिन्न आभूषणों, आयुधों व वाहनों से पूर्ण रहते हैं । इनके नाम निम्न प्रकार बताये गये हैं ।

1- इन्द्र	पूर्व	अग्नि	दक्षिणपूर्व
2- यम	दक्षिण	नैऋत्य	दक्षिण पश्चिम
3- वरुण	पश्चिम	वायु	उत्तर पश्चिम
4- कुबेर	उत्तर	ईशान	उत्तर पूर्व

1- प्रतिष्ठा तिलक, पृष्ठ 115-16

2- आचार दिनकर - उदय-33, पृष्ठ 210

नवग्रह :-

ग्रहों को सभी भारतीय धर्मों में किसी न किसी रूप में मान्यता है । जैन परम्परा में पूर्व में आठ ग्रहों की गणना की जाती थी, पाश्चात्य काल में उनकी संख्या नौ हुई । प्रत्येक का निश्चित दिशा से सम्बन्ध बताया गया है । सभी ग्रह द्विभुज निरूपित किये गये हैं । इनके विभिन्न आयुध व वाहन बताये गये हैं । अधिकतर नवग्रह पट में इन्हें घटयुक्त व अभय मुद्रा में बनाया गया है ।

1- सूर्य
2- चन्द्रमा
3- मंगल
4- बुध
5- बृहस्पति
6- शुक्र
7- शनि
8- राहु
9- केतु

सोलह मंगल-स्वप्न :-

तीर्थंकर जब माता के गर्भ में आते हैं तब वह सोलह स्वप्न मंगल देखती है । इन्हें मन्दिरों के द्वारों, तोरणों आदि पर अंकित किया जाता है । मंगल स्वप्नों का जैन परम्परा में बहुत महत्व है । विभिन्न ग्रन्थों में इनका विस्तार से वर्णन किया जाता है ।

चरण - पादुकाएँ :-

किसी विशेष महापुरुष, तीर्थंकर या साधु के स्मारक रूप में उसके साधना, निर्वाण या समाधि-स्थल आदि पर चरण-चिन्हों की स्थापना की जाती है ।

गंगा-यमुना :-

गंगा-यमुना दोनों नदियों को मानवी कृत रूप में सर्व हिन्दु मान्यताओं के समान ही जैन मन्दिरों के द्वार पक्षों पर अंकित किया जाता है । ये दोनों अपने वाहनों मकर, व कच्छव से युक्त बनायी जाती है ।

तीर्थंकर, लांछन व उनके यक्ष और यक्षी

संख्या	तीर्थंकर	लांछन	यक्ष	यक्षी
1	2	3	4	5
1-	ऋषभनाथ	बैल	गोमुख	चक्रेश्वरी
2-	अजितनाथ	हाथी	महायक्ष	रोहिणी
3-	सम्भवनाथ	घोड़ा	त्रिमुख	प्रज्ञप्ति
4-	अभिनन्दननाथ	बन्दर	यक्षेश्वर	वज्रश्रृंखला
5-	सुमतिनाथ	चक्रवाक	तुम्बरू	पुरूषदत्ता
6-	पद्मप्रभुनाथ	कमल	कुसुम	मनोवेगा
7-	सुपार्श्वनाथ	स्वास्तिक	वरनन्दी	काली
8-	चन्द्रप्रभनाथ	चन्द्रमा	विजय	ज्वालामालिनी
9-	सुविधि/पुष्पदन्त	मकर	अजित	महाकाली

1	2	3	4	5
10-	शीतलनाथ	श्रीवत्स	ब्रह्मा	मानवी
11-	श्रेयांसनाथ	गरूड़/गैंडा	ईश्वर	गौरी
12-	बासुपूज्यनाथ	भैंसा	कुमार	गान्धारी
13-	विमलनाथ	वराह	षण्मुख	वैरोटी
14-	अनन्तनाथ	रीछ	पाताल	अनन्मति
15-	धर्मनाथ	बज्र	किन्नर	मानसी
16-	शान्तिनाथ	मृग	गरूड़	महामानसी
17-	कुन्थुनाथ	बकरा	गन्धर्व	विजया
18-	अरनाथ	मीन	खेन्द्र	अजिता
19-	मल्लिनाथ	कुम्भ	कुबेर	अपराजिता
20-	मुनिसुव्रत	कछुआ	वरूण	बहुरूपिणी
21-	नमि	नीलोत्पल	भृकुटी	चामुण्डी
22-	नेमि/अरिष्ट	शंख	सार्वाह्न गोमेध	अम्बिका
23-	पार्श्वनाथ	सर्प	पार्श्व	पद्मावती
24-	महावीर	सिंह	मातंग	सिद्धायिका

ऋषभनाथ [आदिनाथ] :-

जैन परम्परा के अनुसार ऋषभ मानव समाज के आदि व्यवस्थापक एवं वर्तमान अवसर्पिणी युग के प्रथम "जिन" हैं। प्रथम जिन होने के कारण उन्हें "आदिनाथ" भी कहा जाता है। महाराज नाभि ऋषभ के पिता व मरुदेवी उनकी माता हैं। अन्य जिन की माताओं ने अपने गर्भधारण के समय जब कि पहले स्वप्न में "गज" को देखा था। ऋषभ की माता ने अपने प्रथम स्वप्न में "वृषभ" को देखा था।[1] सम्भवतया वृषभ का दर्शन इनके नामकरण व लांछन निर्माण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ऋषभ का लांछन वृषभ है। और यक्ष व यक्षी गोमुख व चक्रेश्वरी है।[2] ऋषभनाथ की प्राचीनतम मूर्ति कुषाण काल की जो मथुरा व चौसा में मिली है। इनमें ऋषभ-ध्यान मुद्रा में व कायोत्सर्ग मुद्रा में बनाये गये हैं जो तीन या पाँच केशवल्लरी से सुशोभित हैं।[3] गुप्तकालीन ऋषभ की मूर्तियाँ मथुरा, चौसा व अकोटा में प्राप्त हुई हैं, इनमें अलंकृत प्रभामण्डल, व चाँवरधारियों से युक्त ऋषभ तीन या पाँच केशवल्लरियों से सुशोभित हैं। एक उदाहरण में पीठिका के लेख में ऋषभ नाम भी उत्कीर्ण है। ऋषभदेव की सर्वाधिक मूर्तियाँ उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश में प्राप्त हैं, यहाँ जटाओं के साथ ही वृषभ-लांछन और यक्ष एवं यक्षी का नियमित चित्रण हुआ है। लांछन का सर्वप्रथम चित्रण इसी क्षेत्र में छठीं शती में हुआ है। मदनपुर में आदिनाथ एक कायोत्सर्ग मूर्ति प्राप्त है, जबकि बानपुर में आसनस्थ व कायोत्सर्ग प्रतिमाएँ देखी जा सकती हैं।

1- अर्वाँवृषभलाञ्छनमभूद भगवतो जनन्या च चतुर्दशानां स्वप्नानामादावृषभो दृष्टस्तने ऋषभः - अभि० चिन्तामणि

2- बी०सी० भट्टाचार्य - दा जैना आइकनोग्राफी, पृष्ठ 35

3- मथुरा म्यूजियम कैलाग, पृष्ठ 67

पंचमढ़ी की आदिनाथ प्रतिमा :-

पंचमढ़ी में नवनिर्मित आदिनाथ जिनालय की प्राचीन मूर्ति, आदिनाथ जिनालय में, भगवान आदिनाथ की कायोत्सर्गासन मुद्रा में लगभग 8 फिट ऊँची प्रतिमा है। चित्र संख्या -33। जो कहीं और से लाकर यहाँ स्थापित की गयी है। इसके केश घुँघराले व कन्धों तक लटके हुए, आँखें अर्द्ध खुली, कान लम्बे, वक्ष पर श्रीवत्स, हाथ नीचे की ओर लम्बायमान झुके हुए हैं। दोनों ओर दो इन्द्र हाथियों पर खड़े हुए बनाये गये हैं। जिनके हाथों में चँवर है। पादपीठ पर छोटा सा वृषभ बना है। यह मूर्ति पंचमढ़ी की मूर्तियों की अपेक्षा गठन में कहीं सुन्दर है। इस जिनालय के द्वार के ललाट बिम्ब में पद्मासन मुद्रा में तीर्थंकर की प्रतिमा है जिसके दोनों ओर कायोत्सर्ग मुद्रा में दो तीर्थंकर मूर्तियाँ बनी हैं।

जैन-धर्म सम्बन्धी मूर्ति-शिल्प :-

मदनपुर की उत्तरी पहाड़ी पर पंचमढ़ी, मोदीमठ, चम्पोमठ आदि में जैन मूर्तिकला की थाती प्राप्त होती है। आदिनाथ यहाँ माने हैं।

शान्तिनाथ :-

शान्तिनाथ इस अवसर्पिणी के सोलहवें जिन हैं। हस्तिनापुर के शासक विश्वसेन उनके पिता और अचिरा उनकी माता है। शान्तिनाथ ने 2500 वर्ष तक चक्रवर्ती पद से सम्पूर्ण भारत पर शासन किया और इसके बाद दीक्षा ली। कठोर तपस्या करके हस्तिनापुर के सहस्त्रनाम उद्यान में नन्दीवृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया, सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण स्थली है।[1] शान्तिनाथ का लांछन मृग है। और यक्ष व यक्षी गरूड़ व

1- बी०सी० भट्टाचार्य - दा जैन आइकनोग्राफी, पृष्ठ 51

निर्वाणी है । दिगम्बर परम्परा में यक्षी का नाम महामानसी है । सातवीं शती से पूर्व शान्तिनाथ की कोई मूर्ति प्राप्त नहीं होती है । आठवीं शती में इनका लांछन व यक्ष-यक्षी का निरूपण होना शुरू हुआ । कई स्थानों पर इनके साथ सर्वानुभूति यक्ष एवं अम्बिका यक्षी बनाये गये हैं । देवगढ़, खजुराहो, मदनपुर, बानपुर, दुधई आदि स्थानों पर शान्तिनाथ की अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हैं । जहाँ इनके लांछन "मृग" के साथ कई लेखों में इनका नाम भी दिया गया है ।

शान्तिनाथ जिनालय की प्रतिमा :-

शान्तिनाथ जिनालय :-

पंचमढ़ी का मुख्य जिनालय शान्तिनाथ का है । जिसमें भगवान शान्तिनाथ की ग्यारह फिट ऊँची कायोत्सर्गासन मुद्रा मनोज्ञ प्रतिमा है ।[1] (चित्र संख्या -32) इसके केश घुंघराले, आँखें नासाग्र पर टिकी हुई, कान कन्धे तक लम्बे हैं, यह मूर्ति शिलापट पर गहराई तक कोर कर बनाई गयी है । अंग-प्रत्यंगों की रचना सुन्दर है । वक्ष स्थल पर श्रीवत्स शोभायमान है । हथेलियों में चक्र बनाये गये हैं । यह प्रतिमा घुटनों के पास खण्डित है । जिसे जोड़ा गया लेकिन यह जोड़ स्पष्ट दिखता है । इसके दोनों ओर दो इन्द्र लगभग 3 - 3 फिट ऊँचाई दोनों हाथों के नीचे खड़े हुए बने हैं ।[2] जिनके शीश पर मुकुट, गले में माला, कमर में

1- समस्त ललितपुर क्षेत्र में भगवान शान्तिनाथ ऊँची प्रतिमा बनाने की परम्परा थी । चाँदपुर 16 फिट, दुधई 14 फिट, बानपुर 15 फिट, आहार में 18 फिट, सिरोन में 14 फिट की प्रतिमाएँ देखने को मिलती हैं ।

2- श्री बलभद्र जैन ने यहाँ शान्तिनाथ की मूर्ति के दोनों ओर कुन्थुनाथ व अरहनाथ की मूर्तियाँ बताई हैं । जो यहाँ पर नहीं है । यहाँ दोनों ओर दो इन्द्र बने हैं जिनकी ऊँचाई 3-3 फिट है ।
बलभद्र जैन - भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ, खण्ड -1, पृष्ठ 204

मेखला व अधोवस्त्र बनाये गये हैं । यह प्रतिमा पत्थर की एक चौकी बना कर उस पर जीर्णोद्धार के समय दीवार में चिनकर लगा दी गयी है । पत्थर की इस नवीन चौकी के नीचे एक आला बनाया गया जिसमें नीचे सिंहासन है व उसके ऊपर शिलालेख है, उसे पुताई के कारण पढ़ना बहुत कठिन है । इस लेख के अनुसार इसका प्रतिष्ठा काल फाल्गुन शुक्ल 10 सम्वत् 1204 है । प्रतिमा स्थानीय पत्थर से निर्मित है ।

पंचमढ़ी की प्रतिमाएँ :-

शान्ति नाथ जिनालय के सामने पंचमढ़ी है । जिसमें एक ऊँचा मठ है उसके चारों ओर चार मठ हैं । इनमें तीर्थकरों की कायोत्सर्गासन 5-5 फिट ऊँची प्रतिमाएँ हैं ।[1] जो जीर्णोद्धार के समय दीवार से जोड़कर खड़ी की गई है । मध्य के मठ में भगवान महावीर की प्रतिमा है । आगे पूर्व की ओर शान्ति नाथ व पश्चिम की ओर चन्द्रप्रभा व पीछे पूर्व की ओर वासुपूज्या व पश्चिम की ओर नेमिनाथ के मठ हैं । पाँचों मूर्तियाँ स्थानीय धारीदार बादामी रंग के पत्थर से निर्मित हैं ।

शान्तिनाथ की प्रतिमा के केश घुंघराले, कान लम्बे, पत्थर में डिजाइन के कारण मुख पर विशेष प्रकार का भाव हृदय-स्थल पर श्रीवत्स बना है । लम्बे लटके हुए हाथों में चक्र बने हैं । शीश के पीछे प्रभामन्डल है, जिसके दोनों ओर दो हाथी बनाये गये हैं । पैरों के पास दोनों ओर खड़े हुए दो इन्द्र बने हुए हैं, जिनके सिर पर मुकुट, एक हाथ चँवर व वस्त्रों से विभूषित है । शान्तिनाथ की पादपीठ पर उनका लांछन "हिरण" बना है । वहीं पर लेख अंकित है । जिस पर सम्वत् 1622 स्पष्ट पढ़ा जा सकता है ।

1- बी०सी० भट्टाचार्य - दा जैना आइकनोग्राफी, पृष्ठ 44

चन्द्रप्रभु :-

इस अवसर्पिणी के आठवें जिन हैं । जैन परम्परा के अनुसार गर्भकाल में माता की चन्द्रपान की इच्छा पूर्ण हुई, इसी कारण इनका नाम चन्द्र प्रभु पड़ा ।[1] इनका लांछन "शशि" "चन्द्र" है । नवीं शती में चन्द्रप्रभु के लांछन व यक्ष, यक्षी का अंकन प्रारम्भ हुआ है । विदिशा में सर्वप्रथम चन्द्रप्रभु की मूर्ति 4 शताब्दी में प्राप्त हुई, जिस पर चन्द्रप्रभु का नाम अंकित है । इसके बाद नवीं शताब्दी के पूर्व की कोई मूर्ति चन्द्रप्रभु की प्राप्त नहीं हुई । 10वीं व 11वीं शती की लांछन युक्त दो प्रतिमाएँ राजकीय संग्रहालय, लखनऊ में हैं । ललितपुर के सिरोन खुर्द से 10वीं शती की चन्द्रप्रभु की क्योत्सर्ग मुद्रा में मूर्ति प्राप्त है,[2] जिसमें उनके स्कन्धों पर जटा भी प्रदर्शित हैं । मदनपुर पंचमढ़ी में चन्द्रप्रभु की एक मूर्ति क्योत्सर्ग आसन में प्राप्त है,[3] जबकि क्योत्सर्ग मुद्रा में बानपुर में एक चन्द्रप्रभु की मूर्ति प्राप्त है, जिसकी पादपीठ पर लांछन अंकित हैं ।

पंचमढ़ी में चन्द्रप्रभु की प्रतिमा :-

भगवान चन्द्रप्रभु की मूर्ति में केश नीचे घुँघराले व बाकी पीछे जुड़े के समान हैं । आँखें अर्द्धखुली, कान लम्बे बनाये गये हैं । पेट अधिक पतला व टाँगे लम्बी हैं । हाथों में चक्र लिये हैं । पैरों के दोनों और दो इन्द्र बने हैं । इनके एक हाथ में चाँवर व दूसरा हाथ जंघा पर है । मुख्य मूर्ति के शीश के पीछे

1- गर्भस्थे देव्याः चन्द्रपानदोहदो भूदिति चन्द्रप्रभः - हेमचन्द

2- जो राजकीय संग्रहालय झाँसी में प्रदर्शित है ।

3- बी०सी० भट्टाचार्य - दा जैना आइकनोग्राफी, पृष्ठ 44

प्रभामण्डल है, जिसके दोनों ओर दो हाथी बने हैं। पादपीठ पर उनका लांछन अर्धचन्द्र बना है। मूर्ति में चपटापन है।

महावीर :-

इस अवसर्पिणी के अन्तिम "जिन" है। महावीर का जन्म पटना के कुण्डल ग्राम में 599 ईसा पूर्व में हुआ था। पहले दो वर्षों तक महल में रहकर ही जैन धर्म का पालन किया और कायोत्सर्ग मुद्रा में तप किया। इस रूप के कारण ही उनकी जीवन्त-स्वामी की प्रतिमा उत्कीर्ण की गयी। 30 वर्षों तक महावीर विभिन्न स्थानों पर भ्रमण कर उपदेश देते रहे। 527 ईसवीं पूर्व में पावा पुरी में महावीर का निर्वाण हुआ।[1] महावीर का लांछन "सिंह" है प्राचीनतम मूर्ति कुषाण काल की प्राप्त है, जो मथुरा में मिली है व राजकीय संग्रहालय लखनऊ में संग्रहीत है। गुप्त काल की महावीर की एक मूर्ति का ज्ञान है जो वाराणसी में मिली है। गुप्तकाल से महावीर का लांछन का अंकन प्रारम्भ हुआ है। लांछन व यक्ष-यक्षी से युक्त महावीर की मूर्तियाँ देवगढ़ से प्राप्त हुई हैं।[2] मदनपुर में महावीर की एक मूर्ति प्राप्त है जो लांछन युक्त है।

महावीर प्रतिमा :-

पंचमढ़ी में मठ्य के मठ में महावीर की मूर्ति है। यह कायोत्सर्ग-आसन केश घुंघराले, हाथ लम्बे व चक्र युक्त हैं। हृदय स्थल पर श्रीवत्स बना है। पादपीठ पर सिंह अंकित है। इस मूर्ति की कलात्मकता शेष चारों मूर्तियों से भी बहुत कम है। कुल मिलाकर यह मूर्ति बेडौल सी लगती है।

1- बी०सी० भट्टाचार्य - दा जैना आइकनोग्राफी, पृष्ठ 61

2- देवगढ़ के महावीर मन्दिर में स्थित सलेटी पत्थर की महावीर की प्रतिमा विशेष दर्शनीय है।

वासुपुज्या :-

इस अवसर्पिणी के 12 जिन हैं। वसुपूज्य के पुत्र होने के कारण इनका नाम वासुपुज्या पड़ा,[1] इनका लांछन "महिष" है। इनका यक्ष कुमार व यक्षी गांधारी है। दसवीं शती में वासुपुज्या की मूर्ति के साथ लांछन व यक्ष-यक्षी का अंकन प्रारम्भ हुआ व वासुपुज्या की मूर्ति शहडोल से प्राप्त हुई है, जो वाराणसी संग्रहालय में संग्रहीत है। मदनपुर में वासुपूज्या की एक मूर्ति प्राप्त है।

वासुपूज्या - प्रतिमा :-

पंचमढ़ी में वासुपूज्या की एक मूर्ति है जो कायोत्सर्ग मुद्रा में है। चित्र संख्या -34। इस मूर्ति के केश घुंघराले हैं। कान अन्यमूर्ति के समान, आँखें अर्धखुली, दूसरी मूर्तियों से इस मूर्ति के कन्धे कम चौड़े व हाथ छोटे हैं। इनके दोनों और दो इन्द्र बने हैं। शीश के पीछे प्रभामण्डल है, जिसमें बाँई ओर एक हाथी है। सम्भवतया दाहिनी ओर का हाथी खण्डित हो गया है। पादपीठ पर इनका लांछन "महिष" बना हुआ है तथा वहाँ पर लेख अंकित है, जिस पर सम्वत् 1622 पड़ा हुआ है।

नेमिनाथ :-

नेमिनाथ या अरिष्टनेमि इस अवसर्पिणी के 22वें "जिन" हैं। कृष्ण व बलराम इनके चचेरे भाई कहे जाते हैं।[2] इसी सम्बन्ध के कारण मथुरा, देवगढ़ आदि में नेमि की मूर्तियाँ के साथ कृष्ण व बलराम बनाने

1- वसुपूज्यनृपसुतश्चैव वासुपूज्यः - अभि० चिन्तामणि
2- बी०सी० भट्टाचार्य - दा जैना आइकनोग्राफी, पृष्ठ 58

की परम्परा बनी । नेमि का लांछन "शंख" है और यक्ष-यक्षी गोमेध व अम्बिका हैं । प्राचीन परम्परा में इनका यक्ष "कुबेर" माना गया है । कुषाण काल की एक मूर्ति मथुरा संग्रहालय में संग्रहीत है । देवगढ़ में 10वीं 12वीं शती की नेमिनाथ के लांछन व यक्ष-यक्षी और अष्टपरिहार युक्त अनेक प्रतिमाएँ है । मदनपुर में नेमिनाथ की एक मूर्ति प्राप्त है ।

नेमिनाथ प्रतिमा :-

मदनपुर में पंचमढ़ी में नेमिनाथ की एक मूर्ति है, जो कयोत्सर्गासन में है । शेष मूर्तियों के समान इस मूर्ति की कलात्मकता बहुत कमजोर है । गठन में चिपटापन है । इनमें न तो भाव ही है और न कलात्मक सौन्दर्य है ।

पंचमढ़ी क्षेत्र में संग्रहीत मूर्तियाँ :-

पंचमढ़ी के इस क्षेत्र में अनेक खण्डित प्रतिमाएँ संग्रहीत है । चित्र संख्या -38 । जो आस-पास के जंगल व तालाब में मिली बताई जाती हैं ।

इन मूर्तियों में सबसे सुन्दर मूर्ति भगवान शान्तिनाथ की है, यह प्रतिमा लगभग 6 फिट ऊँची । चित्र संख्या -36 । है । केश घुंघराले हैं । आँखें अर्धखुली, नासिका व ठोड़ी खण्डित हैं । वक्ष-स्थल पर श्री वत्स बना है । दोनों हाथ मध्य से खण्डित है । पादपीठ पर लेख है व हिरण बना है । पैरों के दोनों ओर चांवर धारी स्त्री पुरुष हैं । पादपीठ के दोनों ओर हाथ जोड़े हुए राजा रानी की आकृतियाँ

हैं । शीश के दोनों ओर उड़ते हुए विद्याधर हैं । अंग-प्रत्यंग की गठन बहुत सुन्दर है । मूर्ति पर सुन्दर पालिश है, जिसकी चमक वर्षों से धूप व पानी को सहकर भी सुरक्षित है । मुख पर शान्ति व वैराग्य झलकता है । यह इस क्षेत्र की सबसे सुन्दर प्रतिमा है जो स्थानीय सलेटी पत्थर से निर्मित है ।

इसी मूर्ति के पास ही एक और लगभग 4 फिट ऊँची हल्के बादामी रंग की तीर्थंकर प्रतिमा ।चित्र संख्या -36। है, जिसके शीश व दोनों हाथ पूर्ण रूप से खण्डित हैं । पैर खण्डित है लेकिन पादपीठ पर ही रखे हुए हैं । गठन व पालिश की दृष्टि से यह मूर्ति भी बहुत सुन्दर बनी हुई है । वक्ष-स्थल पर श्रीवत्स स्पष्ट है ।

इसके अतिरिक्त अनेक खण्डित मूर्तियाँ व मूर्तिखण्ड इस क्षेत्र में खुले में रखे हुए हैं । इनमें कुछ कलात्मक दृष्टिकोण से बहुत सुन्दर हैं, जबकि दूसरे बहुत चपटे हैं । उनमें सौन्दर्य नाम की चीज है ही नहीं लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से सभी मूर्तियाँ महत्वपूर्ण हो सकती हैं । इनकी पूर्ण सुरक्षा की आवश्यकता है, यद्यपि क्षेत्र कमेटी अपनी ओर से पूर्ण कोशिश कर रही है ।

त्रिमूर्ति :-

जैन ग्रन्थों में त्रिमूर्ति या त्रितीर्थी जिन मूर्तियों के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नही प्राप्त होता है । त्रिमूर्ति मूर्तियाँ 10वीं से 12वीं शती ई0 के मध्य उत्कीर्ण हुई हैं । इनके उदाहरण दिगम्बर स्थलों पर ही प्राप्त हुए हैं । त्रिमूर्तियों में तीन अलग-अलग जिनों की मूर्तियाँ एक साथ उत्कीर्ण रहती हैं ।

खजुराहो, देवगढ़, मदनपुर, बानपुर आदि में अनेक त्रिमूर्तियाँ प्राप्त होती हैं, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र को ही इस प्रकार की मूर्तियाँ सर्व-प्रथम बनाने का श्रेय प्राप्त है । देवगढ़ में त्रिमूर्ति की संख्या लगभग 20 से अधिक है । लाक्षणिक विशेषताओं के आधार पर इन मूर्तियों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है । पहले वर्ग में ऐसी मूर्तियाँ आती हैं जिनमें तीन जिन कायोत्सर्ग मुद्रा में निरूपित किये गये हैं । मदनपुर व बानपुर में ऐसी ही त्रिमूर्ति प्राप्त हैं । मदनपुर में मोदीमठ में एक व चम्पोमठ में दो त्रिमूर्ति प्राप्त हैं जबकि बानपुर में बड़े बाबा के मन्दिर में एक त्रिमूर्ति प्राप्त है । इनका आगे यथास्थान पर विवरण दिया गया है ।

मोदी मठ की त्रिमूर्ति :-

सलेटी स्थानीय पत्थर से निर्मित त्रिमूर्ति (शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ व अरहनाथ) की (चित्र संख्या-41) है । मध्य में शान्ति नाथ 7 फिट ऊँचे खड्गासन मुद्रा में व दोनों ओर कुन्थुनाथ व अरहनाथ लगभग 5 - 5 फिट ऊँचे बनाये गये हैं । तीनों मूर्तियों के शीश के ऊपर त्रिछत्र है । केश घुँघराले, नेत्र अर्धनिमिलित, दृष्टि नासाग्र, कान कुछ लम्बे बने हैं । तीनों मूर्तियों के पीछे कमल पत्र से सज्जित प्रभामण्डल है । हाथ लम्बायमान हैं । तीनों प्रतिमाओं के दोनों ओर दो-दो इन्द्र खड़े हुए हाथी पर खड़े हुए बनाये गये हैं, जिनके हाथों में चँवर हैं । तीनों मूर्तियाँ शिलापट पर हैं, जो जीर्णोद्धार के समय सीमेंट से जोड़कर दीवार में लगा दिये गये हैं । इनकी पादपीठ समतल है । उस पर एक बड़ा शिलालेख है लेकिन पुताई के कारण बहुत कम पढ़ा जा सकता है किन्तु पहली ही पंक्ति में इनकी स्थापना की तिथि फाल्गुन सुदी 4 सं0 1688 पढ़ी जा सकती है ।

चतुर्विंशति-पट :-

चतुर्विंशति-जिन-पट्टों के उदाहरण लगभग 10वीं शती से प्राप्त होते हैं । इन पट्टों पर 24 जिन मूर्तियाँ, सामान्य प्रतिहार्यों, लांछनों व कभी-कभी यक्ष-यक्षियों से युक्त होती हैं । देवगढ़ में इस प्रकार का 11 वीं शती का एक जिनपट प्राप्त है जो स्थानीय साहू संग्रहालय में सुरक्षित है । पटों पर जिन आकृतियाँ कायोत्सर्ग व ध्यान मुद्रा में उत्कीर्ण की जाती हैं । मदनपुर व बानपुर दोनों ही स्थानों पर एक-एक चतुर्विंशति पट प्राप्त हुए हैं जिनमें बानपुर का चतुर्विंशति पट बहुत आकर्षक है ।

बानपुर का चतुर्विंशति-पट :-

अतिशय क्षेत्र बानपुर के प्रांगण में एक सुन्दर महत्वपूर्णचतुर्विंशति शिलापट (चित्र संख्या 78) है जिस पर कुल मिलाकर लगभग 70 मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं । यह लगभग 5 फिट लम्बा व 4 फिट चौड़ा है तथा खण्डित है । यह कलात्मक दृष्टि से बहुत सुन्दर है । मुख्य मूर्तियाँ गहराई तक कोरी गयी हैं । यह लाल पत्थर से निर्मित है । मध्य में पद्मासन मुद्रा में भगवान आदिनाथ की प्रतिमा है, जो एक सिंहासन पर बैठी है । उनका लांछन "वृषभ" खड़ी हुई अवस्था में स्पष्ट रूप से परिलक्षित है । केश कन्धों तक बिखरे हैं । अंग प्रत्यंगों के गठन में चारुता और कोमलता है । मुख पर पूर्णतः शान्ति व स्निग्धता है । नासिका कुछ खण्डित है । मस्तक के पीछे कलात्मक विकसित कमल का प्रभामण्डल है । इस मूर्ति के वक्षस्थल पर श्रीवत्स सुशोभित है । दोनों ओर सप्त-फणावली युक्त कायोत्सर्गासन मुद्रा में दो तीर्थंकर प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं । इनके केश घुँघराले, निमीलित नेत्र, दोनों ही मूर्तियों के हाथ व फणावली खण्डित हैं । वक्षस्थल पर श्रीवत्स सुशोभित हैं । ये दोनों मूर्तियाँ सिंहासन पर खड़ी हुई हैं । तीनों मुख्य मूर्तियों के ऊपर माला लिए हुए वमृदंग आदि बजाते

हुए विद्याधर उड़ते हुए दर्शाये गये हैं । मुख्य मूर्तियों के दोनों ओर क्योत्सर्गासन व पद्मासन में तीर्थंकरों की छोटी-छोटी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं । नीचे सिंहासनों के दोनों ओर कुबेर यक्ष व चक्रेश्वरी उत्कीर्ण की गयी हैं । यह शिलापट खण्डित है । संयोजना की दृष्टि से यह शिलापट तीन पक्षों में है । ऊपरी प्रथम पक्ष पर तीनों मुख्य मूर्तियाँ हैं । द्वितीय पक्ष पर तीन-तीन तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ हैं तथा अन्तिम व तीसरे पक्ष पर एकाकी क्योत्सर्ग तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं । प्रथम व द्वितीय पक्ष पर सबसे नीचे तीन सिंहासन हैं तथा द्वितीय पक्ष पर कुबेर व चक्रेश्वरी का अंकन किया गया है ।

मदनपुर अतिशय क्षेत्र पंचमढ़ी में एक अन्य चतुर्विंशति पट प्राप्त है ।चित्र संख्या -35। जो खण्डित है, जिस पर अब 13 मूर्तियाँ शेष हैं । शेष मूर्तियाँ खण्डित भाग के साथ नष्ट हो गयी हैं । प्राप्त मूर्तियाँ भी खण्डित हैं । इनमें एक मूर्ति पद्मासन में व शेष 12 मूर्तियाँ खड्गासन में हैं । इनकी गठन में चिपटापन है ।

<u>चम्पोमठ का कला-शिल्प :-</u>

सौन्दर्य की दृष्टि से यह मठ व इसकी कला वैभव मदनपुर में प्राप्त सभी जैन मन्दिरों में सबसे कलात्मक व सुन्दर है ।चित्र संख्या -43। । इसका जीर्णोद्धार न होने के कारण अपने मौलिक रूप में है । यद्यपि इसका शिखर व मूर्तियाँ भी खण्डित है । इस मन्दिर का प्रवेशद्वार अत्यन्त सुन्दरता से अलंकृत किया गया है । उस पर अंकित, यक्ष-यक्षिणियाँ, गंगा-यमुना, मदानिकाएँ, युग्म, संगीत प्रधान दृश्य खजुराहो की याद दिलाते हैं । प्रवेश द्वार का तोरण ।चित्र संख्या-47। तीन पंक्तियों में विभाजित हैं । सबसे ऊपर की

पंक्ति में नवग्रह व शासन देवियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं। अपनी स्थिति के कारण यह नवग्रह पट रूचिपूर्ण है। यहाँ सर्वप्रथम खड़े हुए अवस्था में सूर्य बने हैं, फिर एककुलिका में बैठी हुई अम्बिका की प्रतिमा है। उसके पश्चात चन्द्रमा, मंगल व बुद्ध बने हैं। उनके पश्चात मध्य में दूसरी कुलिका है, ये चक्रेश्वरी यक्षिका का बैठी हुई मुद्रा में अंकन है। तत्पश्चात् बृहस्पति, शुक्र, व शनि बनाये गये हैं, फिर बाँयी ओर की कुलिका में पद्मावती यक्षी का अंकन है उसके बाद राहु-केतु उत्कीर्ण की गये हैं। खजुराहो, देवगढ़ व मदनपुर के कचहरी वाले नवग्रह पट पर जो नवग्रह व देवी-देवताओं के अंकन की योजना है, उसमें दोनों ओर के किनारों पर व मध्य देवी अथवा देवता बने है तथा उनके मध्य में नवग्रह बनाये गये हैं, लेकिन यहाँ उनकी योजना इस प्रकार है, सभी नवग्रह देव खड़े हुए हैं। द्विभुजी बने हैं। उनके बाँयें हाथ में कमण्डलु है व दायाँ हाथ अभय मुद्रा में है। तीनों शासन देवियाँ चतुर्भुज बनाई गयी है। अम्बिका की गोद में बच्चे का अंकन व चक्रेश्वरी के पीछे के दोनों हाथों में चक्र स्पष्ट है जबकि शेष हाथों की मुद्रा अस्पष्ट सी है। मध्य की पंक्ति में, नीचे की पंक्ति में बनी कुलिकाओं के छत्र व कुछ अलंकरण बनाये गये हैं। तीसरी सबसे नीचे की पंक्ति में तीन तीर्थंकर प्रतिमाएँ पद्मासन मुद्रा में उत्कीर्ण की गयी हैं। उनके मध्य में अलंकरण किये गये हैं।

द्वार पक्ष तीन भागों में बटा हुआ है। प्रथम पक्ष जो अन्दर की ओर है, उसमें नीचे की ओर गंगा व यमुना का सुन्दर अंकन है (चित्र संख्या-48) उनके वाहन क्रमशः मकर व कच्छप पैरों के पास उत्कीर्ण हैं। ये सुन्दर, मुकुट माला, मेखला कंकण व पायजेब से सुशोभित है। इनके एक हाथ में घट व दूसरा हाथ जंघा पर रखा हुआ है। गंगा-यमुना के ऊपर की ओर नाग कन्याएँ फणावली युक्त बनी हैं। इनके मुखखण्डित हैं। शेष द्वार पक्ष पर ऊपर तक सुन्दर अलंकरण से अलंकृत हैं।

द्वार पक्ष का मध्य का भाग अधिक चौड़ा है । जिससे नीचे की ओर द्वारपालों का अंकन किया गया है । ये दो भुजा वाले व दोनों हाथों में कमलनाल कलिका सहित पकड़े हुए हैं । ये भी मुकुट, माला, कुण्डल, मेखला व पायजेबों से सजे हुए बनाये गये हैं । इनके पैरों के पास दोनों ओर दो सेवक बनाये गये हैं । क्षेत्रपाल के शीश के ऊपरी पक्षपर सुन्दर अलंकरण है व कीर्तिमुख बने हैं । इसके ऊपर का द्वार पक्ष तीन-तीन भागों में बँटा है जिसमें नृत्यरत युग्म बने हैं । ।चित्र संख्या -49। इस द्वार के दोनों ओर कमल पत्रिकाओं का अलंकरण है । द्वारपक्ष का तीसरा पक्ष चौड़ाई में प्रथम पक्ष जितना ही है । इसमें नीचे की ओर आकर्षक मुद्रा में मदनिकाएँ उत्कीर्ण की गई हैं जो द्विभुजी है तथा एक हाथ में चँवर व दूसरा हाथ जंघा पर रखा गया है । इस द्वारपक्ष का ऊपरी भाग प्रथम द्वार पक्ष के समान ही लहरदार अलंकरण से अलंकृत है ।

द्वार पीठ ।देहली। पर सुन्दर सिंह गज युद्ध की कीर्तिमुख व आसनस्थ युगल बनाये गये हैं । प्रवेश द्वार से अन्दर गर्भालय 4 फिट गहरा है जिससे चार सीढ़ियाँ बनी हैं । अन्दर सुन्दर त्रिमूर्ति का अंकन है जो सलेटी बलुए पत्थर से निर्मित है । मध्य में शान्ति नाथ भगवान की कायोत्सर्ग मुद्रा में 9 फिट ऊँची प्रतिमा है जो अष्ट प्रतिहार्य युक्त है । इसकी दोनों भुजाएँ खण्डित हैं । केश घुँघराले, आँखें अर्धनिमीलित दृष्टि नासिकाग्र, नासिका व कर्ण कुछ खण्डित हैं । शीश के पीछे गोल प्रभामण्डल है । हृदयस्थल पर श्रीवत्स सुशोभित है । इसके दोनों ओर 7 - 7 फिट ऊँची भगवान महावीर की प्रतिमाएँ कयोत्सर्ग मुद्रा में बनी हुई है । इनकी भुजाएँ भी खण्डित है, इनके केश भी घुँघराले, कान लम्बे, दृष्टिनासाग्र है । शीश के पीछे प्रभामण्डल है । उसके दोनों ओर उड़ते हुए विद्याधर व ऊपर हाथी बनाये गये हैं । तीन मूर्तियों के पैरों के पास 2 फिट 6 इंच, 2 फिट 6 इंच ऊँचे खड़े हुए 6 इन्द्र बनाये गये हैं जो कुछ खण्डित हैं । ये विभिन्न

आभूषणों से अलंकृत हैं । इनके एक हाथ में चंवर है । दोनों महावीर की मूर्तियों के ऊपर दो लाल पत्थर की पद्मासन मुद्रा में तीर्थंकर प्रतिमाएँ हैं । दाहिनी ओर की प्रतिमा भगवान चन्द्रप्रभु की है, उनका लांछन अर्धचन्द्र उनके सिंहासन पर स्पष्ट है । बायीं ओर की तीर्थंकर प्रतिमा दायी ओर की प्रतिमा से छोटी है, वह खण्डित है । ।चित्र संख्या -45। त्रिमूर्ति की पादपीठ पर शेर व हाथियों का सुन्दर अंकन है । त्रिमूर्ति की पादपीठ पर लेख है, जिसके अनुसार इसका प्रतिष्ठा काल फाल्गुन शुक्ला 10 सं0 1204 है ।

मन्दिर की छत बहुत खराब होने के कारण ऊपर से बरसात का पानी आता है, जिससे मुख्य मूर्तियों पर पानी के निशान पड़ गये हैं । कलात्मक दृष्टि से ये मूर्तियाँ बहुत सुडौल व कलात्मक हैं । इनके अंग-प्रत्यंगों की गठन बहुत सुन्दर व सुअनुपातिक है ।

इस मन्दिर के दक्षिण की ओर एक अर्धभग्न दक्षिण मुख मठ बना हुआ है, जिसकी छत नष्ट हो चुकी है व केवल दीवारें शेष हैं । इसमें शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ व अरहनाथ की त्रिमूर्ति हैं । मध्य में शान्तिनाथ की मूर्ति कायोत्सर्गासन मुद्रा में लगभग 10 फिट ऊँची है तथा दोनों ओर की प्रतिमाएं 7 - 7 फिट ऊँची हैं । यह त्रिमूर्ति गठन व कलात्मक दृष्टिकोण से प्रथम मठ से कमजोर है । इसकी पाद पीठ पर भी लेख है जिसमें सं0 1204 पढ़ा जा सकता है ।

खण्डित मठ की मूर्ति :-

चारों तरफ से पूर्णतया ध्वस्त मठ की मूर्ति आज भी अपने प्रस्तर खण्ड के सहारे घने जंगल के बीच सीधी खड़ी है । इस मूर्ति के दोनों हाथ पूर्णतया खण्डित हैं । ।चित्र संख्या-50।

लगभग 7 फिट ऊँची दिगम्बर कयोत्सर्ग मुद्रा में है । इसके केश घुँघराले हैं, नासिक व कान खण्डित हैं, आँखें अर्धनिमीलित हैं । हृदय स्थल पर श्रीवत्स शोभायमान है । अनुपात की दृष्टि से भी यह मूर्ति सुन्दर बन पड़ी है । मिट्टी में दबी होने के कारण इसकी प्रशस्ति को नहीं पढ़ा जा सकता है । खुले जंगल में अपनी साधना की सफलता पर जीव प्राणियों का मनोमुग्ध कर संसार की अनित्यता पर अपना वीतरागी रूप लिए संबोधित कर रही है ।

दाना देवता की मूर्ति :-

बाबड़ी के पास एक खेत में एक विशाल मूर्ति पड़ी है, जो किसी तीर्थंकर की विशालतम मूर्ति है । यह मूर्ति भी खण्डित है । स्थानीय समाज इसे "दाना की मूर्ति" और इस खेत को "दाने का खेत" कहता है ।

बुन्देलखण्ड में "दाना" उस प्रेत को कहते हैं जो अपने विविध प्रकार के स्वागों से मनुष्य को भयावह कर प्राणान्त कर देता है ।

" जैन - धर्म सम्बन्धी मूर्तिशिल्प बानपुर "

त्रिमूर्ति :-

बानपुर में बड़े बाबा के मन्दिर में स्थित विशाल त्रिमूर्ति है {चित्र सं0 77} जो धार्मिक व कलात्मक दोनों ही रूपों में विशिष्ट है । इसमें 18 ऊँची भगवान शान्तिनाथ की मूर्ति है तथा दोनों ओर कुन्थु व अरहनाथ की 7 - 7 फिट खड्गासन ऊँची मूर्तियाँ शोभायमान हैं । यह देशी पत्थर से निर्मित पालिश युक्त है । तीनों ही मूर्तियों के केश कुँचित, कन्धे तक लम्बे कान, अर्धनिमीलित नेत्र हैं सुडौल, तरूण , मुख पर शान्ति व वैराग्य का भाव है । हाथ लम्बे हैं । शरीर के अनुपात में पैरों की लम्बाई कुछ अधिक है । वक्ष पर श्री वत्स शोभायमान है । भगवान शान्ति नाथ की मूर्ति के पैरों के पास दोनों ओर चँवर लिये आकृतियाँ हैं । पादपीठ पर भी कुछ छोटी - छोट आकृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं । हाथों के नीचे दोनों ओर दो छोटी-छोटी पद्मासन अवस्था में जिन प्रतिमाएँ भी बनी हैं । जिन प्रतिमाओं और चावरधारिणी मूर्तियों के मध्य दोनों ओर छोटे - छोटे दो शिला लेख हैं ।[1] जो बहुत अस्पष्ट हैं, केवल एक लेख में सं0 1001 पढ़ा जा सकता है । पूरी मूर्ति एक ही शिला खण्ड से निर्मित हैं ।

1- पी0सी0 मुखर्जी - रि0 एटि0 इम0 दा0 डि ए0 ललितपुर - 1972 खण्ड -1,पृ0-30

ऐसा प्रतीत होता है कि पूरे बुन्देल खण्ड में ही विशाल मूर्ति बनाने की परम्परा थी । इसीलिए चाँदपुर [2], दूधई [3], देवगढ़ [4], आहार [5], मदनपुर [6], सेरोन [7], आदि में भगवान शान्तिनाथ की ऐसी ही मूर्तियाँ बनी हैं ।

बांये ओर बनी कपिल कुन्थु नाथ की मूर्ति के केश छाती और बाहु तक बिखरे हुए हैं, जिसे देखकर प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की मूर्ति का आभाश होता है, लेकिन वर्तमान में इस कुन्थानाथ की मूर्ति ही कहा जाता है, क्योंकि त्रिमूर्ति में शान्ति नाथ के साथ कुन्थानाथ व अरहनाथ ही अधिकतर बने हैं ।

मन्दिर संख्या - 2 में अन्दर व बाहर दो प्रकोष्ठ हैं तथा दोनों में ही प्रतिमाएं हैं । बाहर की प्रतिमा लगभग 8' ऊँची है । (चित्र सं0 105) यह स्थानीय पत्थर से निर्मित है । केश घुंघराले, लम्बे कान, व लम्बी भुजाएं है । अधनिमिलित नेत्र, नासिका खण्डित है । जिसे किसी समय सुधारने का असफल प्रयास किया गया है । वक्ष पर श्री वत्स स्पष्ट है, शीश के पीछे खण्डित प्रभामण्डल है । मूर्ति दिगम्बर, कायोत्सर्ग, कुछ भारी है । दोनो हाथों के नीचे शायद

1- ऊँचाई - 16' -2' 3 14' - 6' 4 12' -4 5 (11' 6) (14' -4" हैं ।

चांवरधारिणी हो, जो नवनिर्माण के समय दब गयी हैं । पादपीठ कुछ खण्डित है । स्थानीय लोग इसे शान्ति नाथ की प्रतिमा कहते हैं ।

आन्तरिक कोष्ठ में भी स्थानीय पत्थर से निर्मित लगभग 7' ऊंची प्रतिमा है । इसके केश घुंघराले , कान कन्धों तक लम्बे, हाथ कुछ अधिक लम्बे व पैर कुछ अधिक मोटे हैं । दोनों हाथों के नीचे दो छोटी पद्मासन मुद्रा में प्रतिमाएं हैं । उनके नीचे दोनों ओर एक-एक युगल है जो सम्भवतया नमस्कार मुद्रा व चांवर लिये हुए है । इस मूर्ति की पाद - पीठ जमीन में दबी हुई है , इसीलिए इसकी पहचान करना कठिन है ।

मन्दिर संख्या 1 से लगभग 1' 6 " ऊंची पद्मासन मुद्रा में संगमरमर पत्थर से निर्मित भगवान ऋषभनाथ की प्रतिमा है , जिस पर सं० - 1142 स्पष्ट रूप से अंकित है ।

" सहस्त्रकूट चैत्यालय "

कला की दृष्टि से यह पूरा चैत्यालय ही महत्वपूर्ण है इसकी मुख्य वेदी पर एक विशाल कार्य स्तम्भ सर्वतोभद्र सहस्त्र कूट है । इसीलिए इस मन्दिर का नाम सहस्त्रकूट चैत्यालय है ‖ चित्र सं0 59 ‖ "कूट" का अर्थ है - पर्वत शिखर[1] एक सहस्त्र चैत्यों ‖प्रतिमाओं ‖ का आलय ‖स्थान जहा हो उसे " सहस्त्रकूट चैत्यालय " कहते हैं ।

इस पर 1008[2] छोटी - छोटी पद्मासन व कायोत्सर्गासन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ अंकित है ‖ चित्र सं0 63 ‖ , जो जिनेन्द्र देव के 1008 नामों का प्रतीक माना जाता है । यह स्तम्भ लगभग 8' ऊँचा है , जो नीचे से चौड़ा तथा ऊपर कुछ पतला हो गया है यह सलेटी पत्थर से निर्मित है । चारों ओर मध्य में 3-3 बड़ी पद्मासन मुद्रा में तीर्थंकरों की प्रतिमाएं

1- कूट - पर्वत श्रृंग

‖अ‖ दे0 तारानाथ भट्टाचार्य - वाचस्पत्यम् - तृतीयभाग - वाराणसी 1962- पृ0-2162

‖ब‖ कूटोअस्त्री शिखर श्रृंगम " -अमर सिंह - अमर कोष - का0 2 वर्ग श्लोक-4 वाराणसी-1957 पृष्ठ - 121

‖स‖ द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी - संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ -इलाहाबाद-1957- पृ0 343

2- तीर्थंकर शरीर में 108 मुख्य और 900 सामान्य लक्षण शास्त्रों की दृष्टि से माने गये हैं दे0 जिनसेन-महापुराण- पूर्व-15 श्लोक-37-44

हैं । यह स्तम्भ 3 वर्ग फुट का है । प्रत्येक दिशा में 252 छोटी बड़ी प्रतिमाएं है । देवगढ़ के मन्दिर संख्या 5 में भी सहस्त्रकूट का भव्य रूप देखने को मिलता है ॥ चित्र सं0 63॥ तथा देवगढ़ से 6 कि0मी0 पश्चिम में अमनाचार में भी एक खण्डित सहस्त्रकूट है , ऐसा प्रतीत होता है कि बुन्देलखण्ड में यह प्रतीक बनाने की परम्परा काफी प्रचलित थी ।

इस चैत्यालय के चारों ओर द्वार हैं और चारों ही द्वार कलात्मक हैं ।

पूर्वीद्वार :-

मन्दिर के पूर्वी द्वार के तोरण पर ललाट बिम्ब में तीर्थंकर की प्रतिमा चित्र सं062 जो पद्मासन मुद्रा में है । जिसके पीछे पंचफणावली का छत्र है । दोनों ओर चांवर धारी खड़े हैं साथ ही दोनों ओर बहुत सुन्दर हाथियों का अंकन है । बांयी ओर चक्रेश्वरी यक्षी का सुन्दर अंकन है । यह चार भुजाओं से युक्त है , जिसके पीछे के दोनों हाथों में चक्र हैं । सामने का दक्षिणी हाथ वरद मुद्रा में है । यह मानवीकृत " गरूड़" पर आरूढ़ है । दाहिनी ओर कुबेर का अंकन हैं । केश लम्बे , गले में माला व यज्ञोपवीत शोभायमान हैं ।

ऊपर की पंक्ति में नवग्रह का सुन्दर अंकन है जो बैठी हुई मुद्रा में अंकित है । इनके सभी के बाये हाथ में कमण्डलु व दांया हाथ अभयमुद्रा में बने हैं । मध्य में पद्मासन मुद्रा में तीर्थंकर हैं, जिनके दोनो ओर चांवरधारी खड़े हैं ।

द्वारपक्षों पर नीचे गंगा - यमुना का अंकन है, उनके पीछे दोनों ओर मदनिकाएं बनी हैं । बाहरी स्तम्भ पर द्वारपाल बनाये गये हैं । द्वार की चौकी पर दोनों ओर हाथियों को धकेलते हुए सिंह बने हैं । शेषद्वार पक्ष पर सुन्दर अलंकरण हैं । द्वार के दोनों ओर दो स्तम्भ हैं, जिन पर द्वार पाल बने हैं ।

उत्तरी द्वार :-

उत्तरामुख द्वार के तोरण पर मध्य में [ललाटबिम्ब] पंचफणावली युक्त पद्मासन मुद्रा में तीर्थंकर बने हैं । दोनों ओर हथियों को सुन्दर अंकन है । तोरण पर बांयी ओर द्विभुजी यक्ष का अंकन है जिसकी बांयी ओर गोद में एक शिशु बना है ।[1] दांये हाथ में नाग पकड़े हुए हैं ।[2] दाहिनी ओर चतुर्भुज यक्षी का अंकन हुआ है, जिनका वाहन अस्पष्ट है । अगले बाये हाथ में

1- देवगढ़ के मन्दिर सं0 24 में जड़ी मूर्तियों में धरणेन्द्र के गोद में बालक का अंकन हुआ है

2[अ] दे0 पं0 आशाधर - प्र0सं0 3-151 [ब] द0 नेमिचन्द्रदेव - प्र0ति0 पृ0 338

कमण्डलु व दाँया हाथ वरद मुद्रा में है । ऊपरी पंक्ति में उड़ते हुए विधाधरों का अंकन है , जिनके मध्य में पद्मासन मुद्रा में तीर्थंकर का अंकन है, जिसके दोनो ओर चाँवर धारी खड़े है ।

यहाँ भी द्वार पक्ष पर नीचे गंगा - यमुना व नायिका का अंकन है व बाहरी स्तम्भ पर द्वार पाल उत्कीर्ण किये गये है , जो चतुर्भुज हैं ।

नीचे चौकी पर हाथियों व सिंहो का अंकन है ।

परिचमी द्वार :-

पश्चिमोन्मुख चित्र सं0 -6। इस द्वार के तोरण पर भी ललाट बिम्ब पर तीर्थंकर की पद्मासन मुद्रा में प्रतिमा उत्कीर्ण है । दोनों ओर हाथी उत्कीर्ण किये गये हैं तथा तोरण के दोनों सिरों पर कयोत्सर्गासन मुद्रा में तीर्थंकर प्रतिमाएँ अंकित हैं ।

ऊपर की पंक्ति में नवग्रह का अंकन है जो बैठी हुई मुद्रा में है , जिनके बाँये हाथ में कमण्डलु व दाँया हाथ अभय मुद्रा में है । इनके मध्य में भी पद्मासन मुद्रा में तीर्थंकर बने हैं व उनके दोनों ओर चाँवरधारी खड़े हैं ।

द्वार पक्षों पर अलंकरण है । नीचे वहीं गंगा - यमुना व नायिकाओं का अंकन है ।

द्वार चौकी पर हाथी व शेर उत्कीर्ण हैं । वे द्वार के बराबर के खम्भों पर द्वारपाल अंकित है किये गये हैं । इन्हीं स्तम्भों पर ऊपर कीर्तिमुख बने हैं ।

दक्षिणी द्वार :-

दक्षिणी मुख द्वार के ललाट बिम्ब पर पद्मासन मुद्रा में तीर्थंकर अंकित हैं । यह प्रतिमा शेष तीनों द्वारों की प्रतिमाओं से बड़ी है , इनके दोनो ओर चावरधारी खड़े हैं व सिर के दोनों ओर दो विद्याधरों का अंकन हैं ।

दोनों ओर यक्ष व यक्षी का सुन्दर अंकन किया गया हैं ।

चारों द्वारों के बाहर बरामदों के बाहरी ओर दो - दो कलात्मक स्तम्भ हैं । जिन पर चारों ओर ऊपर व नीचे सुन्दर घटपल्लव अलंकृत हैं । ऊपरी अलंकरण के नीचे चारों ओर ही घंटावली युक्त कीर्तिमुख उत्कीर्ण किये गये हैं । मध्य में ये स्तम्भ अष्टपहल हैं, जबकि ऊपर व नीचे वर्गाकार हैं ।

" बानपुर के अष्ठ दिक्पाल "

विभिन्न दिशाओं के " स्वामी दिक्पाल " के नाम से प्रसिद्ध हैं । दिशाओं के स्वामी दिक्पालों या लोकपालों का पूजन वास्तु देवताओं के रूप में भी लोक प्रिय था।[1] प्राचीन परम्पराओं के अनुसार इन दिक्पालों के नाम और संख्या में भेद है । जैन ग्रन्थों में दस दिक्पालों का उल्लेख मिलता है तथा जैन परम्परा में भी दिक्पालों की संख्या दस बतायी गयी है ।

कुछ विद्वान दिक्पालों की कल्पना का आधार वैदिक संहिता को मानते हैं ।[2] वैदिक देववाद में इन देवताओं को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था ।[3] सभी दिक्पाल वैदिक देवता भी हैं किन्तु पुराण काल आते - आते देवों में परिवर्तन हो गया । वैदिक देवों का स्थान गौण हो गया और वे मात्र दिक्पालों की श्रेणी में आ गये । प्रारम्भ में चार दिक्पालों की गणना की जाती थी, बाद में इनकी संख्या बढ़कर आठ हो गयी ।

1- बी०सी० भट्टाचार्य - " दा जैना आइकनोग्राफी , पृ०-108

2- जे०एन० बनर्जी - डेवलपमेन्ट हिन्दू आइकनोग्राफी पृ०-521

3- " गो० ना० राव - " एलि० आ०"वा० भा० - 2, पृ०-515

जैनों की प्रारम्भिक सूची में भी चार लोकपाल या दिक्पालों का नाम मिलता है। तिलोयपणन्ती में उल्लेख है कि भवन वासी देवों के इन्द्रों में सोम, यम, वरुण और धनद नाम के चार लोकपाल थे। बजंबू दीपष्णान्तिसंग हों,[1] में सोधर्मकल्प के नगरों की चार दिशाओं में यम, वरुण, सोम और कुबेर इन चारलोकपालों के निवास का उल्लेख है। इस प्रकार सोम या चन्द्र को लोकपाल मानने की जैन मान्यता अधिक प्राचीन जान पड़ती है। प्राचीन ब्राहमण शास्त्रों के दश दिक्पाल थोड़े भिन्न हैं किन्तु इनमें इन्द्र, यम, अग्नि और वरुण निसंदिह प्राचीनतम हैं। जैन ग्रन्थों में जिन लोकपालों अथवा दिक्पालों के नाम दिये हैं वे बाद के हिन्दू धर्म ग्रन्थों द्वारा भी स्वीकार किये गये है। उनके अनुसार इन्द्र पूर्व के, अग्नि द०पू० के, यू द०के, नैऋति द०पू० के, वरुण प०के, वायु, उ०पू०, के, कुबेर उ०के, ईशान उ०पू० के, ब्रह्मा उपर के भाग के तथा नाग नीचे के भाग के स्वामी हैं।

लेकिन दिगम्बर संम्प्रदाय ब्रहमा व नाग इन दो को नहीं मानता व उनके स्थान पर ब्राहमण धर्म द्वारा मान्य लोकपालों को मानता है।[2] विष्णुधर्मोत्तर पुराण[3] चतुर्भुज लोकपालों की कल्पना की थी। अपराजितपृच्छा और रुपमण्डन जैसे ग्रन्थों में चतुर्भुज दिक्पालों

1= जंबूदीप पष्णागन्ति संग्रहो उद्देश्य ।।, पृ०- 216 - 217

की परम्परा का निर्वहन किया है । किन्तु अग्निपुराण, मानसोल्लास और वृहत्संहिता आदि से ज्ञात होता है कि दिक्पालों के द्विभुज होने की मान्यता अधिक प्राचीन है । जैन परम्परा में भी दिक्पालों को द्विभुज अधिक माना गया है ।

दिक्पालों की प्रतिमा निरूपण से सम्बन्धित प्रारम्भिक उल्लेख "निर्वाण कलिका" व " प्रतिष्ठासार संग्रह " में है , पर जैन मन्दिरों पर इनका उत्कीर्णन लगभग 9 वीं शता0 ई0 में ही प्रारम्भ हुआ । 'यद्यपि जैन ग्रन्थों में दस दिक्पालों का उल्लेख मिलता है पर जैन शिल्प में अष्टदिक्पालों का अंकन ही लोक प्रिय था । जब हम बानपुर के अतिशय क्षेत्र में बने " सहस्त्रकूट" जिनालय प उत्कीर्ण दिक्पालों पर दृष्टिपात करते हैं तो हम पाते हैं कि जैन मन्दिर पर बने के बाद भी उनमें हिन्दू दिक्पालों में बताई विशेषताएं हैं । यद्यपि जैन ग्रन्थों में अधिकतर द्विभुज दिक्पालों की मान्यत है पर हम यहां पर सभी दिक्पालों को चतुर्भुज पाते हैं । उत्कीर्ण दिक्पालों की संख्या आठ ही हैं । सभी दिक्पाल खड़े हुए , चतुर्भुज विभिन्न आयुधों व हस्त मुद्राओं व अपने - अपने वाहनों के साथ उत्कीर्ण हैं ।

अध्ययन से ऐसा पाते है कि बानपुर में उत्कीर्ण दिक्पालों के आयुध व वाहन पूर्णतया जैन ग्रन्थानुसार नहीं हैं । जैसे कुबेर के साथ मेष का अंकन । दिक्पालों का स्थान परिवर्तन है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि बानपुर का शिल्पी ब्राह्मण धर्मग्रन्थों से अधिक प्रभावित था, या उस समय ऐसा कोई ग्रन्थ हो जो अब अप्राप्त है ।

बानपुर के अष्ट दिक्पाल की मूर्तियाँ, सुन्दर, सुडौल, कलात्मक हैं । ये मूर्तियाँ देशी पत्थर से ही निर्मित हैं । इनकी चौड़ाई व लम्बाई समान है । ये 12" चौड़े व 36" ऊँचे के पत्थरों पर कोरी गयी हैं ।

:: इन्द्र ::

इन्द्र पूर्वी दिक्प्रदेश के दिक्पाल हैं । वेदों में इन्द्र अत्यन्त महत्वपूर्ण देव माने गये हैं । वैष्णव पुराणों में इन्द्र के कई रूपों का वर्णन है । विष्णुधर्मोत्तर [1] में चार भुजा वाले, कमल, वज्र व अंकुश लिए ऐरावत पर आरूढ़ हैं । रूप मण्डन में अंकुश और कुण्डी धारण करने वाला बताया गया है । कुछ ग्रन्थों में इन्द्र को चार भुजाओं व तीन नेत्र वाला बताया गया है ।

1- दे० विष्णुधर्मोत्तरपुराण 50/4-5

जिनमें वह कमण्डलु, वज्र व अंकुश लिए व एक अन्य हाथ वरद मुद्रा में बताया गया है ।
जैन ग्रन्थों में भी इन्द्र के जिस रूप का वर्णन किया गया है वह ब्राहमण ग्रन्थों से बहुत मिलता है ।[1] इन्द्र की हजार आँखों की कल्पना जैनों में भी पहुँची । इसीलिए तीसरी आँख का प्रतीक वहाँ भी बनाया गया ।[2] बानपुर के इन्द्र चित्र सं0 71। खड़े हुए, चतुर्भुज जटामुकुट, माला व यज्ञोपवीत पहने कमर में मेखला पहने हैं । उनका वाहन ऐरावत दक्षिणी ओर बैठे हुए उत्कीर्ण किया गया है । चारों भुजाओं में आयुध की स्थिति निम्न प्रकार हैं ।

सा0 द0	अभय	सा0वा0 कमण्डलु
पी0 द0	वज्र	पी0वा0 कमलकलिका

यहाँ इन्द्र त्रिनेत्र बनाये गये हैं ।

बानपुर में ही बड़े बाबा के मन्दिर में एक इन्द्र की लगभग 5' ऊँची प्रतिमा रखी है ॥ चित्र सं0 104 ॥ ।

1- दे0 गो0 ना0 राव " ए0हि0आ0" वा0 भा0 - 2, पृष्ठ - 518

2- दे0 बी0 सी0 भट्टाचार्य " दा0 जैना आइकनोग्राफी " पृष्ठ - 109

:: " अग्नि " ::

अग्नि देवों के दूत हैं । वेदों में इन्हें सप्त जिह्व , चमकते दाँत, चार नेत्र, हजार सींग तथा धूम्रपताका धारण करने वाला बताया है ।[1] अग्नि पुराण में चार भुजाओं वाले, अक्षमाला , कमण्डलु व शक्ति धारण किये सप्त ज्वाला वाले व बकरे पर बैठे हैं ।

आगच्छने, शक्तियुक्त: छागस्थ, बलसंयुत: [2]

रूपमण्डन में इन्हे शक्ति, कमण्डलु धारी, मेषपर आरूढ़ ज्वालापुंज से घिरा हुआ बताता हैं ।

अपराजितपृच्छा में भी इसी रूप का वर्णन किया गया है ।[3] शिल्परत्न में उन्हें स्वर्ण के समान वर्ण वाले, यज्ञोपवीत धारण किये , मेषारूढ़ लम्बी दाढ़ी, अक्षमाला व कमण्डलुधारी, सप्त ज्वालाशीर्षों वाला बताया है ।[4] दक्षिण - पूर्व दिशा के स्वामी अग्नि का रूप जैनग्रन्थों

1- ऋग्वेद 3/20/2 5/2/3, 1/31/13 6/2/18

2- अग्नि पुराण 56/19

3- डा० इन्दु मति " प्रतिमा विज्ञान " पृष्ठ - 328

4- शिल्प रत्न 13/9/10

में अधिकतर ब्राहमण ग्रन्थों से ही मिलता है । आचार दिनकर के अनुसार , " अग्नि के हाथों में धनुष बाण होता है । जबकि निर्वाणकलिका में उन्हें मेषारूढ़,शक्ति लिए सप्त शिखा वाला बताया है ।

अग्निमग्निवर्ण मेष वाहन सप्तशिख शक्तिमाणी ।

बानपुर के अग्नि खड़े हुए , चतुर्भुज, लम्बीदाढ़ी, युक्त , माला व यज्ञोपवीन पहने मुकुट, कंकण व मेखला धारण किये बनाये गये हैं । §चित्र सं0 70§ बानपुर के अग्नि की सबसे प्रमुख विशेषता उनका वाहन " मेष में हैं । जो उनके वामहस्त की ओर पुरुष वेष में बनाया गया है तथा जिसका मुख मेषका व हाथ जोड़े हुए है । यह अपने में अनोखा उदाहरण है । इसका कारण सम्भवतया यह हो सकता है कि वहाँ के शिल्प कार ने कुबेर को भी मेषवाही बनाया है । अतः कुबेर के मेष से अग्नि के मेष को अलग दिखाने के लिए उसने मेष का मानवी करण कर दिया ।

" यम "

मृत्यु के देवता यम दक्षिण दिशा के दिक्पाल हैं । वेदों में यम का महत्वपूर्ण स्थान बताया गया है ।

वृहत्संहिता में यम दण्डधारी व महिषारूढ़ बताये गये हैं ।

दण्डी यमो महिषगो : वृ०स० 58/9/57

शिल्प संग्रह में नीले चमक वाला , दण्ड, पाश तथा धनुष धारण किये विशाल महिष पर आरूढ़ बताया गया है । अग्निपुराण में उन्हें महिषारूढ़ व दण्डधारी बताया गया है । जबकि मत्स्य पुराण में हरिणवाही ' कहा गया है । अपराजितपृच्छ में यम को लेखनी,पुस्तक व कुक्कुटधारी बताया हैं ।

जैन ग्रन्थों में (दिगम्बर व श्वेताम्बर) में यम दण्डधारी व महिषारूढ़ बताये गये है । ब्राह्मण ग्रन्थों के समान ही जैन ग्रन्थों में उनकी पत्नी छाया उनके साथ रहती है । उनके दूसरे आयुध के सम्बन्ध में कुछ भेद व्यक्त किये गये हैं । आशाधर में " दण्ड " के साथ "धनुष" व नेमिचन्द्र में " दण्ड " के साथ " नाग" का उल्लेख हैं ।

बानमुर के यम (चित्र सं0 69) खड़े हुए, चतुर्भुज, किरीट मुकुट, कुण्डल माला, यज्ञोपवीत, मेखला, कंकण व नूपुर पहने दिखलाये गये है उनका वाहन महिष, पैरों में पीछे की ओर दक्षिण हाथ

बैठे हुए बना है । वे कपाल व दण्डधारी हैं । उनके चारों हाथों की स्थिति निम्न प्रकार हैं :-

सा० दा०	कपाल	सा०वा० खण्डित [दण्ड]	
पी० दा०	पूर्णतया खण्डित	पि० वा०	?

:: निऋति ::

पाप अथवा दोष के देवता नैऋत्य वैदिक कालीन देवता है । ये दक्षिण पश्चिम दिशा के स्वामी कहे गये हैं । विष्णुधर्मोत्तर पुराण में इनका रूप भिन्न माना गया है । भयानक मुखवाले, दो भुजा, काले रंग व काले वस्त्र पहने हाथ में तलवार लिए व ऊँट की सवारी पर रहते हैं ।[2]

" नैऋत : खड्गवान करे " अ०पु० 51*14

अग्नि पुराण में खड्गवान करे कह कर खड्ग को इनका आयुध बतलाया है । " भट्टाचार्य महादेव सम्भवत: "करे" के स्थान पर"खरे" पाठ देखकर निऋति का वाहन " खर" मानते है ।

1- अपराजितपृच्छा 213 /11

2- दे० विष्णुधर्मोत्तर पुराण 57/1-2

अपराजित पृच्छा व रूपमण्डन में इनका रूप बड़ा भयानक बताया गया है, तथा रूपमण्डन में नैर्ऋति श्वान वाही कहे गये है । आगम में इनके वाहन भिन्न - भिन्न बताये गये हैं ।अंशुमदभेदागम के अनुसार " भद्रपीठ पर, " सुप्रभेदागम " में " सिंह " पर बताये गये है [2] निर्वाण कलिका में इन्हें "खड्गधारी व " लाश " पर आरूढ़ बताया है ।[3] तो आचार दिनकर में " वृक्ष मुग्दरधारी व "प्रेत' आरूढ़ बतलाया गया है ।[4] दिगम्बर परम्परा में इन्हें " रीछ" पर आरूढ़ और " गदाधारी बताया गया है । यह विचार पूर्ण रूप से जैन परम्परा का सृजन है ।[5] इसका ब्राह्मण ग्रन्थों में कहीं भी जिक्र नहीं है । बानपुर के निर्ऋति को जब हम देखते है तो इसे हम जैन ग्रन्थ परम्परा से बिल्कुल भिन्न पाते हैं । यहा वे न तो व्याघ्रचर्म ओढ़े हैं, न गदाधारी है, न रीछ पर आरूढ़ हैं, बल्कि बिल्कुल नवीन रूप में हैं (चित्र सं0 68) ।

यहाँ वे खड़े हुए, पूर्णतया नग्न, केवल मोटा यज्ञोपवीत पहने, कानों में कुण्डल, व जटामुकुट

1- दे0 भट्टाचार्य " इण्डियन इमेजिज " पृष्ठ - 30
2- दे0 गो0ना0 राव " ए0 हि0 आ0 वा-2, भा0-2, पृष्ठ - 528
3- नैर्ऋति हरितवर्ण शववाहन " खड्गपाणि" निर्वाणकलिका"
4- धूम्रवर्णाय व्याघ्रचर्मवृताय मुद्गरहस्ताय प्रेत वाहनाय " आचार दिनकर "
5- बी0सी0 भट्टाचार्य " दा जैना आइकनोग्राफी " पृष्ठ - 111

धारी हैं । हाथों में तलवार व नरमुण्ड और कमल कलिका लिए हुए हैं । उनका वाहन भी कुछ भिन्न है , जो उनके दाहिने और पैरों के पीछे खड़ा है । जो देखने में गधे जैसा लगता है अभी रहस्य का विषय है । शायद यह " जंगली भैंसा " है ।

सा0	दा0	खड्ग	सा0 वा0 नरमुण्ड
पी0	दा0	9	पी0 वा0 कमलकलिका

:: वरुण ::

वैदिक काल में वरुण की गणना देवत्रयी {इन्द्र, वरुण, अग्नि} के मध्य की जाती थी ।[1] वे जल के साथ ऋतु के देवता माने जाते थे तथा हाथ में " पाश" धारण करते थे । पुराण काल में वरुण का देवपरिवार मेंमहत्व कम हो गया , वे केवल पश्चिम दिशा के स्वामी मात्र रह गये । वृ0सं0 में इन्हें " हंस } आरुढ़ व पाशधारी बताया गया है ।

वरुण जलचरों के स्वामी हैं । समुद्र इनका निवास स्थान है । ये हीरे मोती पहने, धवलवर्ण मकरवाही व पाशधारी है ।[2] अपराजित पृच्छा व रुप मण्डन में वरुण को चतुर्भुज, कमल, पाश

1- दे0 गो0 ना0 राव " ए0 हि0 आ0 वा0 2, भा0-2, पृष्ठ -529

2- वरुण धवलवर्ण मकर वाहन पाशायणिम् निर्वाणि कलिका

कमण्डलु व वरद मुद्रा में बताया गया है जबकि विष्णुधर्मोत्तर पुराण में इन्हें कमल, शंख,पाश व रत्न पात्र लिए हुए बताया गया है तथा उनका वाहन मकर बताया गया है । जैन धर्म में वरुण का रूप बहुत कुछ ब्राहमण धर्म ग्रन्थों से ही मिलता हुआ है ।[1] बानपुर में वरुण देव {चित्र066} को पश्मोत्तर दिशा में बनाया गया है ।उनका वाहन " मकर " उनके बाये पैरों के पीछे दर्शाया गया है । वे खड़े हुए , चतुर्भुज,रत्न जड़ित मुकुट, कानों में कुण्डल, हार, यज्ञोपवीत कमर में मेखला हाथों में बाजु बंद व कंकण पहने लहरों का वस्त्र धारण किये हुए पाश, कमण्डलु, रत्न पात्र धारण किये हुए है । उनके दक्षिणी ओर हाथ जोड़े हुए एक नारी आकृति बैठी हुई मुद्रा में उत्कीर्ण है । उनके हस्त मुद्राओं की स्थिति निम्न प्रकार हैं :-

दा० सा०	वरद	वा०सा० कमण्डलु
दा०पी०	नागपाश	वा०पा० रत्नपात्र

इस प्रकार हम देखते हैं कि बानपुर के वरुण वि० ध० से काफी मिलते हैं ।

1- दे० बी०सी० भट्टाचार्य " दा जैना आइकनोग्राफी " पृष्ठ - 112

वायु :-

ये भी वैदिक देवता हैं इनकी उत्पत्ति विश्व पुरुष के प्राणों से बतायी गयी है । ये युवा व शक्तिशाली बताये गये हैं । विष्णुधर्मोत्तर पुराण में नीलवर्ण वायु से भरे वस्त्र व द्विभुजा वाले बताये गये हैं, इनका मुख खुला हुआ व केश बिखरे हुए रहते हैं । अपराजित पृच्छा में वायु चार भुजा वाले, ध्वज पताका तथा कमण्डलु लिए रहते हैं, तथा मृग वाहन पर आरूढ़ रहते हैं । रूप मंडन में भी इनके इसी रूप का वर्णन किया गया है ।[1] सभी जैन ग्रन्थ इन्हें मृग पर आरूढ़ मानते हैं । श्वेताम्बर परम्परा में इन्हें वज्र धारण किये हुए बताया गया है, जबकि दिगम्बर इन्हें "काष्ठ अस्त्र" लिए हुए मानते हैं ।[2] सभी जैन इन्हें उत्तर पश्चिम दिशा का दिक्पाल मानते हैं । जैन वायु, हाथ में " वज्र" या काष्ठ अस्त्र के कारण ब्राहमण वायु से अलग हैं, तथा यह जैन विचारधारा का अपना सृजन है । एक विचारधारा के अनुसार ये अपने सीधे हाथ में अंकुश लिए रहते हैं ।[3]

1- अपराजित पृच्छा 213/14

रूप मण्डन 2/36

2- बी०सी० भट्टाचार्य - दा जैना आइकोनोग्राफी - पृ0- 112-13

3- गो०ना० राव - दा ए०हि०आ० - खण्ड-2, भा० 2, पृ0- 533

बान्पुर में वायु (चित्र सं० 67) को पश्चिम दिशा में बनाया गया है, इनका "मृग" दौड़ते हुए इनके दाहिनी ओर उत्कीर्ण है। शरीर सुडौल, सुन्दर, खड़े हुए, चतुर्भुज, जटा मुकुट, कुण्डल, मोतियों की माला, हार, यज्ञोपवीत, सुन्दर मेखला व हाथों में कंकण पहने हैं। उनका बाँया पैर आधा खण्डित है। हाथ में उड़ता वस्त्र पकड़े व अंकुश के समान अस्त्र लिए हैं।

हाथों की स्थिति निम्नप्रकार है :-

अ० दा० खंडीत अभय	अ० बा० जंघा पर रखा है।
पी०दा० वस्त्र पकड़े हुए	पी० बा० अंकुश ?

कुबेर :-

कुबेर उत्तर दिशा के दिक्पाल माने गये हैं। ये यक्षों के अधिपति कहे गये हैं, तथा धन के स्वामी होने के कारण धनद कहे जाते हैं। वृ०सं० में इन्हें किरीटमुकुट धारण करने वाला व नरवाहन वाला कहा गया है। उत्तर दिशा के स्वामी होने के कारण ये उत्तरी वेशभूषा धारण करते हैं, वे चमकता हुआ ब्रे कवच व पेट पर लटकता हुआ हार पहनते हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में इन्हें चतुर्भुज, लम्बोदर व नरवाहन वाला शक्ति व गदा धारणकिए हुए वर्णित किया गया है।[1] कुबेर इन्द्र के कोषाध्यक्ष है तथा हाथ में नकुल व गदा रखते हैं, इनका पेट बड़ा रहता है व नरवाहन

1- लम्बोदरश्चतु बाँहु बाँम पिंगललोचनः।
उदीश्यवेशः कवचीहार मालार्पितोदरः ।। वि० ध०-53/3-4-5-6.

है , यही रूप जैन ग्रन्थों ने भी स्वीकार किया है । अग्निपुराण [1] व अंशुमद्भेदागम में इन्हें मेषवाही बताया गया है । रूपमण्डन में इन्हें हाथी पर आरूढ़ व गदा , नकुलक, कमण्डलु व फल लिए हुए वर्णित किया गया है । [2] अग्निपुराण, आशाधर व निर्वाणकलिका में भी इन्हें गदाधारी बताया गया है ।

बानपुर में कुबेर { चित्रसं0 65 } को उत्तर दिशा में खड़े हुए, लम्बोदर, मणिमुकुट,गले में हार व माला , वक्ष पर कवच कमर में सुन्दर मेखला, मौतियों का यज्ञोपवीत, हाथों में कंकण पहने हुए बनाया गया है । यहां इनका वाहन आगम व अग्निपुराण में वर्णित मेष बनाया गया है, जो इनके दाहिनी ओर पैरों के पीछे खड़ा हुआ है । हाथों में नकुलक लिए हुए हैं ।

हाथों की स्थिति निम्न प्रकार हैं :-

आ0 दा0 खण्डित -अभय	अ0 बा0 - नकुलक
पी0 दा0 पूर्णतया खण्डित	पि0 बा0 - खण्डित

1- " कुबेर मेषसंस्थितम् " अग्निपुराण - 51/15

2- गो0ना0रा0 - ए0 हि0 आ0 वा- 2, भा0-2, पृ0 - 537.

ईशान :-

ईशान उत्तर पूर्व दिशा के दिक्पाल हैं । ये शिव का विशिष्ट रुप हैं । मत्स्य पुराण में त्रिशूलधारी, त्रिनेत्र वृषभ पर आरुढ़ बतलाया गया है । अग्निपुराण में जटाधारी वृषभ पर आरुढ़ वर्णित हैं । अपराजित पृच्छा व रुप मण्डन में इन्हें धवलवर्ण, त्रिशूलधारी, नाग लिए हुए वृषभ पर आरुढ़ बताया गया है ।[1] शिल्परत्न में वृषभवाही, त्रिनेत्र, जटामुकुट, त्रिशूल व मणि कुण्डल धारी हैं । निर्वाण कलिका में वृषभवाहन, त्रिनेत्र व शूल लिए वर्णित हैं ।[2] दिगम्बर ग्रंथों में इनके हाथ में कपाल का वर्णन किया गया है । कहीं - कहीं जैन ग्रन्थों में कपाल, सर्प व पिनाक लिए हुए बताया गया है ।[3]

बानपुर में ईशान (चित्र सं0 64) सुन्दर, सुडौल, चतुर्भुज, त्रिनेत्री, जटाजूट मुकुट, मणिकुन्डल, माला, यज्ञोपवीत व सुन्दर मेखला से विभुषित हैं । उनका वाहन वृषभ दाहिनी ओर

1- वरं तथा त्रिशूलच नागेन्द्र बीजपूरकम् :
विभ्राणो वृषभारुढ़ ईशानो धवलधुति : ।। रुपमण्डन 2/38

2- ईशानधवलवर्ण वृषवाहन त्रिनेत्रशूलपाणि । निर्वाण कलिका

3- बी0सी0 भट्टाचार्य - दा जैन आइक्नोग्राफी - पृ0- 115

खड़ा हुआ है व उसका मुख ऊपर की ओर उठा हुआ उत्कीर्ण है । बायीं ओर एकछोटी खड़ी अवस्था में पुरुष आकृति उत्कीर्ण है जिसका मुख खण्डित है । एक हाथ कटि पर हैं । गले में माला व यज्ञोपवीत पहने हैं ।

हाथों की स्थिति निम्न प्रकार हैं :-

अ0 दा0 -	अक्षमाल युक्त वरद	अ0बा0-	कोहनी तक खण्डित, किन्तु अवशेष से ऐसा लगता है कि इस हाथ में सर्पधारण किये हैं
पि0दा0 -	खण्डित हैं, अवशेष से प्रतीत होता हैं कि इसमें त्रिशूल धारण किये हैं ।		पिछला बांया-पूर्णतया खंडित

इस प्रकार हम देखते हैं कि बानपुर की अष्टदिक्पाल प्रतिमाएं जैन ग्रन्थों के स्थान पर ब्राहमण ग्रन्थों के आधार पर ज्यादा उत्कीर्ण की गयी हैं और कहीं - कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है कि बानपुर के शिल्पी ने अपनी इच्छानुसार या फिर किसी ऐसे ग्रन्थ पर आधारित जो अब अप्राप्त है, से प्रेरित होकर इन मूर्तियों का निर्माण किया है । एक बात पूर्णरूप से स्पष्ट है कि वहा के कलाकार किसी धर्म विशेष से पूर्णतया बंधे न थे , वे धार्मिक कम कलाकार अधिक थे । वहा की कला को देखकर ऐसा लगता है कि बानपुर के कलाकारों का धर्म कला ही था, तथा उसी से प्रेरित होकर उन्होंने इतीनी सुन्दर व कलात्मक मूर्तियों का निर्माण किया होगा ।

मदनपुर की दिक्पाल प्रतिमाएँ :-

मदनपुर में कचहरी के चारों ओर बिखरे हुए प्रस्तर खंडों में कुछ दिक्पाल प्रतिमाएँ प्राप्त हैं । एक प्रस्तर खण्ड पर , जो बड़ी कचहरी के पश्चिमी द्वार के बिल्कुल नीचे पड़ा हुआ है , जिस पर दो दिक्पालों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं । इनमें एक मूर्ति तो बहुत खण्डित हैं, लेकिन एक मूर्ति पूर्णतया स्पष्ट है । [चित्र सं0 28] यह ईशान दिक्पाल की मूर्ति है । यह खड़ी हुई मुद्रा में लगभग 36" x 12" के आकार की है । यह चतुर्भुज है, बांये हाथ में नाग है व दांये हाथ में त्रिशूल है । दायाँ सामान्य हाथ कुछ खंडित है तथा बांया सामान्य हाथ अस्पष्ट है । ये मुकुट कुण्डल, माला, मेखला व कंकण से अलंकृत हैं । पैरों के पास दोनों ओर दो छोटी - छोटी मानव आकृतियाँ बनी हैं, जो खण्डित है । शेष प्रस्तर खण्ड पर सुन्दर अलंकरण किया हुआ है ।

लगभग इतने ही आकार के एक और खण्ड पर एक अन्य द्विभुजी प्रतिमा है, जिसके दोनों हाथ व पैरों के पास का भाग खण्डित है । जिसके कारण इस प्रतिमा की पहचान नहीं की जा सकती है, लेकिन आकार प्रकार में यह प्रतिमा खण्ड उपरोक्त प्रतिमा खण्ड से काफी मिलता है अतःसम्भावना है कि यह भी किसी अन्य दिक्पाल की मूर्ति ही है । इस खण्ड का दूसरा भाग जमीन की ओर पड़े होने के कारण छिपा हुआ है । जिस पर एक अन्य दिक्पाल की मूर्ति है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस मन्दिर के गर्भ गृह के चारों ओर अष्ट दिक्पाल प्रतिमाएँ थीं जो अब गर्भ गृह खण्डित होने के कारण खण्डित होकर बिखर गयी हैं ।

मदनपुर के एक स्कूल के आँगन में एक बहुत सुन्दर एवं कलात्मक स्तम्भ रखा हुआ है, [चित्र सं0 54] जो लगभग पाँच फुट ऊँचा है , उसका अलंकरण बहुत आकर्षक है । ऊपर की ओर सुन्दर घटपल्लव उत्कीर्ण है । बीच में अर्धवृत्ताकार आकार में कलात्मक अलंकरण किया गया है । नीचे के भाग में लगभग दो फुट ऊँची खड़े हुए ईशान दिक्पाल की मूर्ति है जो द्विभुजी है । इनको बाये हाथ में नागेन्द्र हैं, दाँया हाथ खण्डित है । ये जटा -जूट मुकुट हार, माला व मेखला से अलंकृत हैं । बाया पैर अर्धखण्डित है, दाये पैर के पास इनका वाहन " वृष" बैठा हुआ उत्कीर्ण है , जिसका मुख खण्डित है । मूर्ति के दोनों ओर छोटे - छोटे स्तम्भ उत्कीर्ण किये गये हैं, जिनकी ऊपरी भाग में सुन्दर अलंकरण किया गया है । स्तम्भ के नीचे के भाग में ही ईशान मूर्ति के दाँयी ओर चाँवरधारी नायिका की आकृति बनी हुई है , जिसके दोनों पैर अर्धखण्डित हैं ।

अतिशय क्षेत्र बानपुर में संग्रहीत मूर्तियाँ:-

क्षेत्रीय प्रांगण में अनेक महत्त्वपूर्ण शिलाखण्ड यत्र-तत्र पड़े हैं जो अधिकतर आस-पास के जंगल से प्रबन्ध समिति ने एकत्रित करके इस क्षेत्र में रख दिये हैं । यहाँ भी ये महत्त्वपूर्ण, मूर्तियाँ खुले में पड़ी हैं जिससे मौसम की समस्त प्रहार इन पर दीर्घकाल से होता रहा है । इसी कारण कुछ का बाह्य रूप विकृत हो गया है , इनमें कुछ मूर्तियाँ बहुत सुन्दर व महत्त्वपूर्ण हैं ।

एक सुन्दर कलापूर्ण शिलापट है [चित्र सं08।] जिस पर पद्मासन मुद्रा में भगवान आदि नाथ की प्रतिमा है जो लगभग 5' ऊँची व 2' 6"चौड़ी है । इसके हाथ व पैर खण्डित हैं। केश कन्धों तक बिखरे हैं । मुखांग यद्यपि काल के प्रकोप से विदीर्ण हो गयेहैं फिर भी मुख पर शान्ति स्पष्ट परिलक्षित है पीछे सुन्दर उभारदार कमल पत्र से सुसज्जित प्रभामण्डल है । ये ऊँचे सिंहासन पर स्थित है , जिसके दक्षिणी ओर गोमुख यक्ष का अंकन स्पष्ट है । दोनों ओर चाँवर-धारी बने हैं । जिनके मुख खण्डित हैं । उनके पीछे दोनों ओर दो स्तम्भों का निर्माण कियागया है , जो कलात्मक है उन पर ऊपर की ओर तीर्थंकरों की छोटी - छोटी प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं । सबसे ऊपर दोनों ओर विद्याधर युगलों का सुन्दर अंकन है । दोनों किनारों पर छोटी-छोटी तीर्थंकरों की कायोत्सर्ग व पद्मासन प्रतिमाएं उत्कीर्ण है । सिंहासन पर सुन्दर कीर्तिमुख कीर्तिमुख का अंकन हुआ है । यह शिलापट भी लाल पत्थर का है तथा कलात्मक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्णहैं

इसी के पास बायीं ओर एक और शिलापट है जिस पर क्योत्सर्ग मुद्रा में भगवान आदिनाथ हैं । उनका शीश पूर्णतया खण्डित है । सिंहावसन भी अर्धखण्डित है । कन्धे तक बिखरे हुए केशों से प्रतिमा की पहचान की जा सकती है । दोनों ओरचांवरधारी व नायिकाएँ उत्कीर्ण हैं । सिंहासन के एक ओर मुग्दरधारी कुबेर बनाये गये है । यह शिलापट बायी ओर से अधिक खण्डित है । यह भी लाल पत्थर से निर्मित हैं ।

यहीं एक और शिलापट आदिनाथ शिलापट § चित्र सं0 81 § के दाये ओर रखा हैं। ऊँचाई में यह लगभग 4' ऊँचा है व 2' चौड़ा है । इस पर भगवान चन्द्र प्रभु की क्योत्सर्गासन मुद्रा में गहराई तक कोरी गयी प्रतिमा है । इस का शीश भी खण्डित है । पादपीठ पर उत्कीर्ण अर्धचन्द्र से इसकी पहचान की जा सकती हैं , दोनों ओर चांवरधारी बने हैं । सिंहासन के दोनों ओर यक्ष व यक्षिणी की प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं । इस प्रतिमाएं के अंग प्रत्यंग इतने कलात्मक नहीं हैं जितने आदिनाथ शिलापट पर उत्कीर्ण प्रतिमा के हैं , यह भी लाल पत्थर से निर्मित की गयी हैं ।

मन्दिर संख्या 3 के बाह्य भित्ति पर एक आले में एक सुन्दर शिला पर जड़ा है । §चित्र सं0 79 § जिस पर भगवान आदिनाथ की सुन्दर पद्मासन मुद्रा में प्रतिमा है । केश ऊपर बंधे हुए, कान लम्बे ,आंख निमिलित हैं, नासिक ठुड्डी कुछ खण्डित हैं । यह ऊँचे सिंहासन पर बैठे हैं जिस पर बैठे हुए वृषभ का अंकन है ।

पार्श्व नाथ :-

इस अवसर्पिणी के 23 जिन है । पार्श्वनाथ का जैन धर्म का वास्तविक संस्थापक माना गया है । मेघमाल ने पार्श्व की तपस्या भंग करने के लिए तरह - तरह के उपाय किये । अतिवृष्टि के समय धरणेन्द्र नाग ने पार्श्व को चारों ओर से घेरकर अपने फणों पर उठा लिया और उसकी पत्नि पद्मावती ने शीर्ष भाग में वज्रमय छत्र -छाया की थी ।[1] इस परम्परा से ही पार्श्व के शीर्ष पर सप्तसर्पफणी के छत्र का प्रदर्शन की परम्परा है । 100 वर्ष की अवस्था में सम्मेद शिखर पर पार्श्व ने निर्वाण पदप्राप्त किया । पार्श्व का लांछन सर्प है और यक्ष व यक्षी पार्श्व पद्मावती हैं । पीठिका पर सर्प लांछन की परम्परा लोक प्रिय नहीं है पर सिर के ऊपर सप्तसर्पफणों का छत्र सदैव प्रदर्शित किया जाता है । पार्श्व की प्राचीनतम मूर्ति यह ली शती पू0 की है । इसमें पार्श्व सर्पफणों के छत्र से युक्त हैं । कुषाण काल में ऋषभ के बाद पार्श्व की ही मूर्तियां सर्वाधिक मिली हैं। देवगढ़ में नवीं से ग्यारहवीं शती के मध्य की पार्श्व की अनेक मूर्तियां प्राप्त हैं । देवगढ़ की सभी मूर्तियों में सर्प की कुण्डलियां पार्श्व के घुटने या चरणों तक प्रसारित हैं । कुछ उदाहरणों में पार्श्व सर्प की कुण्डली विराजमान है ।

बानपुर में पार्श्वनाथ मूर्ति :-

बानपुर के नये मन्दिर के एक आले में पार्श्व नाथ की एक छोटी मूर्तिरखी है॥चित्रसं0 103॥ जो गांव से किसी नींव की खुदाई में प्राप्त हुई है इसकी माप 18"x9" है इसमें पार्श्वको सर्गासन

में खड़े हैं । शीश पर सप्तसर्पफणावली का छत्र है । जिसकी कुण्डली पीछे की ओर पैरों तक बनी हुई है । दोनों ओर दो इन्दु चाँवर लिए हुए बनाये गये हैं । सर्पफणावली के दोनों ओर विद्याधर बने हैं । जिसमें बायीं ओर का भाग खण्डित है पूरी मूर्ति एक 18"x9" के शिला पट पर उत्कीर्ण हैं ।

धर्मेतर :-

अनेकानेक ऐसी मूर्तियाँ , जिनका सम्बन्ध पूजा पाठ व धर्म से नहीं रहा है , प्राचीन काल से ही बनती चली आयी हैं । इनका उद्देश्य तत्कालीन सामाजिक अभिव्यक्ति, सज्जा, व अलंकरण मूलरूप से रहा हैं ।

युद्ध, आखेट, परिवार के दृश्य, गुरू-शिष्य, कार्यरत श्रमिक, संगीत मंडलियाँ, नृत्यरत नर-नारियाँ, अप्सरायें, सुर-सुन्दरियाँ, मिथुन- युगल, शार्दुल, पशु- पक्षी, आदि का चित्रण परम्परा से ही चला आ रहा है ।

चन्देल कालीन मूर्ति शिल्प में ऐसी मूर्तियाँ व्यापक रूप से उत्कीर्ण की गयी हैं । खजुराहों व देवगढ़ में ऐसी मूर्तियों का अंकन व्यापक रूप से देखने को मिलता है ।

मदनपुर व बानपुर में यद्यपि ऐसा अंकन कम हुआ है , लेकिन वहाँ की मूर्ति-कला भी ऐसे अंकन से अछूती नहीं रही है । मदनपुर में "छोटी कचहरी" के पश्चिमी द्वार पर चँवर लिये हुए दो सुन्दर नायिकाओं को देख सकते हैं । ﴾ चित्र सं0 13﴿ जो सर्वोत्कृष्ट वस्त्राभूषणों से अलंकृत हैं । उनकी भंगिमा आकर्षक है । ﴾ चित्र सं0 14 ﴿ वे हार, माला, सुन्दर चौड़ीमेखला, कंगन , नूपुर आदि से सुसज्जित हैं । छोटी कचहरी के बाहर की ओर उत्तरी दीवार के छज्जे पर छोटे-छोटे पैनलों में प्रेमी युगल विभिन्न मुद्राओं में बने है । फलक संख्या - 15 मन्दिरों पर इनका अंकन भौतिक संसार से उठकर आध्यात्मिक धरातल पर पहुँची हुई - प्रगाढ तन्मयता और आनन्दातिरेक की अभिव्यक्ति हैं ।

चम्पोमठ के द्वार पक्षों पर भी हम ऐसे ही प्रेमी युगल देख सकते हैं । ﴾फलक सं0 -49﴿ जो सम्भवतया नृत्य मुद्रा में दर्शाये गये हैं । वहीं द्वार की पाद-पीठ पर आस-पास युगल बैठे हुए बने हैं । मदनपुर, बानपुर का मूर्तिकार खजुराहो के मूर्तिकार की तरह स्वच्छन्द तो न हो सका, लेकिन उसने अपने इन भावों को अल्प रुप में ही सही , पर अभिव्यक्त किया हैं ।

बानपुर के सहस्त्र कूट जिनालय के द्वार पक्ष पर मदनिकाओं को देखा जा सकता है । ﴾ चित्र सं0 61 ﴿ ऐसी ही मदनिकायें हम चम्पोमठ के द्वार पर भी देख सकते है ।﴾चित्रसं048﴿ जो आकर्षक मुद्राओं में उत्कीर्ण की गयी हैं । बानपुर व मदनपुर दोनों ही स्थानों पर "जिन"

मूर्तियों पादपीठ पर अर्चना करते हुए स्त्री पुरुष या राजा रानियों का अंकन भी देखा जा सकता है मदनपुर में कचहरी, चम्पामठ व बानपुर में सहस्त्रकूट जिनालय पर सिंहों व गजों का सुन्दर अंकन किया गया है । चम्पामठ के द्वार की पाद पीठ पर सिंह गज युद्ध चिन्ताकर्षक है, तो बानपुर के जिनालय के चारों द्वारों के पादपीठ पर गजों को धकेलते हुए सिंह बनाये गये हैं । शार्दुल का हमारी अंकन/मूर्तिकला में बहुत समय से होता आया है । इसे व्याल, वराल, तथा विरालिका भी कहा गया है । यह कला में प्रदर्शित कल्पित पशु है । जो प्रधानत: उग्र सश्रृंग सिंह के रूप में चित्रित हुआ है । अप्सराओं की भांति शार्दुल के पीछे भी गहन लाक्षणिकता छिपी हुई है । बानपुर में शिखर के नीचे देव कलिकाओं के दोनों ओर शार्दुलों का सुन्दरअंकन किया गया है । फलक संख्या - 73 में शार्दुल दृष्टव्य है ।

शोभन :- रेखाचित्र- 3 से 7 तक

मानव जीवन का इतिहास जितना प्राचीन है, उसका स्वयं को सजाने का इतिहास भी उससे कहीं कम नहीं है । छाल व पत्तों से शरीर को ढकने के पीछे भी यही भावना थी । ज्यों-ज्यों मानव के जीवन का विकास हुआ, उसकी यह रुचि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिलक्षित होने लगी । कला मानव जीवन की चेरी रही है । उसका मानव से निकट का सम्बन्ध रहा है । कला उसकी स्वाभाविक व सज्जात्मक अभिरुचि की अभिव्यक्ति रही है । अत: ज्यों - ज्यों कला का

विकास हुआ मनुष्य की सज्जात्मक रुचि का भी विकास हुआ, चाहे व चित्रकला हो, मूर्तिकला या स्थापत्य, सज्जा उसका आवश्यक अंग बन गये । प्रागैतिहासिक काल से लेकर वर्तमान काल तक इसके सुन्दर उदाहरण चहुँ ओर देखने को मिलते हैं । मूर्तिकला में चपटे धरातल की अप्रियता को दूर करने व शेष स्थान का पूर्ण करने के लिए सज्जात्मक शिल्पन किया गया । उत्तरवर्त्तीकाल में स्थापत्य जब विकास की चरम सीमाओं का स्पर्श कर रहा था तब उसके स्तम्भों, द्वार पक्षों, तोरणों, गवाक्षों, देवकुलिकाओं और भित्तियों पर अलंकरण की आवश्यकता हुई । इन अलंकरणों में प्रारम्भ में पत्रावली, रचना, पशु-पक्षियों के अंकन आदि प्राकृतिक तथा आखेट आदि सामाजिक दृश्यों का स्थान मिला । इसके पश्चात युग्मों और मण्डलियों का अंकन बढ़ाया । §10वीं से 13वीं शताब्दी तक § मदनिकाओं, अप्सराओं और सुर सुन्द्रियों के अंकन बहुत लोकप्रिय हुए । इन्हें प्रसाधन, पत्रलेखन क्रीड़ा आदि के बहाने अनेक प्रकार की मुद्राओं में प्रदर्शित किया जाने लगा । खजुराहों, कोणार्क आदि स्थानों पर यह देखा जा सकता है । किन्तु देवगढ़, मदनपुर, दुधई, चाँदपुर, सिरोन, आहार, बरुआसागर आदि में यह अपने प्रारम्भिक रूप से ही आकर रह गयीं । मदनपुर एव बानपुर की मूर्तिकला व चित्रकला में सज्जात्मक तत्वों का बहुत सुन्दर ढंग से कलाकार ने उपयोग किया है । यहाँ उसने प्रकृति से प्रेरित होकर जहाँ प्राकृतिक अलंकरणों, कमल पुष्प, बेल आदि का सुन्दर अंकन किया है वहीं पर ज्यामितीय सज्जात्मक तत्वों का भी भरपूर उपयोग किया हैं ।

हिन्दुओं का सर्वोत्तम एवं पवित्र सज्जात्मक चिन्ह कमल है । जिसको बहुत सी आकृतियाँ

में दर्शाया गया है , तथा इसको शास्त्रों में 'पद्म' नाम दिया गया है । इसका मुख कुछ आकृतियों में अर्धविकसित दिखाया गया है तथा कुछ में पूर्ण विकसित गुप्तकालीन शिल्प में इसका बहुत प्रयोग मिलता है तथा चन्देल काल में भी इसका बहुत प्रयोग हुआ है ।

सज्जा का दूसरा साधन " वृक्ष " रहा है जिसका तना लहरदार लाइनों में और पत्तियाँ व फूल भी विभिन्न प्रकार की शैलियों में उत्कीर्ण किये गये हैं । त्रिकोण विभिन्न प्रकार से शिल्पन हैं जिसमें प्रत्येक में तीन फूल या तीन पंक्तियाँ चित्रित की गयी हैं । पंक्ति बद्ध कमल के फूलों का अंकन बहुत सुन्दर हुआ है, जिसमें एकान्तर कमल गोल आकृति में बने हैं । उड़ी हुई नलिनियों की पंक्तियाँ जो खिली हुई हैं और प्रायः प्रवेशद्वार पर शिल्पित की गयी हैं । घोड़े की नाल वाली एक विशेष आकृति का शिल्पन प्रायः शिखर को सज्जित करने के लिए किया गया है , जिसका उदाहरण बानपुर के सहस्त्रकूट जिनालय में स्पष्ट है । कुछ छोटे अभिप्राय जो माला के दानों के समान पंक्तिबद्ध हैं । छोटे - छोटे खाली स्थानों को भरने के लिए प्रयोग किये गये हैं । स्तम्भों को सजाने के लिए घट पल्लव, घंटावली, कीर्तिमुख, आदि का प्रयोग हुआ है तो द्वार पक्षों पर लहरदार सज्जात्मक "राम-रेखा" का शिल्पन है । एक ही अभिप्राय को कई-कई प्रकार से प्रयोग किया गया है तथा एक ही प्रकार के प्रतीक से बहुत सी बातों का आभास प्राप्त हो जाता है । कमल एक स्थान पर केवल पंखड़ियों के समूह में है, जबकि दूसरे स्थान पर केवल

वलयाकृति में या कर्ण के आधार पर चतुष्कोणीय फूल जिसमें चार ही पंक्तियाँ हैं, कहीं बहुत बड़ा वृत्ताकार पूर्ण विकसित कमल है , जो मुख्य आकृति के नीचे, मध्य मे या किसी छत के मध्य में दिखाया गया है जैसा मदनपुर की " बड़ी कचहरी" के दोनों ओर के छोटे कमरों की छत में स्पष्ट है ।

स्तम्भों के आधार पृष्ठ पर यह कमल की पंखड़ियाँ भव्य रूप में चित्रित की गयी है, जो अधिक गहरी नहीं है और केवल लहरदार है । यह अभिनय मदनपुर में स्पष्ट देखने को मिलता है । एक पंक्ति जो दीवार पर या खम्भों पर है या धरातल पर सर्पिया चित्र है । जो बहुत सुन्दर तरीके से ऊपर उठता है और पृष्ठ भाग में ओझल होता हुआ दिखाया गया है , जिसमें पंक्तियाँ हैं, खिले हुए फूल हैं, जो गोलाई के रिक्त स्थानों की पूर्ति कर रहे हैं । मदनपुर के बड़ी कचहरी के पश्चिमी द्वार पर, बाह्य भित्ति पर व बानपुर जिनालय के द्वार पक्ष पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है । विभिन्न वृत्तिय - शिल्पन जो बहुत छोटे स्थानों पर किये गये हैं, बहुत आकर्षक हैं । जिनमें छोटे वृतीय फूल, पत्तियाँ, चतुष्कोणीय आयत आदि हैं, जो पूरे अलंकरण को बहुत आकर्षक बना देते हैं । घोड़े की नाल की आकृतियों के रूपीय पंखड़ियों के फूल हैं और माला के दानों के समान उनकी व्यवस्था की गयी है । इन सज्जात्मक अलंकरणों के साथ - साथ ही कुछ विशेष प्रकार के अभिप्राय या प्रतीकों का प्रयोग भी शोभन के रूप में किया गया है, जिनमें कीर्तिमुख, कीचक, शार्दुल, सिंह,हाथी, घटपल्लव व घंटावली आदि बनाये गये हैं।

कीर्तिमुख एक सज्जात्मक तत्व है, जिसका अंकन स्तम्भों , तोरणों व छतों में किया गया है । इस तत्व के अंकन के पीछे टोने टोटके का रहस्य छिपा रहता है । वर्तमान में भी इस प्रकार के मुख बनाकर नये भवनों में लगा दिये जाते हैं । कीर्तिमुखी से मालाएं , लड़ियां,घटांवली, तथा श्रृंखलाए आदि झूलती हुई दिखाई जाती हैं । मदनपुर व बानपुर में इसका खूब प्रयोग किया गया है । मदनपुर में बड़ी कचहरी की छत में चारों ओर व बाहय भित्ति पर , चम्पो मठ के मुख्य द्वार के चरण पीठ पर तथा बानपुर में स्तम्भों के ऊपरी भाग में घटपल्लव के नीचे कीर्ति मुख बनाये गये हैं , जो बहुत सुन्दर व कल्पना मिश्रित हुए है जिनमें मुख से घंटावली व श्रृंखलाओं झूलती हुई अंकित हैं ।

कीचक का प्रयोग भी सज्जात्मक तत्व के रूप में किया गया है इसका आलेखन ऐसे मनुष्य की आकृति में होता है जो स्तम्भ शीर्ष पर बैठकर अपनी पीठ पर समूची छत का भार वहन कर रहे है । मदनपुर में दोनों ही कचहरियों के खम्भों पर इसका प्रयोग अत्यन्त सुन्दरता से किया गया है । जहां प्रत्येक खम्भे पर चारों ओर चार भार- वाही या कीचक बनाये गये हैं । यहां बड़ी कचहरी के पूर्वी द्वार पर गणेश मुखी कीचक का अंकन विशेष रूप से दर्शनीय है। [चित्र सं0 9] शार्दुल का अंकन बानपुर के सहस्त्रकूट जिनालय की शिखर की निचले भाग पर जहां देव कुलिकाए बनी हैं देवियों की कुलिकाओं के दोनों ओर हुआ है । इसमें पशु आकृति पर किसी अन्य पशु का मुख बना होता है यह बहुत बलिष्ठ बनाया जाता है । कुछ विद्वान

इसे वासनाओं का प्रतीक व कुछ इसे विशुद्ध आलंकारिक मानते हैं ।

घटपल्लवों का अंकन बानपुर में विशेष रूप से स्तम्भों पर दोनों ओर [ऊपर व नीचे] तथा प्रत्येक स्तम्भ के चारों ओर हुआ है । इसमें एक घट के मुख से सुन्दर पुष्प व पल्लव निकल कर दोनों ओर लटकते हुए तथा फैले हुए बनाये गये हैं ।

मूर्तियों को सुन्दर बनाने के लिए भी अंलकरणों का उपयोग किया गया है , जिसमें मुख्यतया: गहनों को शोभन का माध्यम बनाया गया है । यद्यपि जैन- कला में तीर्थंकरों की मूर्तियों पर श्री वत्स के अतिरिक्त कोई गहना नहीं होता । लेकिन अन्य देवी, देवताओं यक्ष, यक्षियों, दिक्पाल, क्षेत्रपाल, तथा ब्राह्मण-धर्म में तो सभी देवी देवताओं को गहनों से सजाने की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आयी है । इसमें सुन्दर कलात्मक मुकुट, गले में माला, नैकलेस, हाथों में कंकण व बाजूबंद, कमर में बहुत सुन्दर मेखला जिसमें लटकती हुई श्रृंखलाएं, पैरों में नुपूर व पायजेब, कानों में कुण्डल, आदि का प्रयोग मदनपुर व बानपुर में बहुत सुन्दर ढंग से किया गया है । तीर्थंकरों के अतिरिक्त कोई भी ऐसी मूर्ति प्राप्त नहीं है जिस पर गहनों से अलंकरण न किया गया हो ।

चन्देल कालीन कला में सज्जात्मक प्रतीकों का शिल्प कला में बहुत समृद्ध व कलात्मक प्रयोग है , किन्तु गुप्त काल की सज्जात्मक कला प्रतीकों से किसी भी दशा में श्रेष्ठ नहीं हैं।

दशावतार मन्दिर के प्रवेश द्वार पर जो इन सज्जाओं का अद्भुत मिश्रण मिलता है, उसमें मूर्तियों के साथ ऐसी एकात्मकता है जो ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वोत्कृष्ट कला एक रुचि के परिचायक है और किसी सर्वोच्च शिल्पकार द्वार शोभित की गयी हैं ।

—: मदनपुर - बानपुर में प्रयुक्त शोभन अभिप्राय :-

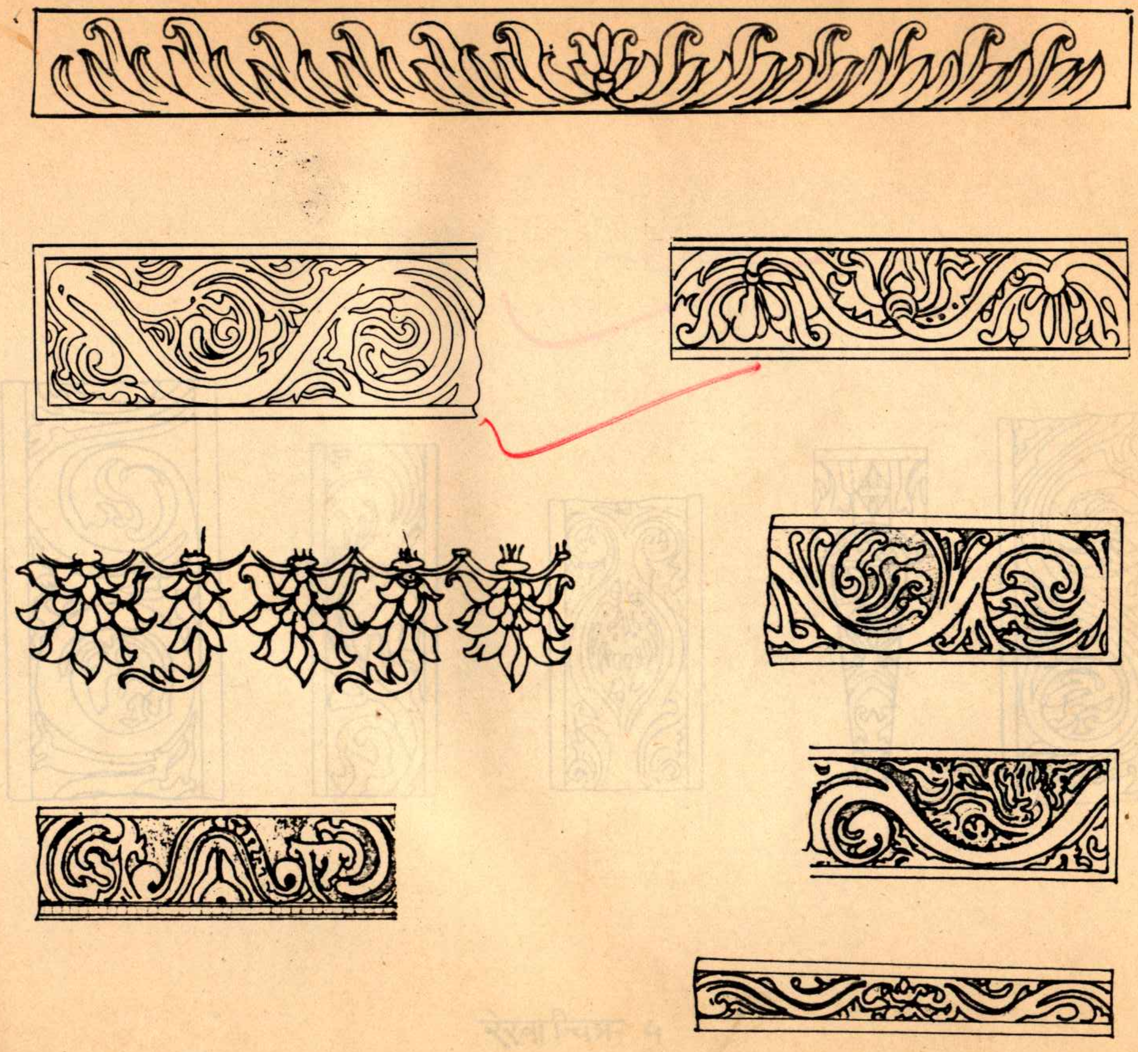

रेखाचित्र- 3

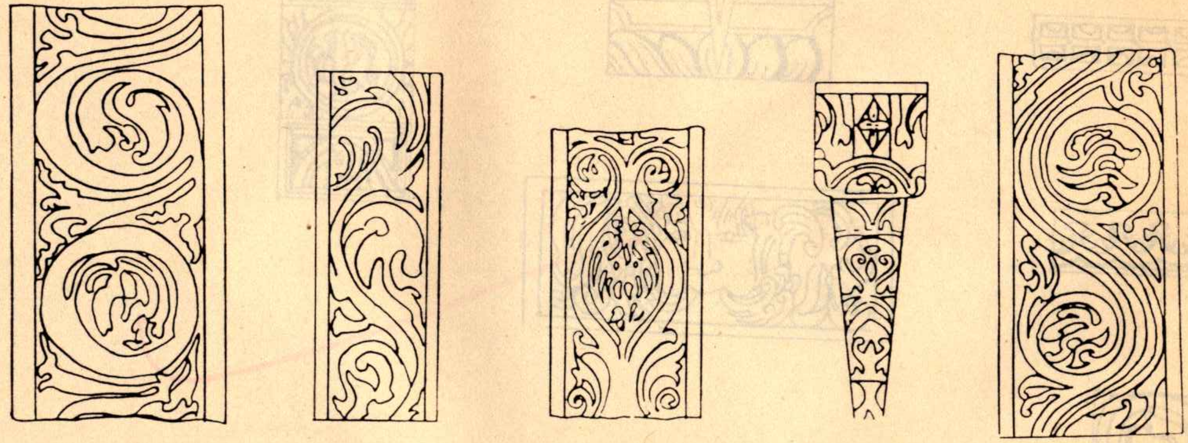

रेखाचित्र ५

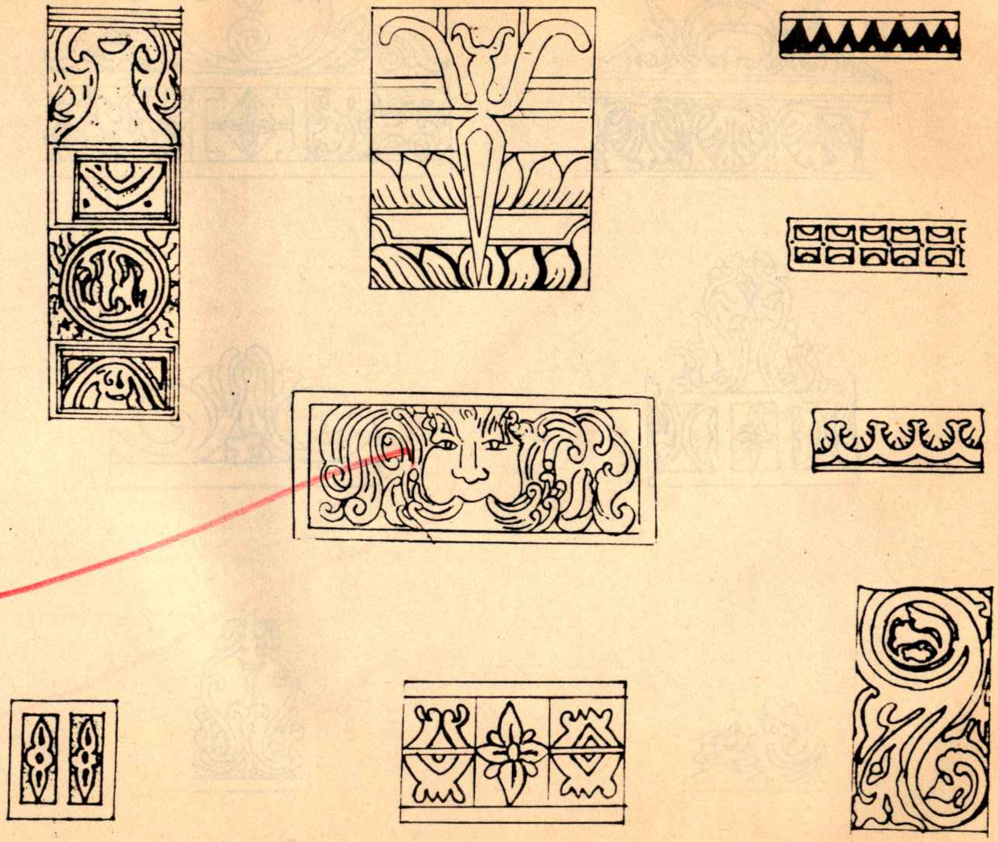

रेखा चित्र- 5

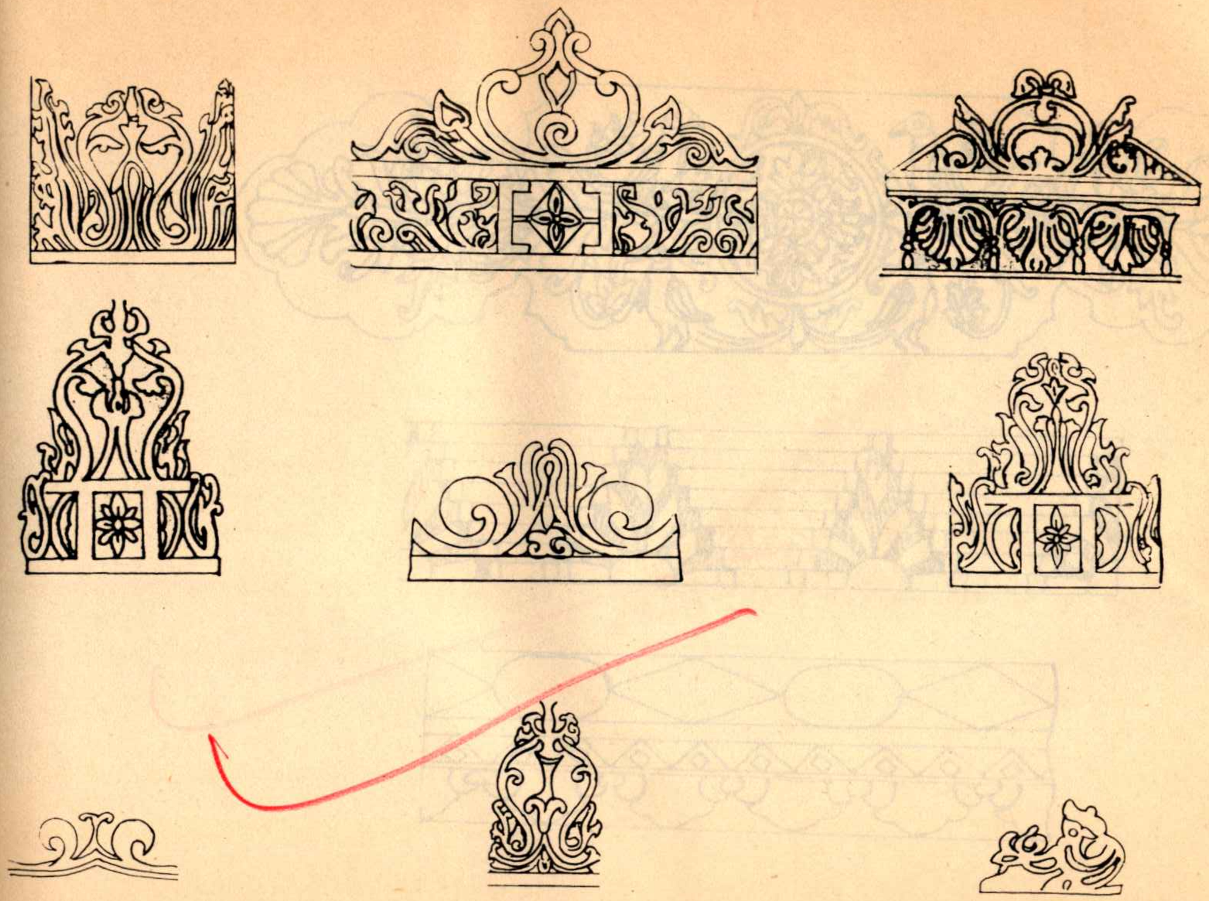

रेखाचित्र- 6

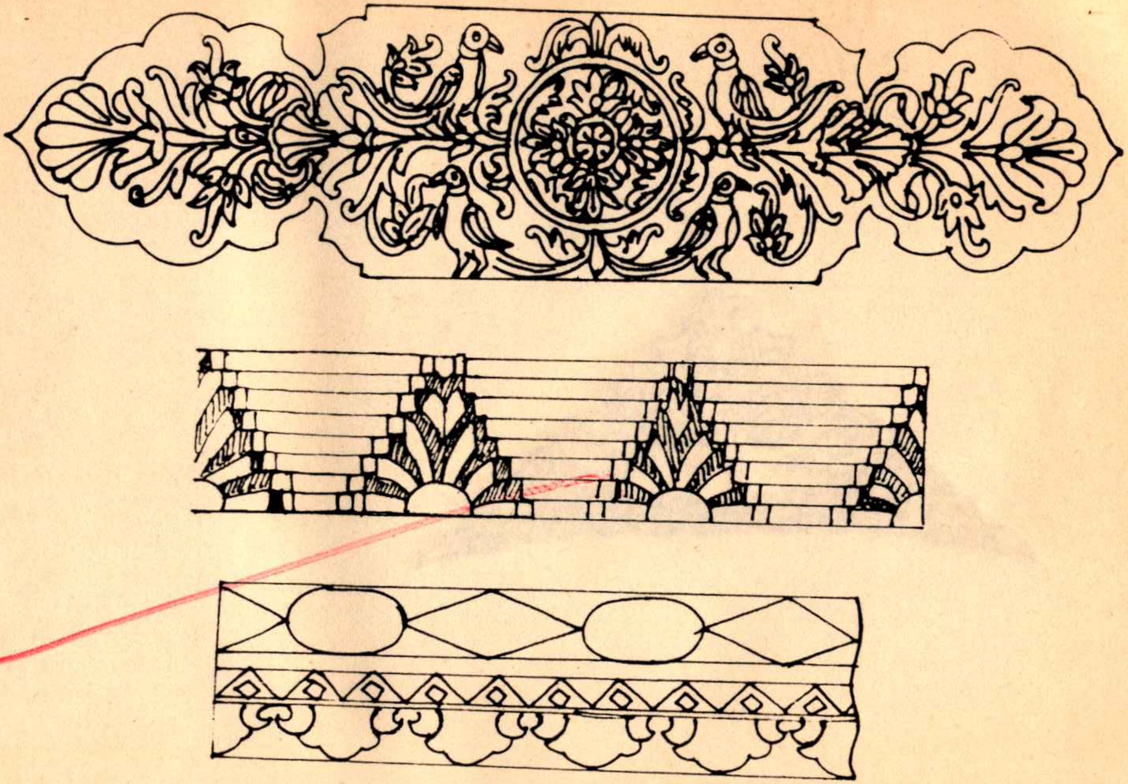

रेखा चित्र- 7

अध्याय-४

-: चित्रकला :-

भित्ति चित्र कला का इतिहास :-

चित्र कला का इतिहास उतना ही पुराना है जितना स्वतः मानव का । जब से मानव ने प्रकृति प्रांगण में आँखे खोली हैं तभी से अपने आस - पास की वस्तुओं को अंकित करने का प्रयास करता रहा है । यही कारण है कि भारत ही नहीं , संसार भर में गुहाओं की भित्तियों पर प्रागैतिहासिक काल के चित्र उपलब्ध होते हैं । चित्रण के इतिहास में उन चित्रों के निर्माण के लिए उसके पास सबसे पहला आधार उन गुफाओं या शैलाश्रयों की भित्तियां ही थीं , जिनमें वह रहता था । भारत में विन्ध्य पर्वत की निर्जन पहाड़ियों की गुहाओं में आदि मानव की कला चेतना के दर्शन होते हैं ।

भारतीय साहित्य में भित्ति - चित्रण के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं , जिससे प्रमाणित होता हैं कि पुराण काल में भी कथाओं के आधार पर चित्र बनाये जाते थे । स्कन्द पुराण में ऐसे स्थलों का वर्णन है, जहां भवनों में चित्रण किया हुआ था ।[1] विश्वकर्मा देवताओं की स्थापत्य कला के निर्माण हैं, उन्हीं के समान आयु व ऐश्वर्य वाले हैं और चित्रगुप्त जो यम के सेवक हैं और उनके लेखा रखने वाले इत्यादि के चित्र वे प्रारम्भिक चित्र हैं जो विकासोन्मुख कला के प्रतीक हैं ।[2] चित्र गुप्त का शाब्दिक अर्थ चित्र निर्माता, आलेख का शाब्दिक अर्थ किसी के जीवन को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करना हैं ।

1- श्री रामशंकर भट्टाचार्य - स्कन्द पुराण में वर्णित कतिपय कलाएं - सम्मेलन पत्रिका, पृ० 77

2- पी० सी० मुखर्जी - रि० रीट० इम० दा० डि स० ललितपुर - 1972 खण्ड - 1 पृ० 27

बाल्मिकी रामायण में उल्लेख हैं कि कैकेयी का राज प्रासाद चित्रगृहों से सुशोभित था तथा राम के राज प्रासाद में भित्तिचित्र उत्कीर्ण थे ।[1] लंका का तोरण बेलबूटों से सुसज्जित था "महाउम्मग जातक" में ऐसे विशाल भूमि - गृह का उल्लेख हैं, जिसमें निपुण चित्रकारों ने अनेक प्रकार के चित्र निर्मित किये थे । चित्रशाला की भित्ति पर अनेक रूचि भेद के चित्र बनाये जाते थे । बाण ने इन्हें दर्शित विश्व सा चित्र भित्ति कहा हैं ।[2]

कालिदास रघुवंश में ध्वस्त अयोध्यानगरी में " भित्तिचित्रों " या चित्रों से सजी भित्तियों का वर्णन करते हैं । विष्णु धर्मोत्तर पुराण का चित्रसूत्र, भोज रचित समरांगण सूत्रधार सोमेश्वर रचित मानसोल्लास , नग्न जित का चित्र लक्षण, यशोधर पंडित की " जय मंगला" कुमार द्वारा रचित शिल्परत्न आदि प्राचीन ग्रन्थों में भित्तिचित्रों का प्रचुर मात्रा में तकनीकी ज्ञान उपलब्ध हैं । हेमचन्द्राचार्य के " त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित " में राजभवन की भित्तियों पर चित्रों का उल्लेख हैं ।

प्रागैतिहासिक काल के चित्रों के पश्चात् भारतीय कला के प्राचीनतम चित्रों के प्राप्त उदाहरण जोगीमारा { लगभग तीसरी या दूसरी शताब्दी ई0 पू0 } के हैं किन्तु वे इतनी बुरी अवस्था में हैं कि उनके मूल रूप का पता नहीं चल सकता । ई0 सन् तथा उसके बाद से चित्रों की संख्या बढ़ने लगती हैं,

---

1- डा० व्यास - रामायण कालीन कला - सिद्धान्त और साधन - पृ० - 82

2- डा० वासुदेव शरण अग्रवाल - संस्कृत साहित्य के चित्र कला सम्बन्धी शब्दावली - पृ० 95-98

जो गुप्त काल में अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँच जाती हैं । अजन्ता के भित्तिचित्र किसी भी प्राचीन सभ्यता की चित्रकला के प्राप्य महत्तम उदाहरणों में अन्यतम हैं । अजन्ता के अतिरिक्त गुप्तकालीन चित्रकला के अन्य उदाहरण बाघ व बादामी की गुफाओं में प्राप्त हैं । ये सभी चित्र गुफाओं की भित्तियों में बनाये गये हैं । यद्यपि आज ये चित्र अपने जीवन के अन्तिम साँस गिन रहे हैं पर भारतीय चित्रकला की उत्कृष्टता घोषित करने के लिए पर्याप्त हैं ।

आठवीं नवीं शताब्दी में अजन्ता की चित्रकला के कुछ गुण सुरक्षित रूप से दक्षिणी भारत में जैन चित्रकला से ओत- प्रोत सित्तनवासल की गुफा में देखे जा सकते हैं ।जहाँ छत के मध्य में एक कमल का फूल है तथा उसके दोनों ओर उड़ते हुए या हवा में तैरते हुए गन्धर्व बनाये गये हैं । यद्यपि यहाँ अजन्ता कला के कुछ आदर्श टिमटिमा रहे थे लेकिन चित्रकला की एक शैली भी यहाँ देखने को मिल रही थी जिसने अजन्ता में ही अन्तिम समय में अपना प्रभाव दिखाना ही शुरू कर दिया था, जिसमें रूप प्रतिमा के समान स्थिर नजर आने लगा था, अब कला में एक नई शैली का विकास हो रहा था जिसे कुछ विद्वान कला का ह्रास भी कहते हैं । अजन्ता के सबसे अन्तिम चित्रकार के तूलिका रख देने के पश्चात् भारत से भित्ति चित्र कला समाप्त होगयी यह कहना उचित नहीं होगा । क्योंकि सित्तनवासल व कुछ अन्य स्थानों पर हमें इसकेउदाहरण देखने को मिलते है तथा नवीं शताब्दी में ही भित्ति चित्रकला का पुर्नउत्थान"एलोरा"

के मन्दिर में देखने को मिलता है, जहाँ जैन गुफा, जो इन्द्र सभा कहलाती है, में छत में अजन्ता व सित्तनवासल के समान उड़ते हुए युगल दृष्टिगोचर होते हैं, जो जैन दर्शन के अनुसार अर्ध देवी शक्तियाँ हैं। कैलाश मन्दिर के स्तम्भों व छत में हम आठवीं से 12वीं शताब्दी तक के चित्र देख सकते हैं, जबकि गुजरात में 12वीं शताब्दी में जैन चित्र हस्तलिखित ग्रन्थों पर बनने लगे थे।[1]

उत्तर मध्य काल में भित्ति चित्र बहुत कम बने, इसके दो कारण मुख्यतः देखने में आते है। एक तो आक्रमणों के कारण भवनों को धराशाही करने की प्रवृति ने कलाकारों को भित्ति चित्रण से विमुख किया तथा दूसरे चित्रकारों को ताड़पत्र जैसा सरल आधार मिल गया था। सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में राजस्थानी तथा गुजराती भित्ति चित्रण के उदाहरण प्रायः उलब्ध होते हैं।[2]

यद्यपि एक संदर्भ के अनुसार जलालुद्दीन खिलजी (1290-96 ए0डी0) ने "झैन" राजस्थान के किले में भित्ति चित्र देखे थे, जो उसके द्वारा नष्ट कर दिये गये थे।

1- कार्ल खण्डालवाला - दा डवलेपमेंट आफ स्टाइल इन इण्डियन पेंटिंग - पृ05।

2-(1) कुमार स्वामी - राजपूत पेन्टिंग - पृ0 - 7

(2) रायकृष्ण दास - फारवर्ड - मारवाड़ म्यूरल्स - पृ0 -6

इसी प्रकार नालन्दा विश्वविद्यालय की भित्तियों के चित्रित होने के सन्दर्भ भी ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं । [1] तथा वहाँ हाल ही में हुई खुदाई में भवनों में चित्र प्राप्त हुए हैं ।

उत्तर भारत में इस काल में भित्ति चित्र मदनपुर (जिला ललितपुर) में छोटी कचहरी (विष्णु मंदिर) [2] की छत में प्राप्त होते हैं, जो चन्देल राजा मदन वर्मा (1130 से 1165 ए0डी0) [3] के समय के माने जाते हैं । ये चित्र अजन्ता व सित्तनवासल की भित्ति चित्र व गुजरात की ताड़ पत्रीय चित्रकला के बीच की कड़ी कहे जा सकते हैं । छत में अजन्ता व " एलोरा" के समान मध्य में बड़ा कमल है व दोनों ओर उड़ते हुए गन्धर्व बनाये गये हैं जो रूप की दृष्टि से एलोरा के जैन गुहा के चित्रों के बहुत निकट हैं, जो जैन चित्रकला से बहुत मिलते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन चित्रकला न केवल अपनी समृद्ध थाती के लिए, अपितु प्राचीनता के लिए भी प्रसिद्ध है । भारतीय चित्रकला की समस्त शैलियों में 15वीं शताब्दी ई0 पूर्व के जितने चित्र प्राप्त हैं उनमें मुख्य तथा प्राचीनता जैन चित्रों की है । प्राचीन महत्व के ये जैन चित्र दिगम्बर जैनियों से

1- जान इरविन ब्रासिल्टो - दा आर्ट आफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान - पृ0 87

2-(1) मुल्कराज आनन्द - एलबम आफ इण्डियन पेन्टिंग - पृ0 53

(2) पी0सी0 मुखर्जी - रि0आ0दा एन्टी0 आ0डी0आफ ललितपुर - पृ027

3- -वहीं- -वही- - पृ027

सम्बद्ध हैं, जिन्होंने अपने सम्प्रदाय सम्बन्धि ग्रन्थों को चित्रित करवाने में बड़ी रुचि ली थी । ऐतिहासिक विकास क्रम की दृष्टि से 10वीं शताब्दी ई0 से लेकर 15वीं शताब्दी ई0 तक चित्रकला परम्परा को जीवित बनाये रखने के लिए जैन कलाकारों का सर्वाधिक योगदान रहा ।

अपभ्रंश शैली ﴾ जैन शैली ﴿ के चित्रों के साथ विकसित होने वाली राजस्थानी शैली ने भित्ति चित्रण के लिए पुनः नये आयाम खोल दिये और राजमहलों, मन्दिरों, हवेलियों, छतरियों की भित्तियों पर ही चित्रण गौरत्व का चिन्ह माना जाने लगा । प्रायः समस्त राजस्थान व बुन्देलखंड में कारीगर जयपुर आदि से भित्ति तैयार करने जाया करते थे, तथा वहाँ के स्थानीय कलाकारों के सहयोग से चित्र निर्माण करते थे, जिससे क्षेत्रीय लोकतत्व और चित्रकार की व्यक्तिगत योग्यता का अन्तर हमें समस्त बुन्देलखंड में देखने को मिल जाता हैं । 16वीं व 17वीं शताब्दी के भित्तिचित्र दतिया, तालबेहट आदि के महलों व मंदिर में प्राप्त हैं । जहाँ हमें स्थानीय भित्ति चित्रों में मुगल शैली का प्रभाव भी दिखाई देता है । परिवेश और आकृतियों के नैसर्गिक छायांकन में बुन्देलखंड - काल की चित्रकला मूलतया चन्देलों से विकसित हुई है । बुन्देलों के प्रारम्भिक चित्र फूलबाग और शीशमहल ओरछा और दतिया में वीर सिंह जूदेव के महल में पाये जाते हैं ।

उत्तर - बुन्देल काल के चित्र हमें बानपुर के महल व मन्दिर और ओरछा के लक्ष्मी मंदिर में देखे जा सकते हैं, जो आज से 150 से 200 वर्ष पुराने हैं । बानपुर का किला 1857 में ह्यूरोज द्वारा नष्ट कर दिया गया था । उसके साथ वहाँ की चतौरी ﴾ चित्रशाला ﴿ भी गिर गयी, जिसके चित्रों के अवशेष मात्र ही अब देखने को

राजनीतिक इतिहास के अनुसार छठीं शताब्दी के आरम्भ से विध्योत्तर भारत का ह्रासयुग आरम्भ हो जाता है । संस्कृति के सभी अंगों में ओजस्विता का अभाव हो जाता है अतः चित्रकला भी दुरावस्था की ओर लुढ़क चली थी । भित्ति चित्रों का जमाना सम्भवतः पूर्व मध्यकाल के साथ बीत चुका था । वेरूल में बने भित्तिचित्रों के अतिरिक्त इस काल के और कोई विशिष्ट उदाहरण नहीं मिलते हैं । अपने यहाँ छोटे चित्रों का विधान भी सर्वथा भित्ति चित्रों पर अवलम्बित है , किन्तु भित्तिचित्रों के उत्कर्ष और प्रमुखता का युग पूर्व मध्यकाल तक ही मानना पड़ेगा ।[1]

10 वीं शताब्दी के एवं परवर्ती काल के पुस्तक चित्र ही मुख्यता प्राप्त हैं । शैली के अनुसार इनके दो भेद हैं । ये पोथियाँ बढ़िया ताड़ पत्र (राजताल) पर लिखी जाती थी । इन पर बुद्ध की जीवनी व जातक कथाओं के दृश्य रहते थे । जिनमें रंग लाल, नीला, सफेद, काला आदि प्रयोग होते थे । इन चित्रों में अजन्ता की परम्परा स्पष्ट रूप से दिखती है । वहीं स्निग्ध मांसल आकृतियाँ, वहीं चारु भंगीमाएँ और प्रवाह मान रेखाएँ, पृष्ठिका में सुन्दर थोड़े वृक्ष, रंग-विधान आकर्षक, इनमें भित्ति चित्रों की सभी विशेषताएँ हैं । चूंकि इन सभी चित्रित ग्रन्थों में पाल संवत् व पाल राजाओं का उल्लेख मिलता है, जिनका साम्राज्य पूर्वी भारत में था , अतः इस शैली को पाल शैली कहा गया । यद्यपि इस शैली में अजन्ता की परम्परा विशेषताएँ सजीव रूप से पाई जाती हैं, फिर भी ह्रास की विशेषताएँ भी दीख पड़ती हैं । ध्यानों का निश्चित रूप, अंगों, मुद्राओं में अकड़, लम्बी नाक, सवाचश्म चेहरों की अधिकता।

यह अतिरिक्त लम्बी नाक व परली आँख तथा कथित जैन शैली के चित्रों की भाँति चेहरे की सीमा के बाहर निकली हुई नहीं होती , फिर भी पाल शैली के सवा चश्म चेहरे उक्त आलेखनों में बहुत मिलते हैं । इस प्रकार बौद्ध चित्रकला भित्तियों से पालशैली के ताड़पत्रीय ग्रन्थों पर उतर आयी ।

अपभ्रंश शैली :-

दक्षिण भारत के मन्दिरों में बने भित्तिचित्रों से यह स्पष्ट होता है कि पूर्व मध्य काल में ही चित्रण शैली में विकार के थोड़े - थोड़े चिन्ह प्रकट होने लगे थे । गुजरात में चित्रण परम्परा में यह विकार बहुत अधिक दृष्टिगत होने लगा । मुसलमानों के आक्रमण के बाद भी गुजरात में व्यापार वाणिज्य जैन सम्प्रदाय के हाथों में रहा अतः जैनों ने सुरक्षा की दृष्टि से चित्रितग्रन्थ बनवाने प्रारम्भ कर दिये । इस कारण से जैन उपाश्रयों, मन्दिरों व ज्ञान भण्डारों में सचित्र ग्रन्थों को भेंट करने की परिपाटी में वृद्धि हो गयी । मुसलमानों के आक्रमणों से त्रस्त बौद्ध चित्रकार पूर्वी भारत में चले गये, अतः अच्छे चित्रकारों का अभाव व चित्रकारों की अधिक माँगों के कारण शैली में गिरावट आ गयी, फिर भी जैन मन्दिर बने, उनमें मूर्तियाँ बनी, उनमें अतिभंग, कोणीय तराश, वक्षस्थलों का अत्यधिक कन्दुक सदृश उभार, नाक लम्बी व नुकीली व आँखें लम्बी कोरी गयीं । जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाओं में शीशे व चाँदी से बनी हुई आँखें उपर से जड़ी जाती थीं । मूर्तिकला का यह अतिशय वाला रूप, अपरिपक्व

चितेरे ने ताड़पत्र जैसे छोटे व औलेख्य स्थान में नुकीले निब की सहायता से काली रेखाओं में धर्म-पृष्ण जनता के लिए बनायें ग्रन्थों की सज्जा हेतु उतारना आरम्भ कर दिया । उनके द्वारा बनाये गये चित्रों में ऊँचा ललाट, आँखें चश्मों के फ्रेम के सदृश्य, परली आँख का पूर्ण चित्रण, पतला दुबला शरीर, भावों काअभाव, हस्तमुद्राएँ कमजोर, वृक्ष व पशुओं का सांकेतिक अंकन जैसी विशेषता एँ उभर कर आयीं । ‖ अस गिरावट के चिन्ह ऐलोरा, सित्तनवासल व तिरुमलाई के चित्रों में प्रकट होने लगे । उत्तर प्रदेश में ललितपुर में मेहरोनी तहसील से 50 कि0मी0 दूर मदनपुर की आल्हा - उदल की बैठक‖विष्णु मंदिर ‖ में 12वीं शती के अंतिम दशाक के चित्र अपभ्रंश शैली [2] में मिलते हैं । इस शैली का नामकरण पहले जैन शैली दिया गया । इसका कारण यह था कि उस समय तक इस शैली के चित्रों का परिचय केवल जैन पोथियों में मिलता था । कम से कम हमारे देश में कला का भी सम्प्रदाय - परक नहीं रही है । शुंग, कुषाण व गुप्त एवं मध्यकाल की मूर्ति , वास्तु व चित्रकला में कोई भी संप्रदाय परक विभेद नहीं पाया गया। यह अलग बात है कि उन संप्रदाय विशेष की विशेषताओं के कारण उनकी आकृतियों में एकाध निजस्व हो, किन्तु उनका व्यापक रूप एक हैं ।

1- आनन्द कृष्ण - दा मालवा पेन्टिंग - पृ0-3

2- - वही - -वही- -वही -

यही सिद्धान्त तथा- कथित जैन कला के विषय में भी लागू होता है । सित्तनवासल के जैन चित्र अजंता व बाघ के चित्रों से बिल्कुल भिन्न नहीं हैं । यह बात अवश्य है कि उक्त हजार, आठ सौ वर्ष तक जैन सम्प्रदाय का प्रभाव देश के एक बहुत बड़े हिस्से पर व्याप्त था । फलतः इस काल के अधिकांश चित्र ग्रन्थ जैन सम्प्रदाय के ही हैं । इसका कारण यह रहा कि जैन धर्म व धार्मिकता में सदैव अदितीय रहे । इन चित्रों में ह्रास का एक कारण यह भी रहा कि उन चित्रित ग्रन्थों की माग अधिक होने लगी । अतः कार्य जल्दी प्रस्तुत किया जाने लगा , किन्तु उक्त प्रभाव का यह तात्पर्य नहीं कि एक अलग जैन शैली रही हो । चित्रकला पर जैन प्रभाव केवल इस रूप में पड़ा कि व्रत- तपस्या वाले इस मत में प्रयुक्त होने के कारण अनेक शतियों तक इस चित्रकला का रूप बहुत कुछ निगृहीत रहा ।

जैन शैली का समर्थन कुछ विद्वान यह मानकर भी करते थे कि ये चित्र जैन साधुओं ने बनाये, लेकिन ऐसा मानने की गुंजाइश नहीं पायी जाती । ये चित्र शुद्ध चित्रकारों ने भी बनाये हैं । इस शैली के उत्साही खोजी " श्री सारा भाई नवाब को" 15वीं शती के दो चित्रकारों के नाम भी मिले हैं । (भारतीय विद्या 1945) जिनसे यह स्पष्ट होता है कि ये चित्रकार जैन नहीं थे । जैन ग्रन्थों के अतिरिक्त कितने ही चित्रित अ जैन ग्रन्थ भी मिले हैं । जिनमें (बाल गोपाल स्तुति , गीत गोविन्द, दुर्गासप्तसती, रति रहस्य) इस शैली के दर्शन होते हैं । कला के इस ह्रास का मुख्य केन्द्र गुजरात था, लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि यह वहाँ की शैली " गुजरात शैली " थी । गुजरात उस समय जैन सम्प्रदाय का

मुख्य केन्द्र था । इन चित्रों का आलेखन कोई नया उत्थान नहीं था । प्राचीन शैली की विकृति मात्र हैं, जो अपभ्रंश " ही एक ऐसा शब्द है जिसके द्वारा उन विकृतियों की समुचित अभिधा ही नहीं, व्यंजना भी हो सकती है ।[1]

गिरावट वाले चिन्ह किसी एक क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि प्रायः सम्पूर्ण भारत के चित्र सृजन में थे । यथार्थ में यह समय राजनैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास का था । यही अधःपतन साहित्य के क्षेत्र में भी था । साहित्य गिरावट के लिए अपभ्रंश शब्द का व्यवहार प्रायः सभी विद्वान स्वीकार कर चुके थे । अतः प्रसिद्ध साहित्य सेवी व कला मनीषी रामकृष्ण दास ने इस गिरावट वाली शैली का नाम " अपभ्रंश शैली " रख दिया , जिसमें प्रान्तीय व सम्प्रदाय वाली गंध नहीं थी । अपभ्रंश वाले नाम को प्रायः सभी विद्वान स्वीकार करने लगे हैं ।[2]

इस शैली का एक सुन्दर उदाहरण मदनपुर के विष्णु मन्दिर में देखने को मिलता हैं । जहाँ चन्देलकालीन विष्णु मंदिर में तथा-कथित जैन शैली के चित्र हैं ।[3] यदि यह शैली मात्र जैन शैली

1- रायकृष्ण दास - भारत की चित्रकला - पृ0-40

2- डा0 आर0ए0 अग्रवाल -कला विलास - तृतीय संस्करण , पृ0-70

3- पी0सी0 मुखर्जी - रिपोर्ट आन दा अन्टि आफ डिस्ट्रिक्ट ललितपुर, पृ0-

होती तो इसके चित्र ब्राहमण सम्प्रदाय के इस मंदिर में क्यों बनते । वास्तव में यह एक तत्कालीन शैली बन गयी थी, जिसमें इस काल का प्रत्येक चित्रकार कार्यरत था । वह न जैन था न ब्राहमण न बौद्ध वह मात्र चित्रकार था तथा चित्रण करना उसका कार्य था । वह कार्य चाहे जैन पोथियों में हो अथवा मदनपुर का विष्णु मंदिर ।

अपभ्रंश ‖ जैन चित्रकला ‖ का रचना विधान:-

शैली एवं संरचना की दृष्टि से जैन चित्रकला का अपनापृथक महत्व है । उसका चक्षु-चित्रण उसकी विशिष्टता का द्योतक है, जो कि प्रत्येक दर्शक को सहज ही में आकर्षित कर लेता है । जैन चित्रकला का यह चक्षु- चित्रण वस्तुतः जैन मूर्तिशिल्प का रिक्थ है, जिसे कि विशेष रूप से जैन प्रतिमाओं में देखा जा सकता है । उसका प्रभाव राजपूत तथा मुगल शैलियों पर भी परिलक्षित हुआ । रंगों एवं रेखाओं के संयोजन में जैन कलाकारों की सजगता प्रशंसनीय है । ताड़पत्रों पर अंकित-चित्रों में प्रधानता पीले रंग का प्रयोग किया गया है । यद्यपि स्वर्ण रंग को भी संयोजित किया गया है । मदनपुर के भित्ति चित्र में भी पीले रंग की प्रधानता स्पष्ट परिलक्षित होती है । कागज चित्रों की पृष्ठभूमि पीले तथा लाल रंग की हैं और वस्त्र चित्रों पर उनके छोटे- छोटे चिन्ह अंकित कर दिये गये हैं । मदनपुर के चित्रकार ने भी उसी परम्परा के वशीभूत होकर ‖ क्योंकि जिस समय मदनपुर के चित्र बने, चित्रकार ताड़पत्र आदि पर चित्र बनाने लगा था ‖ पृष्ठ भूमि पीले रंग से ही बनाई हैं ।

जैन चित्रकला में धोतियों की सज्जा अत्यन्त आकर्षक है । आरम्भिक चित्रों में जैन साधुओं के वस्त्रों को मोती जैसा श्वेत या स्वर्णिम रंग में दिखलाया गया है । पुरुषों के वस्त्रों में धोती, दुपट्टा और कटिपट प्रमुख हैं । इसी प्रकार स्त्रियों के चित्रों में चोली, चुन्नर, रंगीन धोती ओर कटिपट्ट का प्रयोग किया गया है । आभूषणों में मालाओं तथा मुकुटों की प्रधानता है । स्त्रियाँ माथे पर टिकुली, कानों में कुण्डल और बाहों में बाजूबन्द पहिने हैं । प्रायः सभी जैन चित्र लम्बी रत्न मालाओं से अलंकृत हैं ।

जैन चित्रों की आकृति एक चश्म, डेढ़ चश्म या दो चश्म है । एक चश्म या डेढ़ चश्म वाले चित्रों में ठोड़ी सेव की तरह बाहर की ओर उभरी हुई है और उसके नीचे की रेखा में गौरव, गर्व तथा स्वाभिमान को प्रकट करने के उद्देश्य से झोल दे दिया गया है । दो चश्म आकार के खड़े हुए जैन मुनियों की ठोढ़ी पर त्रिशूल की भांति तीन रेखाएँ अंकित हैं । भावों तथा नयनों का फैलाव समान है । एक चश्म व डेढ़ चश्म चेहरों में नासिका - शुक - चंचु की भाँति नुकीली है और अनुपात में अधिक लम्बी है । नेत्र उठे हुए तथा बाहर की ओर उभरे हुए है । उनकी लम्बाई कर्ण प्रदेश को स्पर्श करती है । नेत्रों तथा नासिका के अंकन में जैन चित्रकारों की विशेष कुशलता देखने को मिलती हैं ।

जैन चित्रकला तथा हिन्दू चित्रकला का विशेष रूप से राजपूत चित्रकला के साथ सम्बन्ध था । गुजरात की श्वेताम्बर कलम से जैन चित्रकला की उत्पत्ति हुई थी । राजपूताना तथा मध्य भारत में सर्वांगीण विकास प्राप्त करने के पश्चात् कालान्तर में वह राजपूत कलम में समा गयी । जैन कलाकार राजपूत कलम की और लगभग 15वीं शती से ही आकर्षित होने लग गये और बाद में मुगल चित्रकला के ईरानी शिल्प के बढ़ते हुए प्रभाव से वह भी अछूती न रह सकी । फलतः राजपूत चित्रकला की बढ़ती हुई समृद्धि में जैन चित्रकला की परिणति हो गयी । इस क्रम में जैन चित्रकला, राजपूत चित्रकला के साथ निरन्तर सम्पर्क स्थापित करती गयी। किन्तु कुछ बातों में दोनों में भिन्नता बनी रही । हिन्दू -राजपूत कला जब स्थूल मांसलता की ओर अग्रसर हुई और उसमें रागरागिनी, नखशिख तथा बारहमास आदि विषयक चित्रों का अम्बार लगने लगा, तब भी जैन कला अपनी परम्परागत धार्मिकता में अडिग बनी रही । अंत में जैन चित्रकला ने अपना उत्तराधिकार राजपूत कलम को सौंपकर इतिहास में अपनी गौरवशाली परम्परा को सुरक्षित कर दिया ।

चित्रित छत मदनपुर

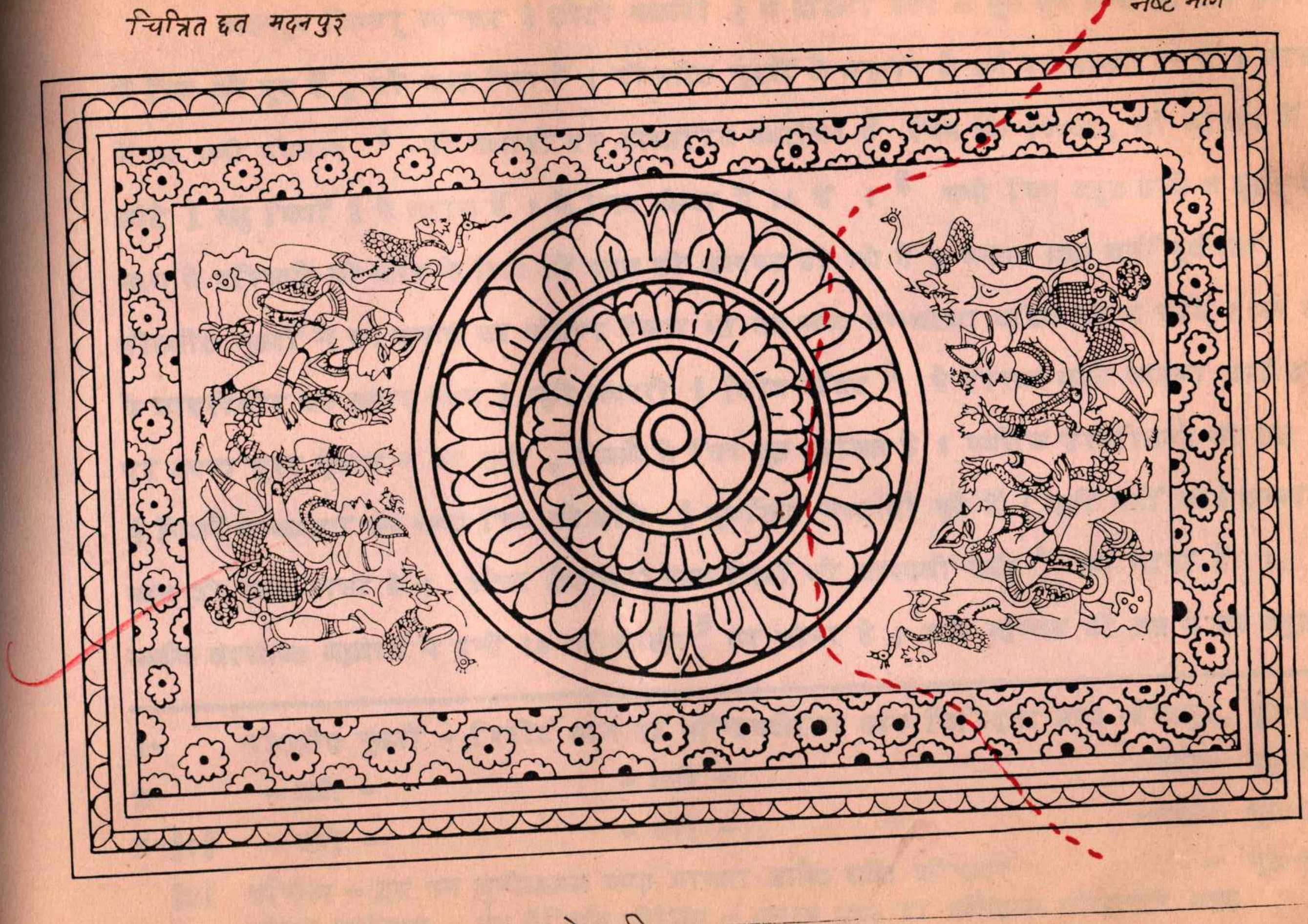

रेखाचित्र- ४

मदनपुर विष्णु मन्दिर ॥ छोटी कचहरी ॥ के दक्षिण और के खुले हुए छज्जे की छत ॥सीलिंग॥ में चित्र बने हुए हैं, जो कथा चित्र हैं। पी०सी० मुखर्जी के अनुसार वे धर्म पर आधारित हैं। वास्तव में यह सभी पंचतन्त्र [1] की कथाओं पर आधारित कथाचित्र हैं चित्र सं० 19-20, जो आकार में छोटे ॥ लघु चित्रों ॥ के समान हैं। ये चित्र संख्या में 14 हैं। [2] सभी चित्र बहुत हल्के व धुंधले हैं। मध्य से पश्चिमी की ओर के चित्र तो बहुत ही अस्पष्ट हो गये हैं। लगभग 100 वर्षों पूर्व जब पी०सी० मुखर्जी ने इस जनपद का सर्वेक्षण किया था उस समय सम्भवतया अधिक स्पष्ट होंगे। इस छज्जे के बाहरीओर एक दूसरा भवन ॥ बड़ी कचहरी ॥ शिव मंदिर [3] है शायद उसके कारण वर्षा उन पर अपना पूरा प्रहार न कर सकी, जिससे ये चित्र कुछ सुरक्षित है। क्योंकि उत्तरीछज्जे की छत ॥ जिसमें सम्भवतया उस समय चित्र बने होंगे ॥ पूर्णतया नष्ट हो चुके हैं। कहीं कहीं कोई धब्बा मात्र ही नजर आता है। स्टैला क्रैमरिश नेइन चित्रों को बारहवीं सदी [4] का माना हैं। जबकि आर०ए० अग्रवाल ने इन्हें 14 वीं शती [5] का माना है। इसी मन्दिर की छत में एक बहुत

1- पी०सी० मुखर्जी - रिपोर्ट आन दा एन्टिक्वीटिज आफ डिस्ट्रिक्ट आफ ललितपुर, पृ०-27

2- - वही - - वही - -वही- पृ०-27

3-॥1॥ - वही - - वही - -वही- पृ०-27

॥2॥ कनिंघम - टूर्स इन बुन्देलखण्ड एण्ड मालवा आर्के० सर्वे० इन्डिया - पृ०-99

4- स्टैला क्रमरिश - दा पेन्टिड सीलिंग - जनरल आफ दा इण्डियन सोसाइटी आफ ओरियन्टल आर्ट-खण्ड-7-8-175

5- डा० आर० ए० अग्रवाल - कला विलास, पृ०- 69

बड़ा चित्र है , जो कि पूर्वी ओर से लगभग आधा समाप्त हो गया है तथा पश्चिमी ओर तत्कालीन चित्र कला के इतिहास की कहानी स्वयं कहता है । यह चित्र मन्दिर की छत ‖ सीलिंग ‖ को सजाने के उद्देश्य से बनाया गया होगा । इसके मध्य में बहुत बड़ा पूर्ण विकसित कमल व दो गंधर्व हाथों में माला लिए हुए बनाये गये हैं । चित्र संख्या - 18 ।

छत की सज्जा के लिए बनाये गये मुख्य चित्र में मध्य में एक बहुत बड़ा कमल चित्रित किया गया है । जो पूर्ण विकसित बनाया गया है । कमल के पूर्ण विकसित रूप को तीन गोलों में एक साथ अर्थात पंक्तियों के तीन क्रम में अलंकृत रूप में दर्शित किया गया है । कमल के अन्तिम बाह्य पंक्ति में गहरे रंग से एक अन्य अलंकरण किया गया है । इस कमल पुष्प के दोनों ओर दो - दो गन्धर्व बनाये गये हैं , जिनमें से पश्चिमी दिशा की दोनों आकृतियां पूर्णतया स्पष्ट देखी जा सकती हैं । ये कोणीय उड़ती हुई व हाथों में माला लिए हुए हैं , जो मध्यकालीन जैन ताड चित्र शैली के समान शरीर से चिपके हुए वस्त्रों से सुशोभित हैं । उनकी नाक नुकीली व लम्बी हैं । परली आँख गाल के पार निकली हुए परवल के समान है । जैसी की मध्यकालीन अपभ्रंश या जैन कला में चित्रित की जाती थी । दोनों ओर मोर व अन्य पुष्पों का अलंकरण किया गया है । दोनों आकृतियों के शीश पर मुकुट है । ये लम्बी अलंकृत मालाएं पहने हुए हैं । हाथों में अलंकरण व बाजू

बन्द व पैरों में पायजेब आदि सुशोभित हो रही हैं । वस्त्र बहुत अलंकृत बनाये गये हैं । दाहिने ओर की आकृति के शरीर में कत्थई रंग भरा गया है , जबकि बाये ओर की आकृति के शरीर का रंग पृष्ठ भूमि के रंग से ही मिलता हुआ है । गहरे रंग से इनका रेखांकन किया गया है । छत का बाहरी वार्डर गोलों व अर्धगोलों के अलंकरण से अंलकृत किया गया है ।

1- पंचतन्त्र संसार प्रसिद्ध पुस्तक है । यह पुस्तक संस्कृत भाषा में लिखी गयी थी जो अब अप्राप्त है । लेकिन इस ग्रन्थ की कथाएं इतनी प्रसिद्ध हुई है कि संसार की बहुत सी भाषाओं में इसका प्रकाशन हुआ है । समय - समय इसमें अनेक कथाएं जुड़ती व बदलती रही है । इस मूल गन्थ के लेखक पं० - विष्णु शर्मा नीतिशास्त्र के निपुण विद्वान व्यक्ति रहे है । यह ग्रन्थ पांच तन्त्र (भागों) में बांटा हुआ है । ये पांच भाग नीतिशास्त्र के पांच प्रकरण है, जो इस प्रकार है , मित्रभेद, मित्रसंप्राप्ति , काकोलूकीय, लब्धप्रणाश, अपरीक्षित कारक । अधिकतर कथाओं के नायक विभिन्न जानवर है । सभी कथाएं किसी कथ्य से शुरु होकर तथ्य पर खत्म होती हैं।

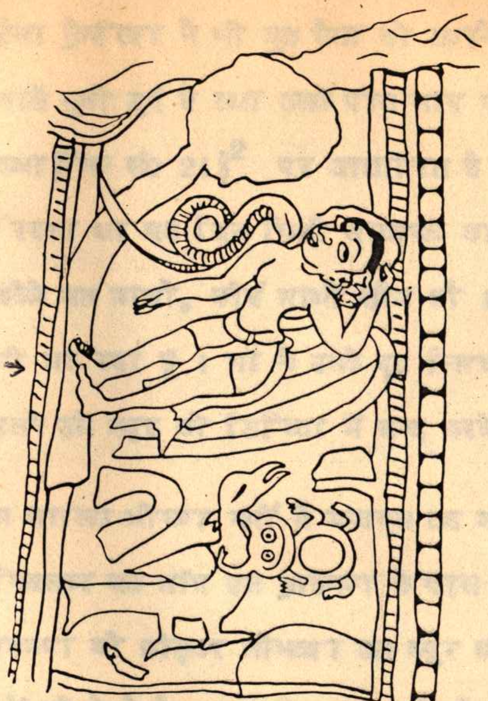

कथा चित्रों में प्रथम कथा चित्र दो भागों में हैं । ऊपर वाले कथा चित्र में एक व्यक्ति लेटा हुआ है तथा उसके पास एक नाग मरा हुआ पड़ा है । पी0सी0 मुखर्जी ने इसे एक आदमी लेटा हुआ है तथा इसे सांप ने काट खाया है, लिखा हैं । [1] जो गलत है , क्योंकि यह पंचतन्त्र की किसी भी कथा

1- पी0सी0 मुखर्जी -दा रिपोर्ट आफ एन्टिक्वीटीज आफ डिस्ट्रीक्ट आफ ललितपुर, पृ0-27

से साम्य नहीं रखता है । स्टेला क्रैमरिश ने भी कुछ ऐसा ही वर्णन किया है। [1] वास्तव में यह व्यक्ति सोकर उठा है । जिसकी आँखे खुली हुई है तथा उसके पास साँप मरा हुआ पड़ा है । पंचतन्त्र की कथा [ब्राह्मण कर्कटक - कथा [चित्र सं0 21] [2] पर आधारित है । जिसके अनुसार " किसी नगर में एक ब्रह्मदत्त नामक ब्राह्मण रहता था एक दिन किसी आवश्यक कार्य से जब वह बाहर जाने लगा तो उसकी माता ने कहा - बेटे अकेले मत जाओ, कोई साथी खोज लो । उसने उत्तर दिया आप भयभीत नहीं, कुछ कार्य वश मैं एकाकी जा रहा हूँ । माँ ने उसके दृढ निश्चय को समझकर बावड़ी से एक केकड़ा लाकर बेटे को दे दिया । उसने उसे कपूर की डिब्बिया में बन्द करके रख लिया और चल दिया ।

कुछ दूर जाकर ग्रीष्म कालिक भीषण गर्मी से व्याकुल वह मध्य रास्ते में वृक्ष के नीचे सो गया । इसी बीच वृक्ष की कोटर से निकलकर एक साँप उस ब्राह्मण के पास आया । कपूर की सुगन्ध से स्वाभाविक रुचि के कारण सर्प ने उस ब्राह्मण को छोड़कर लोभवश उस कपूर की डिबिया को निगलने का प्रयास किया । कपूर की डिबिया में रखे केकड़े ने बाहर निकलकर सर्प को मार डाला । जब ब्राह्मण की नींद खुली तो उसने अपने पास मरा हुआ सर्प पड़ा देखा , उस सर्प को देखकर सोचने लगा इसे केकड़े ने ही माराहै ।

1- स्टेला क्रमरिश - दा पेन्टिड सीलिंग - जे0आई0एस0ओ0ए0 -खण्ड- 7, पृ0-178

2- पंचतन्त्र - अपरीक्षित कारके - वही- कथा 13 - वही - पृ0 97

इसी कथा पर आधारित प्रथम चित्र का कथानक हैं । इस चित्र में एक व्यक्ति लेटा हुआ है । जिसकी कमर में एक अधोवस्त्र है । शेष शरीर नग्न है अतः यह ब्राहमण ही हो सकता है, कोई धनिक नहीं। उसके पास ऊपर की ओर एक सर्प मरा हुआ पड़ा है ।

पीछे की ओर एक वृक्ष का चित्रण किया गया है चित्र के पृष्ठ भाग में हल्का, पीला रंग लगाया गया है । मनुष्य , कपड़ा, सर्प व पेड़ का तना पीले (यलो आकर) रंग से बना है जिसमें काले रंग से रेखांकन किया गया है । सर्प के ऊपरी भाग में कुछ कत्थई रंग का आभासहोता है तथा पेड़ की पत्तियों पर हरे रंग का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । आदमी की नाक नुकीली व लम्बी, परली आँख चेहरे से बाहर की ओर पूरी बनी हुई है । चेहरे पर हल्की दाढ़ी का अंकन है । वक्ष कोणीय उभार दार है । कमर अधिक पतली , हाथ - पैरो का अंकन समानुपातिक है ।

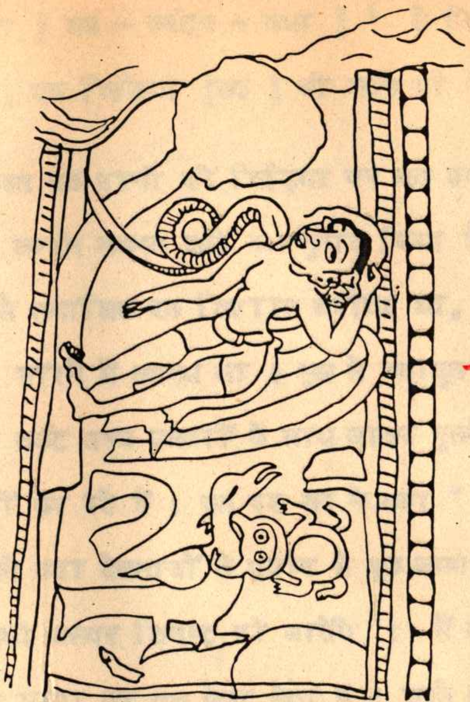

इसी प्रथम भाग के निचले भाग मेंदूसरी कथा चित्रित की गयी है , इस कथा का सम्बन्ध भी केकड़ा {कर्कटक} से है । यधपि यह कथा प्रथम तन्त्र से ली गयी है तथा उपरोक्त चित्रित कथा पंचम तंत्र से है । सम्भवतया दोनो कथाओं का सम्बन्ध कर्कट नामक जीव से होने के कारण एक भाग को 2 भागों मेंबांट कर साथ -साथ दो कथा चित्र बना दिये गये हैं । इस कथा चित्र का कथानक, प्रथम तन्त्र

" मित्र भेद " की कथा नं0 7 (बक - कर्कटक - कथा)[1] से लिया गया है ।(चित्र सं0 21) इस चित्र में एक कर्कटक (केकड़ा) एक चिड़िया (बक) की गर्दन को अपने तेज जबड़ो में पकड़े हुए है ।

पी0सी0 मुखर्जी ने इस एक पानी की चिड़िया पर एक उकाब झपट रहा है ।[2] लिखा है । स्टेला क्रमरिश ने भी इसका वर्णन लगभग इसी कथानुसार किया है , कथानक सार इस प्रकार है । किसी वन में अनेक जलपुष्पों से समाच्छित एक विशाल सरोवर था, उसमें निवास करने वाला एक बक वृद्धावस्था के कारण मछली मारने में असमर्थ था । भूख से व्याकुल वह सरोवर के किनारे अश्रु-प्रवाह धारा से रो रहा था । एक कर्कट अन्य जलचरों के साथ जाकर पूछने लगा माम आप क्यों रो रहे है, भोजनादि का प्रबन्ध नहीं कर रहे हैं । इस पर बक ने कहा " मुझे वैराग्य हो गया है । " कर्कट के कारण पूछने पर उसने कहा देवताओं के प्रकोप से कुछ समय बाद भीषण अनावृष्टि होगी । यह तालाब सूख जायेगा । सभी जलचर विनष्ट हो जायेंगे । मैं उनका विनाशात्मक वियोग देखने में असमर्थ हूँ । इसीलिए आज मरण का व्रत लेकर बैठा हूँ । इससे सभी छोटे जलचर भयभीत होकर पूछने लगे " माम " कोई उपाय बताओ , जिससे हमारी रक्षा हो सकती हो " । बक ने कहा,

---

1- पंचतंत्र - मित्रभेद - व्याख्या श्यामाचरण पाण्डेय - मोतीलाल बनारसी दास , पृ0 115

2- पी0सी0 मुखर्जी - वही वही पृ0 27

इस जलाशय से थोड़ी दूर एक बहुत गहरा जलाशय है , जो चौबीस वर्षों की अनावृष्टि से भी नहीं सूखेगा, यदि कोई मेरी पीठ पर चढ़े तो मैं उसे वहाँ पहुँचा सकता हूँ । सभी ने बक का विश्वास कर लिया । वह दुष्ट बक क्रमश: उनको अपनी पीठ पर बैठाकर जलाशय से थोड़ी दूर स्थित शिला पर ले जाकर पटक देता और अपनी इच्छानुसार भोजन करके पुन: जलाशय पर आकर कपोल कल्पित समाचार सुनाता ।

किसी दिन कर्कट ने कहा माम प्रथम प्रेमालाप तो मेरे साथ हुआ था, आप मुझे छोड़कर दूसरों को मुझसे पहले क्यों ले जा रहे हैं । बक ने सोचा -" कई दिन से मछली का मांस खारहा हूँ , आज इसे ग्रहण करूँगा " । यह सोचकर अपनी पीठ पर चढ़ा , वध्यशिला की ओर चल दिया , शिला पर स्थित अस्थि - पर्वत देखकर कर्कट ने समझ लिया की ये मछलियों की हड्डियां हैं । अत: बक से कहने लगा " जलाशय कितनी दूर है," बक हँसकरबोला -" यह तो मेरी जीविका का साधन मात्र है " । तुम अपने इष्टदेव को स्मरण कर लो । इसी शिला पर पटककर तुम्हें खा जाऊँगा । बक के यह कहते ही कर्कट ने अपने दोनों दांतो से उस बक की मृणाल के समान ग्रीवा इस प्रकार पकड़कर दबायी कि वह मर गया तथा बक की ग्रीवा को लेकर सरोवर के पास धीरे - धीरे आ गया और बाकी जलचरों से सारी कथा सुनायी ।

चित्र में एक बड़े पंछी की गर्दन एक कर्कट द्वारा पकड़ी हुई दिखाई गयी है । इस पंछी की चोंच लम्बी पंजे बड़े बनाये गये हैं तथा यह गहरे कत्थईरंग से रंगा गया है तथा काले रंग से इसका बाह्य रेखांकन किया गया है । केकड़ा सुनहरी पीले रंग से बना है , जिसके चार पैर बनाये गये हैं । शरीर गोल है व मुंह बड़ा बनाया गया है । जिस पर दोनों आंखे स्पष्ट व गोल बनाई गयी हैं तथा यह अपने बड़े दांतेदार जबड़ों से बक की गर्दन दबा रहा है । चित्रकार ने बक की चोंच थोड़ी खोलकर उसका भाव चित्रित करने की कोशिश की है तथा केकड़े की गोल आंखों में छोटी सी पुतली बनाकर उसका चेहरा कुछ क्रोधी सा बनाने का प्रयास किया है तथा जिसमें चित्रकार सफल भी हुआ है । बक के पैरों के पास गहरे सुनहरी पीले रंग से गोल, शायद शिलाखंड बनाया गया है । चित्र का पृष्ठ भाग हल्के पीले रंग से चित्रित किया गया है ।

पेनल का दूसरा भाग भी प्रथम भाग की तरह दो भागों में ऊपर नीचे बँटा हुआ है तथा दोनों में ही दो कथाचित्र है । अलग - अलग कथाओं के कथानक पर चित्रित हैं । ऊपर वाले भाग में जिसे पी0सी0 मुखर्जी ने भी तीसरा चित्र कहा है ।[1] वानर - चटक दम्पत्ति कथा[2] के कथानक पर. आधारित है (चित्र सं0 22) जिसमें नीचे एक बन्दर बैठा हुआ चित्रित किया गया है तथा ऊपर एक चिड़िया (चटक) बनाई गई है । स्टैला जी ने भी इस चित्र को इसी कथा पर आधारित बताया है ।

1- पी0सी0 मुखर्जी - दा रि0 मा0 दा0 ए0 आ0 डि0 ललितपुर, पृ0 27

2- पंचतन्त्र - वही वही पृ0 213

कथानक सार निम्न प्रकार है :-

किसी वन में एक चटक दम्पत्ति वृक्ष पर घोंसला बनाकर रहते थे । कभी हेमन्त काल में मन्द - मन्द वृष्टि होने लगी । इसी समय शीतल वायु से पीड़ित होकर एक वानर वहाँ आया और वृक्ष के नीचे बैठ गया । ठंड के कारण ठिठुर गया था और काँप रहा था । उसकी/इस दशा को देखकर चटक ने कहा - " भद्र पुरुषो, समान होकर भी इस शीत में क्यों काँप रहे हो ? अरे मूर्ख अपने रहने योग्य एक गृह क्यों नहीं बना लेते हो " ? चटक की बात सुनकर वह क्रुद्ध हो गया उसने मन में सोचा " कि यह मेरा उपहास उड़ा रही है । अपने को बहुत होशियार समझ रही है । क्यों न इसे मार कर मैं आज इसका बहकना ही बन्द कर दूं ।" यह विचार कर उस वानर ने वृक्ष पर चढ़कर उस नीड़ को छिन्न - भिन्न कर डाला और चिड़िया को घरहीन कर दिया । इसीलिए कहा गया है , " प्रत्येक व्यक्ति को उपदेश नहीं देना चाहिए " ।

चित्रकार ने इस चित्र का चित्रण बहुत सुन्दर किया है । उसने नीचे बन्दर को बैठा हुआ दिखाया है जिसके हाथ में नीड़ का एक भाग है तथा ऊपर नीड़ हीन चटक ही घर के बिना बैठा हुआ चित्रित किया है । इस चित्र की पृष्ठ भूमि भी अन्य चित्रों के समान हल्के पीले रंग से बनी है । बन्दर को गहरे पीले (यलो आकर) से बनाया गया है । चिड़िया को कुछ और गहरे रंग से भरकर

बन्दर व चिड़िया का रेखांकन काले रंग से किया गया है । बन्दर का शारीरानुपात व उसके बैठने का ढंग बहुत सुन्दर बना है । वह हाथ में लिए नीड़ के भाग को ध्यान से देख रहा है सम्भवतया उसमें उसे अपनी जीत नजर आ रही है , जबकि ऊपर चटक कुछ परेशान मुद्रा में चित्रित किया गया है ।

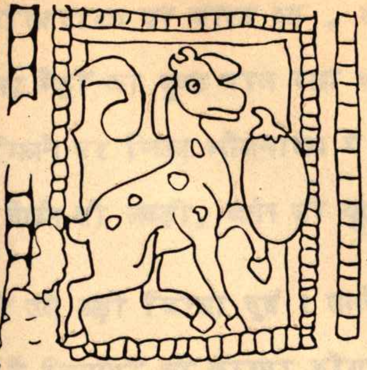

नीचे का भाग एक अन्य कथानक पर आधारित है । पी०सी० मुखर्जी ने इसे न जाने, कैसे घोड़े का [1] चित्र लिख दिया है । यह चित्र एक सुन्दर बकरी का चित्र है , जो सामने रखे फल पर तेजी से लपक रही है । यह चित्र " चन्द्रभूपति कथा [2] प्रथम खण्ड पर आधारित है [चित्र सं022]

जिसका कथा सार निम्न प्रकार हैं :-

" किसी नगर में एक चन्द्र नाम का राजा रहता था । उसके पुत्रों की बन्दरों के साथ

1- पी०सी० मुखर्जी - रि० आन एन्टि० आ० डिस्ट० ललितपुर , पृ०-27

2- पंचतन्त्र - अपरीक्षित कारक - वही पृ०-65

खेलने में विशेष रुचि थी । अतः बन्दरों के झुण्ड को खाद्य देकर पोषण किया जाता था । वानरों के झुण्ड का यूथप नामक वानर वृहस्पति नीतिशास्त्र का ज्ञाता था , तथा नीति सम्मत आचरण करता था । राजा ने छोटे राजकुमारों के चढ़ने के लिए भेड़ों का झुण्ड पाल रखा था । उनमें से एक भेड़ अपनी जिह्वा चपलता के कारण रात - दिन अवसर मिलने पर निडर भोजनालय में घुस जाया करती थी और जो कुछ पाती , खा जाती थी । भण्डारी उसे देखते ही लकड़ी, बर्तन जो कुछ पाता, तुरन्त मार दिया करता था ।

वानरों के यूथप ने जब देखा तो उसे बड़ी चिन्ता हुई । उसने अपने मन में विचार किया " कि भेड़ और भण्डारी के मध्य कलह बानरों के विनाश का कारण होगा " । क्योंकि किसी दिन यह भण्डारी कुछ न मिलने पर आग युक्त लकड़ी ही भेड़ को मार देगा , ऊन युक्त भेड़ जलने के कारण पार्श्ववर्ती अश्वशाला की ओर दौड़ेगी , वहाँ रखी सूखी घास में आग लग जायेगी । फलत : घोड़े जल जायेंगे " । शालिहोज में लिखा है कि घोड़े के जलने का घाव बन्दर की चर्बी से ठीक होता है । अतः उसने समस्त बानरों से यह वृतान्त सुनाकर कहा कि जिस गृह में नित्य अकारण कलह होता हो उसे जीवित रहने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को तत्काल छोड़ देना चाहिए । यह कहकर वह यूथप तो वन चला गया । एक दिन ऐसा ही हुआ और बानरों को राजा ने मार डालने का आदेश दे दिया ।

इस चित्र में पृष्ठ भूमि में वही हल्का पीला रंग लगा हुआ है । बकरी गहरे पीले {सुनहरे} रंग से बनी है , जो एक फल की ओर चपलता से लपक रही है । बकरी का अंग - प्रत्यंग बहुत सुन्दर व लयपूर्ण चित्रित किया गया है । छोटे - छोटे सींग , लम्बे लटके हुए कान व स्पष्ट बनी आँखों के चित्रण से बकरी बहुत भावपूर्ण व चंचल बनी हुई प्रतीत होती हैं ।

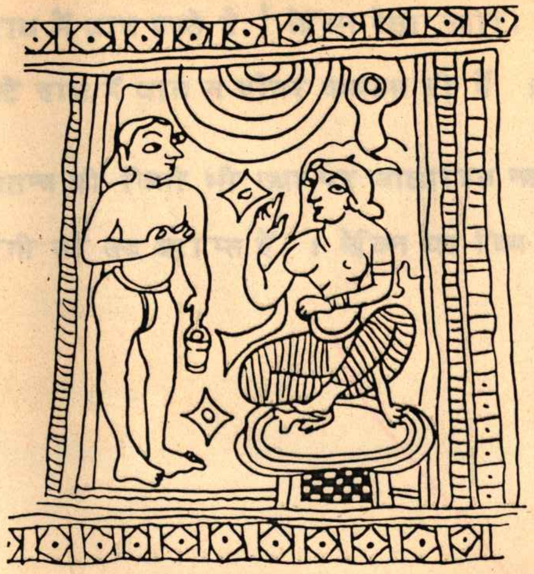

इस फलक पट का तृतीय खण्ड कथा चित्र पाच सबसे अधिक रंगीन लगता है ‖ चित्र सं0 23‖ इसमें एक नारी आकृति बैठी हुई तथा अपने हाथ से कुछ इशारा कर रही है तथा उसके सामने एक पुरुष खडा है जिसके शरीर पर वस्त्र के रूप में लंगोटी मात्र है । सिर पर लम्बी चोटी है । एक हाथ में कमण्डल के समान पात्र है । देखने में यह साधु के समान लगता है । पी0सी0 मुखर्जी ने इसे पति - पत्नि कहा है उनके अनुसार " पत्नि बैठी हुई व पति खड़े हुए [1] बना है ।

- वही - पृ0- 27

स्टैला क्रमरिश ने इस चित्र में खड़े व्यक्ति को कोई गरीब व्यक्ति बताया है । जो अपने सीधे हाथ में चिड़िया व उलटे हाथ में जाल पकड़े है । लेकिन ऐसा नहीं हैं। यह व्यक्ति ब्राह्मण के समान वेशधारी है । तथा उल्टे हाथ में जाल न होकर कमण्डल ही हैं ।

यह चित्र अब प्राप्त पंचतन्त्र की किसी भी कथा पर आधारित नहीं है । सम्भवतया उस समय कोई कथा प्रचलित रही होगी जो अब अप्राप्त हैं । लेकिन यह चित्र सभी चित्रों में बहुत स्पष्ट व सुन्दर है ।

1- स्टैला क्रमरिश - जे0आई0 एस0 ओ0 ए0 - खण्ड 7 - पृ0 127

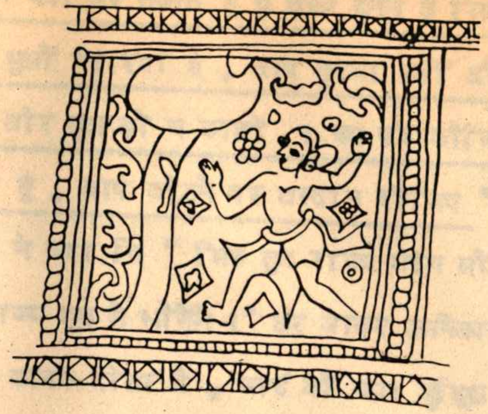

पैनल के चतुर्थ खण्ड में कथा चित्र छः है । जिसमें एक बड़े वृक्ष का अंकन है तथा एक पुरुष उसके सामने दौड़ती मुद्रा में बना है । यह चित्र " मन्थर कौलिक कथा " के कथानक पर आधारित है । § चित्र सं0 24 § जिसके अनुसार किसी नगर में मन्थर नामक एक जुलाहा रहता था । एक दिन वस्त्र निर्माण करते समय उसके सभी उपकरण टूट गये । कुल्हाड़ी लेकर वह वन में लकड़ी काटने के लिए निकला , इधर - उधर घूमते हुए जब वह समुद्र के किनारे पहुँचा तो उसने शीशम के एक वृक्ष को देखा, वह बड़ा व पर्याप्त समझकर उस पेड़ को काटने लगा । उस वृक्ष पर एक यक्ष रहता था , उसने जुलाहे से कहा मैं इस वृक्ष पर निवास करता हूँ , अतः तुम इसे नहीं काट सकते ।

Why underlined?

कौलिक ने कहा - " महाशय मैं क्या कर सकता हूँ ? वस्त्र बनने के लिए आवश्यक काष्टोपकरणों के अभाव में मेरा सम्पूर्ण परिवार भूखों मर रहा है , आप कृपया कहीं और चले जायें । इस पर यक्ष ने कहा तुम कोई वरदान माँग लो और वृक्ष को न काटो । इस पर कौलिक ने कहा " मैं घर जाकर अपने मित्र व पत्नि से पूछ आता हूँ , आप लौटने पर वरदान दीजिए " । रास्ते में उसने अपने मित्र नापित से वृतान्त कहा तो मित्र ने कहा कि " मित्र तुम राज्य माँग लो । तुम राजा बन जाना , मैं मंत्री बन जाऊँगा । हम दोनों राज्य सुख से भोगेंगे ।" घर जाकर उसनेअपनी पत्नि से वृतान्त कहा तो पत्नि ने कहा " राज्य कष्ट कारक होता है , नाई को क्या बुद्धि होती है , आप उसकी बात न मानें । तुम वरदान में दो और हाथ व एक सिर और माँग लो, इससे तुम दुगना कपड़ा बुन सकोगे और हम सुखपूर्वक रहेंगे " । कौलिक ने यक्ष से जाकर यही वरदान माँग लिया । वह प्रसन्न होकर जब घर लौटने लगा तो मार्ग में लोगों ने राक्षस समझकर उसे लाठियों से मार दिया ।

इस चित्र में वृक्ष के यक्ष व कौलिक का वार्तालाप चित्रित किया गया है । चित्र में बायीं ओर एक वृक्ष का चित्रण है जिस पर एक बहुत धुंधली सी आकृति सम्भवतया यक्ष की है , चित्रित की गयी है । दायीं ओर एक पुरुष की आकृति एक विशेष मुद्रा में बनाई गयी है, जिसका एक पैर आगे तथा दूसरा पैर पीछे है । दोनों हाथों की स्थिति सामने की मुद्रा जैसी है । वह अपने एक हाथ में कोई छोटा सा उपकरण सम्भवतया कुल्हाड़ी लेकर पेड़ पर प्रहार करने के लिए आतुर प्रतीत होता है।

1- पंचतन्त्र - अपरीक्षितकारक - वही - पृ0- 53

पुरुष के शरीर पर कमर में धोती के समान वस्त्र बना है जो ऊपर को उड़ता सा प्रतीत होता है । शरीर को सम्भवतया साँवला बनाने के लिए उसमें हल्का कत्थई रँग भरा गया है । आँख चेहरे के पार निकली हुई [अपभ्रंश शैली] के समान बनीहुई है । सिर पर केश पीछे को बँधे हैं । धोती व पेड़ में वही गहरा मटियाला पीला [यलो आकर] रँग भरा गया है, जिसका रेखांकन कत्थई रँग से किया गया प्रतीत हो ता है पृष्ठ भाग हल्के पीले रँग से बनाया गया है । खाली स्थान पर कुछ अंलंकरण बनाने का प्रयत्न किया गया है । पेड़ के ऊपरी भाग का आभास मात्र गोल सी आकृति से दिया गया है । पूर्ण चित्र अपने कथानक को स्पष्ट करता सा प्रतीत होता है ।

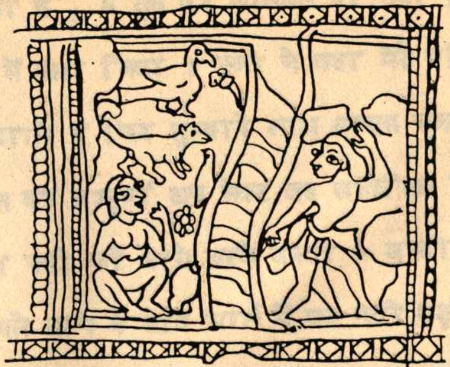

चित्र पैनल का चित्र खण्ड पाँच अन्तराल के विचार से पिछले सभी चित्रों से बड़ा है इसमें बीच में एक नदी है एक व्यक्ति सिर पर सामान लिए नदी के उस पार चित्रित है तथा नदी के इस पार एक नग्न स्त्री बैठी है , उपर एक जानवर, एक चिड़िया तथा मछली का चित्रण किया गया है । इस चित्र का कथानक " नग्निकाहालिकावधू - कथा पर आधारित है । §चित्र सं0 25 §

कथानुसार निम्न प्रकार हैं :-

किसी स्थान पर किसान दम्पत्ति निवास करते थे । किसान की स्त्री अपने पति की वृद्धावस्था के कारण सतत पर पुरुषगमन की चिन्ता में लगी रहती थी । एक दिन किसी ठग ने

उब उसे घर से निकलते हुए देख लिया । जब वह एकान्त में पहुँच गयी तो उसके समीप जाकर उससे कहा " सुभगे मेरी स्त्री मर चुकी है , मैं तुम पर आसक्त हो गया हूं । इस प्रकार उस ठग ने उस दुष्चरिता स्त्री को अपने जाल में फँसा लिया । स्त्री ने कहा मेरे पति के पास बहुत साधन है वह वृद्ध है । मैं उसका धन लेकर आती हूं फिर तुम्हारे साथ अन्यत्र चलकर अपनी इच्छानुसार आनन्द लूँगी । दूसरे दिन अपने पति का सम्पूर्ण धन लेकर वह सांकेतिक स्थान पर चली गयी । ठग यह देखकर बहुत प्रसन्न हुआ , और स्त्री को आगे करके जल्दी - जल्दी वहां से चल दिया । दोनों भागते हुए प्राय : दो योजन चले आने के बाद मार्ग में एक नदी पड़ी । ठग ने सोचा " इस स्त्री को लेकर मैं क्या करूंगा । मेरे लिए यह कोई अनर्थ भी खड़ा कर सकती है , अतः मैं इसके धन को लेकर चल दूं " । इस प्रकार निश्चय करके उसने स्त्री से कहा - प्रिये , यह नदी गहरी है । इसे पार करना कठिन है , अतः पहले मैं गठरी उस पार रख आता हूं फिर तुम्हें पीठ पर बैठाकर ले चलूंगा और दोनों नदी पार कर लेंगे । " ठग के कहने पर उस स्त्री ने अपने पहले हुए समस्त वस्त्र व गहने भी उतार कर गठरी में बांध दिये । तदन्तर वह धूर्त उसकी गठरी लेकर नदी पार करके भाग गया, तथा वह स्त्री नदी किनारे बैठी हुई उस धूर्त की प्रतीक्षा करती रही । इसी बीच एक शृंगाली मुँह में मांस का टुकड़ा दबायें आ पहुँची । तीर पर आते ही उसने एकमछली जल से बाहर निकली बैठी हुई देखी, उसे देखते ही वह मांस का टुकड़ा जमीन पर रखकर मछली की ओर दौड़ पड़ी ।

इसी मध्य एक गिद्ध आकाश से उतर उस माँस के टुकड़े को उठा ले गया , इधर मछली श्रृगाली को अपनी और आते देखकर जल में घुस गयी । निष्फल व निराश श्रृगाली को देखकर स्त्री ने कहा "तुम्हारे माँस को तो गिद्ध ले गया , तथा मछली पानी में चली गयी । दोनों को खोकर अब किसको देख रही हो " ? इस व्यंग वचन को सुन श्रृगाली चिढ़ गयी और पति, धन व उपपति को खोकर बैठी उस किसान स्त्री का उपहास करती हुई बोली " अरे नग्निके तुम तो मुझ से भी अधिक विदुषी {मूर्ख} हो, क्योंकि न तो तुम्हें पति ही मिला न जार ही अपना हो सका और धन भी हाथ से निकल गया । तुम किसकी राह देख रही हो ?

प्रस्तुत चित्र फलक में नदी के पार जाता हुआ व्यक्ति जिसके सिर पर भार है, उस स्त्री का उपपति है । नदी के इस पार वह नग्नावस्था में किसान स्त्री बैठी है । उसके ऊपर श्रृगाली है तथा नदी किनारे मछली है व ऊपर श्रृगाली का माँस लेने आया गिद्ध चित्रित है । पुरुष के शरीर में लाल रंग भरा गया है । उसकी कमर में धोती बँधी है व नदी पार करके सनी की ओर देख रहा है । शायद अपनी जीत व स्त्री की मूर्खता परआशावस्त है । उसका एक हाथ सिर पर गठरी पकड़े है । सिर पर लम्बे बाल है आँखे मुख के पार निकली हुई है । चेहरे पर मूँछें बनाई गयी हैं । स्त्री आकृति नग्न बनायी गयी है । उसके शरीर में मटियाला पीला रंग भरकर काली रेखा का रेंखाकन किया गया है ।केश लम्बे है । वह नदी के पार देख रही है । इसके मुख की रचना भी अपभ्रंश शैली के

अनुसार है । श्रृगाली, गिद्ध व मछली भी मटियाले रंग से बने हैं । पृष्ठभूमि हल्के पीले रंग से बनाई गयी है । नदी कुछ चौड़ी व लहर दार बनी है इसमें वही गहरा पीला रंग लगाया गया है । पूरा चित्र अपने कथानक को स्पष्ट करता है ।

कथा चित्र आठ पंचतन्त्र की सबसे बड़ी कहानी " दूतीजम्बुकाषाढ़भूति - कथा" पर आधारित है इस कथा का कथानक तीन भागों में विभाजित है । यह चित्र भी दो भागों में विभाजित है । दोनों चित्रों का लगभग डेढ़ भाग उनके नीचे लगे मूर्ति शिल्प से छिपा हुआ है, जिससे उस चित्र को समझना कुछ कठिन है । लेकिन कहानी अध्ययन तथा पी0सी0 मुखर्जी के 100 वर्ष पूर्व देखे चित्र व उनके दवारा बनाये गये रेखाचित्र के आधार पर यह तथ्य सामने आता है कि यह चित्र उपरोक्त कथा के दिवतीय व तृतीय कथानक खंड पर आधारित है । प्रथम चित्र तृतीय खंड परआधारित है जो लगभग 2/3 भाग छिपा हुआ है । इसमें एक स्त्री आकृति अपने दोनो हाथ ऊपर उठाये हुए बनाई गई है । जिसका वक्षस्थल तक का भाग दिखाई देता है । यह हाथ ऊपर उठाये हुए रोती हुई तथा अपने पति को प्रताड़ित करती स्त्री है (चित्र सं0 26) दूसरे खंड में एक पुरुष अपनी स्त्री को पीट रहा है। इस चित्र में स्त्री (का चित्र तो स्पष्ट है पर पुरुष के दोनों हाथ व मुख ही दिखाई दे रहा है शेष चित्र मूर्ति शिल्प से छिपा है । कथानक सार निम्न प्रकार हैं :-

किसी निर्जन स्थान में देवशर्मा नामक सन्यासी मठ में रहता था, उसके पास पर्याप्त

धनराशि थी । वह किसी का विश्वास नहीं करता था । एक धूर्त आषाढ़भूति ने इस द्रव्य को अपहरण करने का विचार किया । अतः वह सन्यासी का शिष्य बन गया तथा अपने सेवा भाव से सन्यासी का विश्वास पात्र हो गया । एक दिन सन्यासी अपने शिष्य के साथ समस्त धन सहित कहीं जा रहा था । रास्ते में सन्यासी ने आषाढ़भूति से कहा मैं शौच से निवृत्त होकर आता हूँ, तुम सावधानी पूर्वक देखते रहना " । सन्यासी के जाते ही वह धूर्त उसका धन लेकर अन्यत्र चला गया सन्यासी जब वापिस आया तो उसे कुछ भी नहीं मिला । यह कथानक का प्रथम खंड है ।

बहुत देर तक विलाप करने के पश्चात वह सन्यासी धीरे -धीरे चलने लगा । सूर्यास्त के समय
दम्पत्ति
उसको एक ग्राम मिला । उस ग्राम में एक जुलाहा/शराब पीने समीप के नगर जा रहा था । मार्ग में सन्यासी के आतिथ्य माँगने पर उसने अपनी स्त्री को सन्यासी के साथ वापस घर समझाकर भेज दिया कि वह सन्यासी का सम्मान पूर्वक सत्कारकरें । घर जाकर स्त्री ने स्वामी को एक टूटी खाट पर सोने को कहकर, अपने जार पति के साथ जाने के लिए श्रृंगार आदि कर घर से निकल कर चलने लगी, तभी उसका पति लौट आया । पति को देखकर वह स्त्री तुरन्त वापस आकर घर में बैठ गयी तथा समस्त श्रृंगार साधन भी उतार दिये , लेकिन उसके पति ने उसे बाहर देख लिया था । अपनी पत्नि के व्याभिचार पूर्ण आचरण से वह पहले ही अनभिज्ञ न था, अतःआते ही उसने अपनी पत्नि से बाहर जाने का कारण पूछा, न बताने पर उसने अपनी पत्नि को पीटा व घर में बाँध दिया । चित्र के दिव्तीय खंड में कथानक का यही भाग चित्रित किया गया है, जिसमें वह जुलाहा

पति अपनी व्याभिचारिणी पत्नि को पीट रहा है । यह इस कथानक का दिव्तीय खंड है :-

इस स्त्री की एक ओर व्याभिचारिणी सखी नापिति थी वह इस स्त्री के जार का संदेश लेकर आयी । स्त्री को बंधा देखकर उसने उसे खोल दिया । वह अपने जार पति के पास चली गयी व नापिति उसके स्थान पर बंध गयी । इसी बीच जुलाहे की आंखे खुल गयी । उसने अपनी पत्नि से बात करनी चाहीं, लेकिन नापिति डर से नहीं बोली । जुलाहे ने समझा की यह अभी भी क्रोध में है । कई बार न बोलने पर जुलाहे ने नापिति की नाक काट दी , और फिर सो गया । जब नापिति की सखी वापिस आयी तो नापिती ने कहा " मुझे छोड़ दें , नहीं तो तेरा पति जाग जायेगा इसने मेरी नाक काट दी है । तथा वह यह विचार करती हुई कि सुबह अपने पति से क्या कहेगी अपने घर चली गयी । सुबह नापिति का पति जब आया तो जल्दी कार्य होने के कारण वह बाहर से ही अपनी पत्नि से बोला " प्रिय मेरे औजारों की पेटी जल्दी दे जाओ, जिससे मैं नागरिकों के बाल आदि काटने के लिए चला जाऊं । " कईबार कहने पर उसकी स्त्री कुछ न बोली और पेटी में से एक छुरा निकालकर पति की ओर फैंक दिया । पत्नि के इस व्यवहार से पति को क्रोध आ गया और उसने क्रोध में वह छुरा पत्नि की तरफ फैंक दिया । ऐसा करते ही उसकी पत्नि हाथ उपर उठाकर चिल्लाती हुई बाहर निकली और शोर मचाकर कहने लगी,"कि मेरे पति ने मेरी नाक काट ली है । " इस पर राजा के सिपाही आयें और नापित को पकड़कर ले गये ।

चित्र के प्रथम खण्ड में हाथ ऊपर उठाये हुए घर से निकलती हुई उसी नापिति का चित्रण किया गया है अब यह चित्र बहुत अस्पष्ट हो गया है तथा इसका अंश मात्र ही हल्का-हल्का सा दिखाई देता है , जिसमें पृष्ठभूमि वही हल्के पीले रंग से बनी है । स्त्री आकृति जो स्पष्ट दिखाई देती है , उसमें मटियाला पीला रंग भरा गया है । जिसकी गहरे कत्थई या काले रंग से रेखांकन किया गया है । चित्र में ऊपर की ओर अलंकरण जैसे घर के दरवाजे पर बन्दनवार बाँध दिया जाता है, के समान स्पष्ट दिखता है । शेष चित्र भाग शिल्प के पीछे छिपा हुआ हैं ।

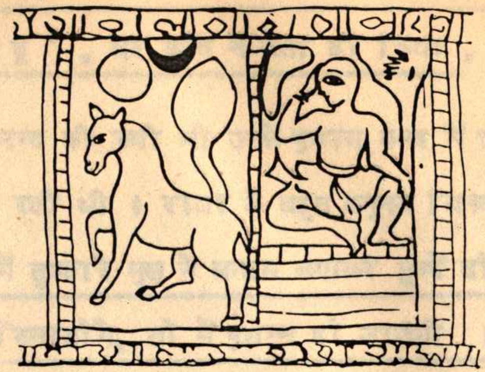

चित्र खण्ड सात जिसे पी0सी0 मुखर्जी चित्र आठ व नौ लिखते हैं, वास्तव में एक ही कथा चित्र हैं । जिसमें प्रथम भाग में एक घोडा बना है, तथा द्वितीय भाग में एक सिर मुंडा व्यक्ति माथे पर हाथ रखे हुए बैठा है । यह चित्र "मन्दवर रुचि कथा" {चित्र सं0 26} लब्ध प्रणाशम् तन्त्र की कथा 6 के कथानक पर आधारित है ।

कथा के अनुसार किसी समय एक नन्द नाम का राजा राज्य करता था । उसका यश चहुँ ओर फैला हुआ था । वर रुचि नाम का उसका एक मंत्री था, जो अनेक शास्त्रों का ज्ञाता था । एक दिन प्रणयकलह मे उसकी पत्नि उससे अप्रसन्न हो गयी । उसने अनेक प्रकार मनाया पर वह

संतुष्ट न हुई । बहुत मनाने पर उस स्त्री ने कहा " यदि आप अपना सिर मुँडाकर मेरे पैरों पर गिर जायें तो मैं प्रसन्न हो सकती हूँ " , वर रुचि ने वैसा ही किया , तदनन्तर वह प्रसन्न हुई ।

इधर संयोग से महाराजा नन्द की स्त्री भी उनसे प्रणय कलह में ही कुपित हो गयी । वह भी किसी प्रकार प्रसन्न नहीं हो रही थी । राजा के बहुत अनुनय विनय करने पर रानी ने कहा " यदि तुम घोडा बन जाओ तो मैं तुम्हारे मुख में लगाम लगाकर तुम्हें दौड़ाती हूँ । मेरे दौड़ाने पर यदि तुम घोड़े समान हिन - हिनाओगे, तो मैं प्रसन्न हो जाऊँगी । विवश होकर राजा ने वैसा ही किया । प्रातःकाल राज्य सभा में राजा के पूछने पर वर रुचि ने कहा " स्त्रियों के आग्रह से मनुष्य क्या नहीं करता , जिस पर्व पर मनुष्य घोड़े की तरह हिन- हिना सकता हैं, उसी पर्व पर मैंने सिर मुंडवाया है ।

इस चित्र में घोड़े का जो चित्र है , वह राजा नन्द का प्रारूप है तथा सिर मुंडे व्यक्ति वाला चित्र वर रुचि मंत्री का है । घोड़े वाला चित्र अधिक स्पष्ट है । इसमें पृष्ठभूमि हल्के पीले रंग से बनायी गयी है । घोड़े में भरा गया रंग उड़ गया है , लेकिन उसमें लालपन की झलक है । दोनों ओर दो पेड़ के समान रूप बनाये गये हैं या सम्भवतया द्वार का आभास दिया गया है । घोड़े की रचना बहुत सुन्दर व लयात्मक की गयी है । देखने से ऐसा लगता है कि घोड़ा दौड़ रहा है । इससे ही

सम्बन्धित दूसरे चित्र में बैठे हुए व्यक्ति की आकृति बहुत कलात्मक है । उसका एक पैर मुड़ा हुआ है तथा दूसरा घुटने के बल खड़ा किया गया है । एक हाथ खड़े हुए पैर पर रखा है तथा दूसरा हाथ माथे पर रखा है । सिर मुंडा हुआ है । शरीर में लाल रंग भरा गया है । कमर में बंधी धोती का रंग मटियाला पीला है तथा पृष्ठ भूमि में हल्का पीला रंग किया गया है । ऐसा लग रहा है कि यह व्यक्ति अब अपने किये पर पछता रहा हो । आकृति का अंग विन्यास व अलंकरण अस्पष्ट है ।

चित्र पैनल के खण्ड आठ में चित्रित 10वीं कथा " सिंह शशक - कथा " [1] पर आधारित है । इस चित्र में एक सिंह बना हुआ है । उसके सामने एक शशक का चित्रण है । सिंह के पैरों के पास एक कूप का आभास दिया गया है । उसमें एक अन्य सिंह काचित्रण किया गया है । डा0पी0सी0 मकुर्जी ने इसे शेर व शेरनी का चित्रकहा है तथा शेरनी को मांद के अन्दर बताया है । [2] वास्तव में ऐसा नहीं है । वह मांद न होकर कूप बनाया गया है , जिसमें ऊपर वाले सिंह का प्रतिबिम्ब दिखाया गया है ।

कथानक सार निम्न प्रकार हैं :-

किसी वन में भासुरक नाम का विशाल सिंह रहता था । वह प्रतिदिन अनेक मृगों व शशकों को मारा करता था, फिर भी उसे शान्ति नहीं मिलती थी । एक दिन वन के सभी जीव - मृग, वराह, महिष, शशक आदि आपस में मिलकर उसके पास गये और बोले - " स्वामी प्रतिदिन सभी पशुओं को मारने से क्या लाभ है? हम नियमपूर्वक जाति क्रम से एक पशु आपके पास भेज दिया करेंगे। इस प्रकार बिना किसी श्रम के आपका जीवन- निर्वाह होता रहेगा और हम लोगों का सामूहिक विनाश भी नहीं होगा " । अतः प्रतिज्ञानुसार प्रतिदिन एक जानवर दोपहर के समय उसके भोजन के लिए उपस्थित हुआ करता था ।

कुछ दिनों के बाद जाति क्रम से एक शशक के जाने का अवसर आया । समय का अतिक्रमण करके उस सिंह के विनाश का उपाय सोचता हुआ वह उदास मन से चला जा रहा था । मार्ग में एक कूप पड़ा । उसने कूप पर चढ़कर देखा तो कूप के मध्य में उसको अपनी छाया दिखाई दी । उस छाया को देखकर उसने अपने मन में सोचा कि " सिंह के नाश का यह उत्तम उपाय है । भासुरक को क्रोधित करके मैं अपनी बुद्धि द्वारा उसको उत्तेजित करके इस कूप में गिरा दूंगा । दिन डूबने पर शशक भासुरक के पास पहुंचा , सिंह भूख से व्याकुल व क्रोध में था । शशक को देखते ही क्रोध से लाल होकर भासुरक ने उसको डाटते हुए पूछा । एक तो तू अल्प काय है, फिर भोजन का समय बिता कर

आया है, अतः मैं तुझे तो मारूँगा ही । प्रातःकाल ही समस्त जीवों को मार डालूँगा । इस पर शशक ने कहा - स्वामी इसमें मेरा कोई दोष नहीं है । मैं तो आपके पास साथियों के साथ आ रहा था , रास्ते में एक बलिष्ठ सिंह मिला । भुविवर [दुर्ग] से निकलकर उसने मुझसे कहा - तुम लोग कहाँ जा रहे हो ? अपने इष्ट देवता को स्मरण करो । मैंने कहा हम अपने स्वामी भासुरक नाम के सिंह के पास प्रतिज्ञा के अनुसार उनके भोजन के लिए जा रहे हैं । तब उसने कहा यह वन मेरा है । वह भासुरक चोर है । वह शक्तिशाली है तो मैं उससे युद्ध करूँगा , जो शक्तिशाली होगा वही इन खरगोशों को खायेगा । उसकी आज्ञा से मैं स्वामी के पास आया हूँ । शशक की ऐसी क्रोध भरी बातें सुनकर भासुरक ने कहा मुझे वहा ले चलो । अपना क्रोध मैं उसी पर उतारूँगा । शशक ने कहा वह दुर्ग में रहता है । भासुरक ने कहा - तुम्हे इससे क्या प्रयोजन है ? अतः शशक सिंह के आगे - आगे चल दिया । कूप पर जाकर कहने लगा वह सिंह आपसे डर गया है, अतः दुर्ग में चला गया है और सिंह को कूप में झांकने के लिए कहा । सिंह को कुएँ में अपनी परछाई दिखाई दी, अतः वह गर्जना करने लगा । गर्जना की कूप से दुगनी प्रति ध्वनि सुनकर वह प्रतिबिम्ब को अपना शत्रु समझकर कूप में कूद गया और मर गया । तथा शशक सकुशल वापस लौट आया ।

अतः चित्र में उपर वाला सिंह भासुरक है । गोलाई में कूप बनाया गया है , तथा कूप में भासुरक के प्रतिबिम्ब के रूप में दूसरा सिंह बनाया गया है । वह शशक सिंह के सामने दौड़ रहा है।

पृष्ठ भूमि हल्के पीले रंग से बनी है । सिंह, कूप, प्रतिबिम्ब व शशक मटियाले रंग से बने हैं, जिनके गहरे कत्थई या काले रंग से रेखांकन किया गया है । भासुरक सिंह बलिष्ठ व पिछले पैरों पर खड़े होकर कूप में झाँकता हुआ बनाया गया है । शशक उसके अनुपात में छोटा सा ही बनाया गया है ।

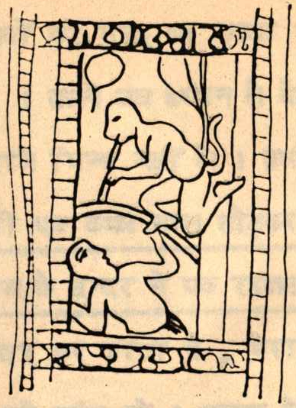

चित्र खण्ड नौ पूर्व चित्रित कथा " चन्द्रभूपति कथा [1] जिसका प्रथम भाग खंड दि्वतीय के नीचे के भाग में चित्रित है, की आगे की कथा पर चित्रित है । जिसमें एक बन्दर अपने हाथ में एक नलकी के समान वस्तु लिए हुए कुछ करने को व्याकुल है । पी०सी० मुखर्जी ने इसे एक बन्दर बाघ बजाते हुए तथा दूसरा एक छोटी गुफा से बाहर आते हुए बताया है ।[2] लेकिन वास्तव में ऊपर वाला बन्दर है व नीचे तालाब का चित्रण है जिसमें से एक यक्ष निकल रहा है । कथा का सार निम्न प्रकार है, जो प्रथम खण्ड से आगे निम्न प्रकार आरम्भ होती है :-

अपने वंश का नाश सुनकर वह यूथप - बानर बहुत दुखी हुआ व खाना,पीना छोड़कर वन

1- पंचतन्त्र - अपरीक्षित कारक - वही - पृ० -65

2- पी०सी० मुखर्जी - रि० आन एन्टि० आ० डिस्ट्रि० ललितपुर - पृ०-148

मैं इधर - उधर घूमने लगा व निरन्तर इस बात को सोचता रहता था कि किस प्रकार इस कृतघ्न राजा का उपकार करके अपने सम्बन्धियों की मृत्यु का बदला लूँ । एक दिन प्यास से व्याकुल वह एक कमलों से सुशोभित तालाब में पहुँचा । उसने जब ध्यान से देखा, वहाँ तालाब में प्रवेश करने वाले जीवों के पद चिन्ह थे, पर निकलने वाले चिन्ह नहीं थे । उसने सोचा इस तालाब में कोई दुष्ट मगर रहता है । अतः वह बाहर से ही एक कमल नाल तोड़कर उसके सहारे जल पीने लगा । जब वह कमल नाल से जल पी रहा था, तालाब के अन्दर से एक राक्षस निकला । वह रत्नों की सुन्दर माला पहने था , कहने लगा जो जल में प्रवेश कर जाता है , मेरा भक्ष्य होता है । तुम चतुर हो । मैं तुम से प्रसन्न हुआ । जो मनोकामना हो माँग लो । वानर ने कहा तुम कितने जीव खा सकते हो । राक्षस ने कहा -" जल में जितने भी प्रवेश कर जायें सबको, लेकिन जल से बाहर निकलने पर एक भी नहीं । वानर ने कहा एक राजा से मेरा अत्यधिक बैर है । तुम अपनी रत्न माला मुझे दे दो । मैं वाक् चातुर्य से सकुटुम्ब राजा को जल में प्रवेश करा दूंगा । रत्न माला लेकर वह वानर राजा के नगर में गया । राजा के पूछने पर उसने कहा - " वन में कुबेर का एक तालाब है , जो भी प्रातःकाल उसमें स्नान करता है । वह कुबेर के प्रसाद से ऐसी माला से सुशोभित होकर तालाब से निकलता है । वह राजा लालच वशः समस्त कुटुम्बियों के साथ वन में गया । राजा के अतिरिक्त वानर ने सबको तालाब में प्रवेश करा दिया वह राक्षस सब को मार कर खा गया । देर होने पर राजा के पूछने

पर वानर दौड़कर पेड़ पर चढ़ गया और कहने लगा मैंने अपने वंश के नाश का बदला ले लिया है । तालाब का राक्षस तुम्हारे सारे वंश को खा गया हैं ।

इस चित्र में उपरोक्त कथा का ही वर्णन है । वह वानर यूथप है जो कमल नाल से जल पी रहा है, तथा वह गोलाकार भाग तालाब का चित्रण है, जिसमें से राक्षस निकलता हुआ दिखाई दे रहा है ।

इस चित्र की पृष्ठभूमि भी हल्के पीले रंग की है । शेष सभी कुछ गहरे मटियाले पीले रंग से बनाकर उस पर वही गहरा रेखांकन कर दिया गया है । अब यह चित्र बहुत हल्का हो गया है । बन्दर का चित्रण बहुत सुन्दर व अनुपातिक है । दोनों ओर कमल पुष्प बनाने का प्रयास किया गया है ।

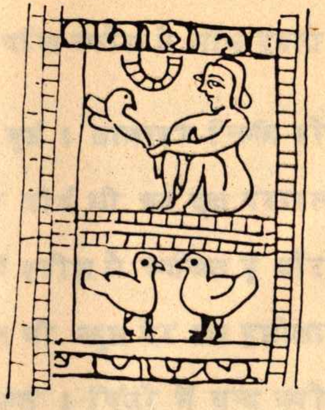

चित्र खण्ड 10 में एक व्यक्ति बैठा है जिसके हाथ में एक चिड़िया ‖ कपोत ‖ है, नीचे के भाग में कपोत - कपोती का एक सुन्दर जोड़ा बनाया गया है । अध्ययन से पता चलता है कि यह चित्र काकोलूकीयम् तन्त्र की कथा " कपोतलुब्धक‖ चित्र सं0 27‖ कथा पर आधारित बनाया गया है । पी0सी0 मुखर्जी ने भी इस चित्र का वर्णन ऐसे ही किया है ।

इस कथा का सार निम्न प्रकार है :- एक अत्यन्त दुर्वृत्त , क्रूर तथा पापी बहेलिया वन में इधर - उधर घूम रहा था । एक दिन वन में घूमते हुए उसके हाथ में कपोती आ गयी । उस कपोती को उसने पिंजड़े में बन्द कर लिया । अभी वह वन में ही था कि सम्पूर्ण दिशाएं काली हो

गयी । सम्पूर्ण आकाश मेघाच्छन्न हो उठा और झंझावात के साथ सघन वृष्टि होने लगी । वह भयभीत हृदय , काँपता हुआ सुरक्षित स्थान की खोज में एक वृक्ष के नीचे पहुँच गया । इसी वृक्ष पर पिंजरे में बन्द कपोती अपने पति कपोत के साथ रहती थी ।

कुछ देर बाद वृष्टि कम हुई । आकाश निर्मल हो गया , तब वह बहेलिया पेड़ के नीचे खड़ा होकर कहने लगा कि " जो कोई भी इस वृक्ष पररहता हो, मैं उसकी शरण में आया हूँ । वह मेरी रक्षा करे । इस समय मैं शीत से व्यथित हूँ और भूख से क्षुब्ध होता जा रहा हूँ । उसी तरु पर एकाकी, स्त्री के आगमन की बहुत देर तक प्रतीक्षा करने के बाद वह कपोत अन्त में निराश एवं दुखित होकर विलाप करने लगा । पिंजरे में बन्द कपोती ने कहा हे कान्त अपने हित व शुभ के लिए अपने प्राणों को देकर भी तुम शरणागत की रक्षा करते रहना । यह व्याध तुम्हारे घर शीत व भूख से पीड़ित होकर सोया है । वह तुम्हारा अतिथि है । मेरे बन्धन में डालने से तुम इससे द्वेष न करना मैं अपने पूर्व कर्मों का फल भोगने के लिए इसके पास में आबद्ध हो गयी हूँ । धार्मिक युक्तियों से ओत-प्रोत प्रिया के वाक्य सुनकर कपोत बहेलिये के समीप जाकर कहने लगा आपका स्वागत है । आप मेरे अतिथि हैं । कपोत ने बहेलिये के लिए अग्नि का प्रबन्ध किया, जिससे उसकी ठंड दूर हुई । फिर उसकी भूख शान्त करने के लिए अपने शरीर को ही अग्नि के समर्पित कर दिया । अग्नि में प्रविष्ट हुए उस कपोत को देखकर वह व्याघ्र दयार्द्र हो उठा ।

कपोत के निधन से उसे बड़ा दुख हुआ । अपने मांस को प्रदान करते हुए इस महात्मा कपोत ने मुझ जैसे पापी एवं नृशंस के लिए आदर्श उपस्थित कर दिया है । इसे विचार कर उसने अपना पिंजरा आदि तोड़ दिया व कपोती को भी छोड़ दिया तथा स्वयं वन में तपस्या के लिए चला गया । कपोती ने सोचा कि बिना पति मेरे संसार में रहना बेकार है । अतः उसने भी अपने को अग्नि को समर्पित कर दिया । पति के साथ व कपोती स्वर्ग में आनन्द से रहते थे तथा स्वर्ग में भी कपोत -कपोती के रुप में रहते थे ।

प्रस्तुत चित्र में अपनेकर्मों पर पश्चाताप् करते हुए बहेलिये का चित्र है, जो अपने हाथों से ही उस कपोती को अपने पास से स्वतन्त्र कर रहा है तथा नीचे स्वर्गीय आनन्द से परिपूर्ण स्वर्ग में भी कपोत- कपोती के रुप में एक - दूसरे की ओर मुंह किये हुए कपोत - कपोती बने हुए है, जो चित्र में अत्यन्त प्रफुल्लित दिखाई देते हैं । इस चित्र की रंग - योजना भी शेष चित्रों के समान पृष्ठभूमि हल्के पीले रंग से बनाई गयी हैं, तथा बहेलिया व कपोत - कपोती गहरे मटियाले रंग से बने हैं, तथा गहरे रंग से रेखांकन किया गया है, अब यह चित्र बहुत हल्का पड़ गया है ।

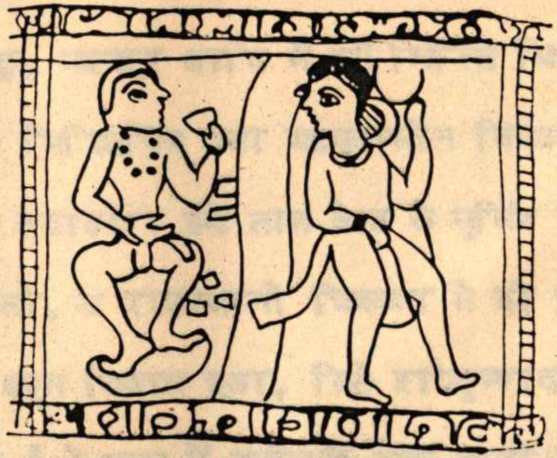

चित्र पैनल का अन्तिम चित्र बहुत अस्पष्ट है, मात्र आधा चित्र ही दिखाई देता है । पी0सी0 मुखर्जी ने इसमें एक स्त्री की आकृति बैठी हुई बताई है । बीच में झरना तथा उसके पार एक व्यक्ति का चित्रण हुआ बताया है , जो उस स्त्री की ओर देख रहा है । उस चित्र में अब मात्र बीच में बना झरना व उस व्यक्ति का चित्र ही बना दिखाई देता है । अन्य चित्रों से एक बात विशेष रुप से इस चित्र में अलग है , वह है कि जबकि और चित्र सीधे बने हैं, उनके अनुसार यह चित्र उल्टा बनाया गया है ।

पी0सी0 मुखर्जी द्वारा बनाये गये रेखांकन के द्वारा ऐसा प्रतीत होता है कि वह स्त्री अपने घुटनों के बल बैठी है और अपने हाथ में कुछ लिए हुए है, अथवा कुछ ब ना रही है ।

बानपुर की चित्रकला:-

जहाँ बुन्देलखंड शौर्य और पराक्रम के लिए अपना सानी नहीं रखता, वहाँ उसकी सांस्कृतिक धरोहर भी अद्वितीय रही है। यहाँ चित्रकला, मूर्तिकला व वास्तुकलाका इतिहास भी उतना ही अद्वितीय रहा है। यहाँ एक और बाघाट, देवगढ़, मदनपुर आदि में हमें भित्ति चित्रकला के प्रागैतिहासिक काल के उदाहरण प्राप्त होते हैं, वहीं मदनपुर की भित्तिचित्र कला मध्यकालीन चित्रकला का अनूठा प्रमाण है। बुन्देलकालीन भित्तिचित्रकला के प्राचीनतम उदाहरण हमें ताल बेहट के नृसिंह मन्दिर के भित्तियों पर मिलते हैं। बुन्देली चित्रकला, मुगलकालीन चित्रकला, व राजस्थानी चित्रकला से ही प्रभावित रही है। दतिया में राजा शत्रुजीत सिंह केसमय में चित्रकला का बहुत विकास हुआ, जिसे रायकृष्णदासजी ने दतियाकलम माना है। दतिया के राजा शत्रुजीत [18वींसदी] के समय में बुन्देलखंड कलम अपनी पूर्णता को पहुँचगयी थी। उस समय देव के अष्टछाप बिहारी सतसई और मतिराम के रस-राज की पूरीचित्रावली तथा व्यक्ति चित्र और धार्मिक चित्र बड़ी संख्या में तैयार हुए।[1] दतिया के महल की चौथी मंजिल के बाह्य प्रकोष्ठ में हमें रागमाला के सुन्दर भित्ति चित्र देखने को मिलते हैं। यहाँ की चित्रकला की विशेषता एक विशेष प्रकार के अलंकरण बनाने की हैं। जिसमें आरायशा पद्धति सेपहले लाल रंग की दीवार बनाई जाती थी, फिर कटिंग[छिद्रिंग]

1- रायकृष्ण दास - भारत की चित्रकला - पृ0-79

करके सुन्दर अलंकरण किया जाता था । सम्पूर्ण दतिया में इसी प्रकार का चित्रांकन देखने को मिलता है । तथा इसी विधा के चित्रों के सुन्दर उदाहरण हमें बानपुर के किले व प्राचीन बड़े मन्दिर में देखने को मिलते हैं । मुगल चित्र कला से प्रभावित बुन्देली चित्र हमें ओरछा के जहाँगीर महल व राय प्रवीन के महल मेंदेखने को मिलते हैं ।

ओरछा व तालबेहट दोनों से सम्बद्ध रहा है बानपुर, चन्देरी के राजा रामशाह के प्रपौत्र भारतशाह बहुत वीर थे । उन्होंने रामशाह व वीर सिंह देव के साथ अनेक युद्धों में भाग लिया था । रामशाह की मृत्यु के बाद भारतशाह को बार ‖ बानपुर के समीप ‖ का रामबनाया गया । सन् 1612 में भारतशाह ने ताल बेहट के किले का निर्माण कराया । उसी समय वहाँ नरसिंह मन्दिर का निर्माण कालिका गेट के समीप किया गया, जिसमें सुन्दर भित्ति चित्र बने हैं ।[1] जो टैम्परा पद्धति में हैं । डा० पी०सी० मुखर्जी के अनुसार बुन्देलों के प्रारम्भिक चित्रफूल बाग और शीशमहल ओरछा तथा दतिया के वीर सिंह के महल मेंप्राप्त होते हैं । उन्होंने इन्हें आयल व जल रंगों के चित्र कहा हैं ।[2] यद्यपि उस समय ऐसी कोई तकनीक नहीं थी । वास्तव में जिन चित्रों को पी०सी० मुखर्जी ने तेल चित्र कहा,

---

1- श्री वास्तव व खरे - बुन्देलों का इतिहास - विचार प्रकाशन दिल्ली, पृ0-59

2- पी०सी० मुखर्जी - रि०आ० एन्टि० आफ डिस्ट्री० ललितपुर , पृ0 28

वे आरायश ‖ फ्रेस्को ‖ पद्धति के हैं ,व जिन्हें जल रंग चित्र कहते हैं वे " टेम्परा " पद्धति के हैं । पी०सी० मुखर्जी ने बानपुर के महल के चित्रों का भी स्पष्ट वर्णन किया है । उन्होंने उन्हें 18वीं सदीउत्तरार्ध के माना हैं ।[1] ताल बेहट के चित्रों का पी०सी०मुखर्जी ने विशद वर्णन अपनी रिपोर्ट में किया है । ताल बेहट के नरसिंह मन्दिर में बहुत सुन्दर व प्राचीन कथाओं पर आधारित चित्र टेम्परा पद्धति में बनाये गये हैं ।

बानपुर चन्देरी के शासकोंके के राज्य में आता था, जिसमें बानपुर, तालबेहट व बार मुख्य थे । जब उन्होंने चन्देरी छोड़कर बार में अपनी बैठक स्थापित की तो सामाजिक दृष्टि से तालबेहट व बानपुर का बहुत महत्व हो गया ।

1-‖1‖ पी०सी० मुखर्जी - रि०आ० एन्टि० आफ डिस्ट्री ललितपुर, पृ० 28

‖2‖ आनन्द कृष्ण - दा मालवा पेन्टिंग - पृ० 13

बानपुर के महल में चतौरी ‡ चित्रशाला ‡ [1] के अब कुछ अवशेष प्राप्त होते है । सम्भवतया इयूरोज के आक्रमण के समय जब किला नष्ट किया गया था तभी यह चतौरी भी गिर गयी । अब मात्र दो ओर की दीवारें व छत का एक छोटा सा भाग ही शेष हैं । जिनमें बहुत कम चित्र हैं । जो बहुत ही अस्पष्ट हैं । छत ‡ सीलिंग ‡ का जो भाग शेष है चित्र सं0 89 उससे ही उस चतोरी के सौन्दर्य की कल्पना की जा सकती है । सम्भवतया पूरी छत सुन्दर अलंकरण से सुसज्जित थी । जिसमें सुन्दर फूल व पत्तियों से लहर दार अलंकरण किया गया । उसके नीचे आराश पद्धति में एक बार्डर बनाया गया है जिसमें अर्धकमल पत्र से अलंकरण किया गया है । पूरी चतौरी में मात्र 3 चित्रों के अवशेष ही प्राप्त होते हैं, जोअपनें जीवन की अन्तिम साँसे गिन रहे हैं । सम्भवतया छत व दोनों ओर की दीवारें गिर जाने के बाद लगभग पिछले 100 वर्षों से वर्षा व धूप की मार सहकर वेअपने जीवन काल से पूर्व ही नष्ट हो गये हैं । जो कुछ शेष है सम्भवतया वे वीर बुन्देलों के समान अन्तिम साँस तक लड़कर अपना कुछ अस्तित्व सुरक्षित रखे हुए हैं ।

चतौरी की पश्चिमी दीवार पर भित्तिचित्रों के अवशेष प्राप्त हैं, जिसमें एक योद्धा का चित्रण किया गया है । चित्र सं0 88 जिसके सिर पर लाल रंग की पगड़ी है । लगभग वैसे ही रंग का अंगरखा

1- <u>चतौरी :-</u> ‡चित्रकक्ष‡ - बुन्देल खंड में राजा के महल में एक ऐसा कक्ष रहता था ‡जहाँ वे सम्भवतया आराम करते थे ‡ जिसे चित्रों से सुसज्जित किया जाता था, तथा उसे चतौरी कहते थे ।

पहने है तथा हाथ में तलवार लिये हुए प्रतीत होता है । पश्चिमी दीवार में एकआले में एक अन्य चित्र के अवशेष देखे जा सकते हैं । चित्र सं0 87 इस चित्र में एक स्त्री के चित्र का आभास होता है । सम्भवतया यह कोई नायिका है जो अपने पीछे की ओर बने हुए किसी जानवर के साथ खेल रही है ।

इन चित्रों को बनाने वाला चित्रकार सम्भवतया ओरछा की रानी महल व जहाँगीर महल के चित्रों से प्रभावित रहा है । ओरछा के रानी महल में ऊपर वाले कक्ष में छतों के इसी प्रकार का अलंकरण है जिससे सम्पूर्ण छत पर अलंकरण किया गया है । देखने पर यह चित्र टैम्परा पद्धति के प्रतीत होते हैं ।

इसी महल के अन्दर के भाग में एक छोटा चौक है जो घनी झाड़ियों में भरा पड़ा है । उस चौक में दीवारों पर बहुत सुन्दर अलंकरण देखने को मिलता है । चित्र सं0 85 यह अलंकरण दतिया ओरछा व टहरौली आदि में प्राप्त आराश ‖ फ्रेस्को ‖ पद्धति की दीवार पर बनाये गये अलंकरण के समान ही हैं । तौड़ियों के नीचे की ओर प्रथम पंक्ति में लगभग 4 फुट चौड़ा एक बार्डर दिया गया है । उसके नीचे लगभग एक फुट चौड़ा एक अन्य बार्डर है जो नीचे की ओर मुख किये हुए पूर्ण विकसित पुष्प का अलंकृत रूप प्रदर्शित किया गया है । इस बार्डर के नीचे व दरवाजों के ऊपर आयताकार कुछ कम गहरे आले बनाये गये है । जिनमें चारों ओर बार्डर बनाया गया है जिनमें पूर्ण विकसित कमल से अलंकरण किया गया है । इन्हीं आलों के मध्य में बहुत सुन्दर अलंकरण हैं जो पुष्प, पत्तियों व विभिन्न मुद्राओं में तोतों से

सुसज्जित है चित्र सं0 86 । इस अलंकरण का बाह्य रूप कलात्मक आकृति लिये हुए है । इन आलों के मध्य में सुन्दर गुलदस्ते बनाये गये हैं । इस दीवार के बिल्कुल किनारे पर एक बहुत सुन्दर अलंकृत मुर्गे का चित्र है ।

सम्भवतया यह अलंकरण इस चौक के चारों ओर की दीवारों पर रहा होगा लेकिन अब मात्र दक्षिणी दीवार पर अपनी पूर्ण आभा के साथ सुरक्षित रूप में रहकर तत्कालीन चित्रकार की यादों को अपने में संजोये हुए उस काल की कहानी कह रहा है ।

इस प्रकार की चित्रण पद्धति में पहले चित्रकार आरायश या आला गीला पधति से दीवार तैयार करता है । दीवार तैयार करते समय वह जब सबसे ऊपर की परत पर जब अन्तिम लेप करता था, तब चूने में गहरा लाल रंग मिलाकर उस ऊपरी पर्त लगा देता था तथा उसकी घुटाई कर देता था । इस प्रकार उसे लाल रंग की दीवार प्राप्त हो जाती थी । अब इसमें वह अपनी इच्छानुसार कटिंग करके अलंकरण किया करता था ।

इसी पधति के चित्र हमें बानपुर ग्राम में प्राचीन जैन मन्दिर जो बड़े मन्दिर के नाम से विख्यात है कि दीवारों पर देखने को मिलते है चित्र संख्या 95 । जहाँ चित्रकार ने दतिया व ओरछा के चित्रकारों को भी पीछे छोड़ दिया जान पड़ता है । यहा की बाह्य भित्ति इसी प्रकार के चित्रों व अलंकरणों से भरी पड़ी है ।

यहाँ चित्रकार ने फूल पत्तियाँ ही नहीं, नारी का भी विभिन्न मुद्राओं में सफलतापूर्वक अलंकरण किया है । इसमें मोर से खेलते हुए नायिका, चकरी चलाती हुई नायिका व रागिनी तोड़ी आदि मुख्य हैं । यह मन्दिर तीन मंजिला हैं और तीनों ही मंजिलों की बाह्य भित्ति पर, विशेष रूप से पश्चिमी व दक्षिणी भित्ति पर अलंकरण दर्शनीय हैं ।

नीचे व ऊपर की दीवारों पर आर्च युक्त दरवाजों का आभास दिया गया है । जिनमें अन्दर व बाह्य खम्भों पर अलंकरण किया गया है । इन आभाषित दरवाजों के ऊपर फिर आयताकार आले बनाये गये हैं, जो पूर्णरूप से अलंकृत हैं । इनके ऊपर तथा तोड़ियों के नीचे फिर एक लगभग एक फिट चौड़ा बार्डर दिया गया है । जिससे विभिन्न प्रकार के पुष्प व पत्तियों का अलंकरण किया गया हैं ।

पश्चिमी दीवार पर अन्तिम पंक्ति में आभाषित दरवाजे के बराबर में एक आले में एक वीणा लिए हुए नारी आकृति बनाई गई है चित्र सं0 96 जिसके पास एक सुन्दर हिरण बना है । सम्भवतया यह रागिनी तोड़ी बनायी गयी है । जिसका मुख हिरण की ओर है, जैसे हिरण को देख रही है । इसके बाल पीछे की ओर जूड़े के समान बंधे है । जिस पर से अलंकृत दुपट्टा कंधों पर होकर पीछे तक झूलता हुआबंधा है । छोटी चोली व लंहगा पहने हुए यह एक स्त्री आकृति अनेक गहनों से युक्त हैं।

अनुपात की दृष्टि से यह आकृति कुछ छोटी प्रतीत होती है । इसके दोनो ओर दो तोते बनाये गये हैं । तथा चारों ओर बार्डर बनाया गया है ।

एक अन्य चित्र में एक आकर्षक मुद्रा में स्त्री की आकृति है, जो अपने हाथ में चकरी लिए हुए है चित्र सं0 97 । इसका एक हाथ सिर के ऊपर है, जिसमें चकरी की डोरी का सिरा पकड़े हुए है तथा दूसरा हाथ डोरी को मध्य से पकड़े हुए है । नारी की इस मुद्रा का चित्रण बुन्देलखंड के अन्य स्थानों के अतिरिक्त राजस्थान में भी बहुत हुआ है । यह नारी आकृति भी पिछले चित्र की नारी आकृति के समान वस्त्र व अलंकरणों से विभूषित है । इसी चित्र के ऊपर एक ओर स्त्री आकृति बनी हैं, जो मोर को खिला रही है । आकृतियां कुछ भारी व छोटी बनाई गई हैं ।

समस्त आभासित दरवाजे उनमें बने आर्चों व दरवाजों के ऊपरी भागों पर कलात्मक सुन्दर अलंकरण बनाये गये हैं, जिसमें मोर, तोते, पुष्प, कलिया, पत्तियां, गमलों आदि से सुन्दर अलंकरण किये गये हैं । इसी मंदिर के अन्दर की प्रथम व दूसरी मंजिल की दीवारों पर भी इसी पद्धति से ऐसे ही सुन्दर अलंकरण किये गये हैं ।

लगभग 50 वर्ष पूर्व बने नये जैन मन्दिर की बाह्य तोड़ियों में भी कुछ चित्र बने है चित्रसं099-100, जिनमें वार, हाथी, घोड़े, व शेर आदि का चित्रण किये गया है । ये चित्र बहुत कलात्मक नहीं हैं, तथा

किसी स्थानीय कलाकार द्वारा बनाये गये प्रतीत होते हैं । शौर अनुपात में एक लम्बा बनाया गया है । घोड़े की गरदन बहुत भारी है । दौड़ते हुए हिरण के चित्र में लय देखी जा सकती है ।

डा० पी०सी० मुखर्जी ने बान्पुर किले की चतौरी में बने चित्रों का रेखाकन अपनी रिपोर्ट के द्वितीय खण्ड में दिया है । जिसे देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि बान्पुर की यह चतौरी अपनी वैभव काल में बहुत सुन्दर चित्रों से सुसज्जित रही होगी । पृष्ठ 96 पर दिये गये रेखांकन के अनुसार पश्चिमी दीवार पर निम्न प्रकार के चित्र बने थे रेखाचित्र-9।

पूरीदीवार पर सबसे ऊपरबेल बनाकर अलंकरण किया गया था । उसके नीचे पूरी दीवार पर एक चौड़ा पैनल बनाया गया हैं जिसमें सर्वप्रथम राजसभा का चित्रण हैं । इसमें दाहिनी ओर एक सिंहासन पर राजा बैठें हुए है उनके पीछे चौबदार बनाए गये हैं । सामने दरबारी, आदि बनाये गये हैं । पूरीसभा एक शामियाने के नीचे दर्शाई गयी हैं , जो चार बांसों या खम्भों पर बंधा हैं । इसके आगे गज, ग्राह युद्ध का चित्रण हैं । एक बड़ा पेड़ बनाया गया है जिस पर मोर आदि चित्रत हैं । उसके नीचे दो छोटे हाथी बनाये गये हैं, उनके आगे एक बड़ा हाथी बना हैं जिसका बांया पैर ग्राहने पकड़ रखा हैं । ग्राह काफी लम्बा बनाया गया है, जिसके चार पैर है, तथा जिसकी त्वचा काटेदार बनायी गयी हैं । ग्राह के पीछे विष्णु भगवान का चतुर्भुज रूप बनाया गया है । इसी चित्र के थोड़ा ऊपर शेषशायी विष्णु

बनाये गये हैं जिसमें शेषनाग के कई फण बनाये गये है । लक्ष्मी विष्णु के चरण दाब रही हैं । नाभिनाल से निकले कमल पर ब्रह्मा आसीन दर्शाये गये हैं । इस दृश्य के चारों ओर एक रेखा खींचकर समुद्र का अंकन किया गया है । इसी के बराबर में ऊपर की ही ओर एक अन्य शेषशायी विष्णु का चित्रण है जिसमें नाग एक फण युक्त बनाया गया है । इसके नीचे एक बहुत बड़े जानवर को भाले से एक घुड़सवार मारता हुआ बनाया गया है । इस पूरे चित्र पैनल के नीचे अनेक चित्र बनाये गये है बीच में दरवाजे का अंकन किया गया है । दरवाजे के दाहिनी ओर ऊपर राजदरबार का दृश्य अंकित हैं । उसके नीचे एक बहुत बड़े अन्तराल में एक नाचते हुए नायिका बनायी गयी है सम्भवतया यह चित्र अधूरा रह गया है । दरवाजे के बराबर में ही दरवाजे की मध्य ऊँचाई पर तोप चलाते हुए सिपाही बनाये गये है । ऊपर दरवाजे के कोने पर मकरासुर का मुख चीरते हुए हनुमानजी का चित्रण किया गया है । उसके आगे दरवाजे के ऊपर मतस्य अवतार का अंकन है जो चतुर्भुज है और किसी राक्षस की चोटी से पकड़कर मार रहे हैं । दरवाजे के बाँयी ओर का चित्र काफी बड़ा बनाया गया है । इसमें राम द्वारा बाली के वध का अंकन हैं । इस चित्र के मध्य में पेड़ बनाये गये हैं । पेड़ के बाँयी ओर बाली व सुग्रीव लड़ते हुए बनाया गया हैं व पेड़ के दाहिनी ओर सबसे आगे राम बाली पर तीर चलाते हुए बनाये गये हैं , उसके पीछे लक्ष्मण व हनुमान का अंकन किया गया हैं । इस भित्ति पर नीचे के कुछ भाग खाली पड़ा है तथा दाहिनी ओर का नृत्यमग्ना नायिका चित्र भी अधूरा पड़ा हैं जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है, कि किन्हीं कारणों से यह चित्रण कार्य यहाँ अधूरा ही छोड़ दिया गया हैं ।

पृष्ठ 97 पर जो रेखा चित्र छपा है उसे पी०सी० मुखर्जी ने पूर्वी दीवार के दायीं ओर से अर्धभाग का चित्रण लिखा है (रेखाचित्र-10)। सम्भवतया अर्धभाग खण्डित होकर गिर गया हो, और शेष दाहिना अर्धभाग उस समय चित्रों से पूर्ण रहा होगा। जिसमें सबसे ऊपर एक लम्बा चित्र पेनल हैं। जिसमें महलों के दृश्य अंकित किये हैं जो तीन भागों में दर्शाया गया है। उसके आगे नदी में स्थान करती स्त्रियाँ बनी हैं, उसके बाद कुछ घुड़सवार बनाये गये हैं। इस चित्र पैनल के नीचे नदी का अंकन किया गया हैं। नदी के नीचे का अन्तराल चार लम्बाई के भागों में बाँटा गया है, लेकिन सम्भवतया पूरा चित्र एक ही लगता है एक चित्र में दाहिनी ओर एक पर्वत शिखर बना हैं। जिस पर बहुत सारे मन्दिर बनाये गये है। उसके नीचे नदी का अंकन किया गया है तथा लम्बाई के बने चारों पैनलों में हाथी, घुड़सवार, पैदल, पाल की आदियों का भी अंकन हैं, जो सभी इस मन्दिर समूह की ओर आते हुए प्रतीत हो रहे हैं। कई व्यक्ति हाथ जोड़े हैं, तो कई अन्य दण्डवत कर रहे हैं। इस प्रकार पूरे चित्र का सम्बन्ध इस पर्वत शिखर से ही दर्शाया गया हैं।

तीसरा रेखांकन किस दीवार के चित्रों पर आधारित हैं, इसका वर्णन डा० पी०सी० मुखर्जी ने नहीं किया है, लेकिन यह रेखाचित्र देखने में बहुत सुन्दर व महत्वपूर्ण प्रतीत होता हैं।

यह चित्र पैनल लम्बाई में छः भागों में बँटा है रेखाचित्र॥। सबसे ऊपर के चित्र पैनल में कृष्णलीला के अनेक चित्र हैं, तथा उसके नीचे यमुना का अंकन किया गया है। शेष पैनलों में जुलूस का चित्रण हैं। प्रथम पैनल में दायीं ओर कालियाँ नाग को नाचते हुए श्रीकृष्ण का अंकन हैं। उसके आगे पर्वत के नीचे नृत्य मग्न कृष्ण -राधा व गोपियाँ हैं । उसके बाद कृष्ण द्वारा चीर-हरण का दृश्य बनाया गया है। कृष्ण पेड़ पर सभी गोपियों के वस्त्र लिए हुए बैठे हैं तथा सभी नग्न गोपियाँ कृष्ण से कपड़ों के लिए याचना कर रही हैं। कुछ गोपियां नदी के अंदर ही तैर रही हैं । उसके बाद गाय दुहते हुए, श्रृंगार करते हुए, नृत्य करते हुए आदि अनेक कृष्ण लीलाओं का चित्रण किया गया हैं। चित्र के बिल्कुल बाये महारास का चित्रण किया गया हैं ।

तीसरे पैनल में दरबार, घुड़सवार आदि बने हैं शेष नीचे के चित्र पैनल में घुड़सवार हाथी, ऊँट, रथ तथा पैदल सिपाहियों का अंकन किया गया हैं ।

इन रेखाचित्रों को देखकर ऐसा प्रतीत होता हैं कि अबसे लगभग 100 वर्ष पूर्व जब पी०सी० - मुखर्जी ने इस क्षेत्र का सर्वेक्षण किया होगा , उस समय सम्भवतया : यह चतोरी आज की अपेक्षा कम खण्डित रही होगी, तथा उस शेष बची चतोरी की दीवारों पर वर्णित चित्र पूर्णतया स्पष्ट रहे होंगे । लेकिन बाद में काल के दिवदांत प्रभाव से यह चतोरी और अधिक खण्डित हो गयी तथा मौसम के लम्बे प्रभाव से उस समय के दृष्टव्य चित्र अब पूर्णतया नष्ट हो गये, तथा चतोरी भी उस समय की अपेक्षा अब अधिक खण्डित हो गयी हैं। अब तो मात्र उन चित्रों के आधार पर उस चतोरी के चित्र वैभव की कल्पना ही की जा सकती हैं ।

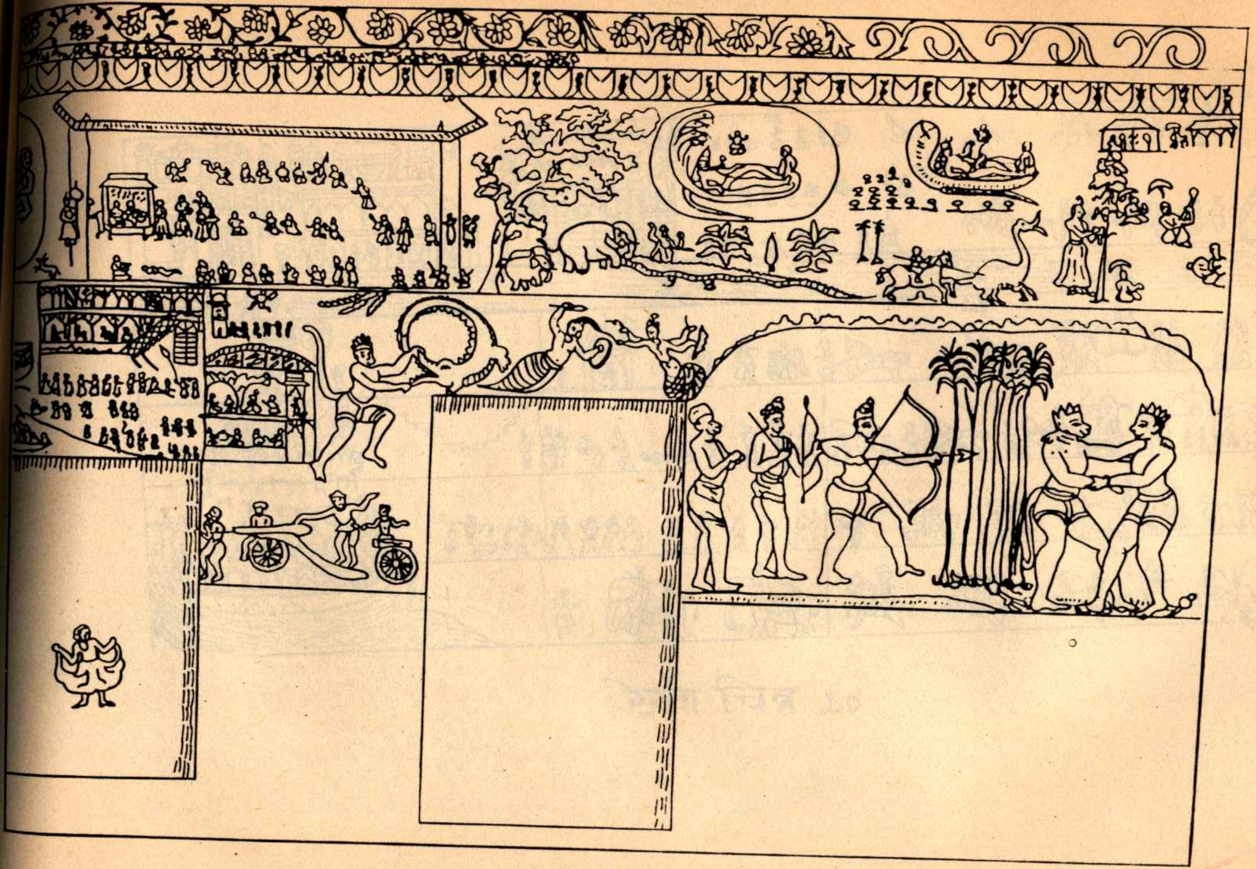

रेखा चित्र – ९

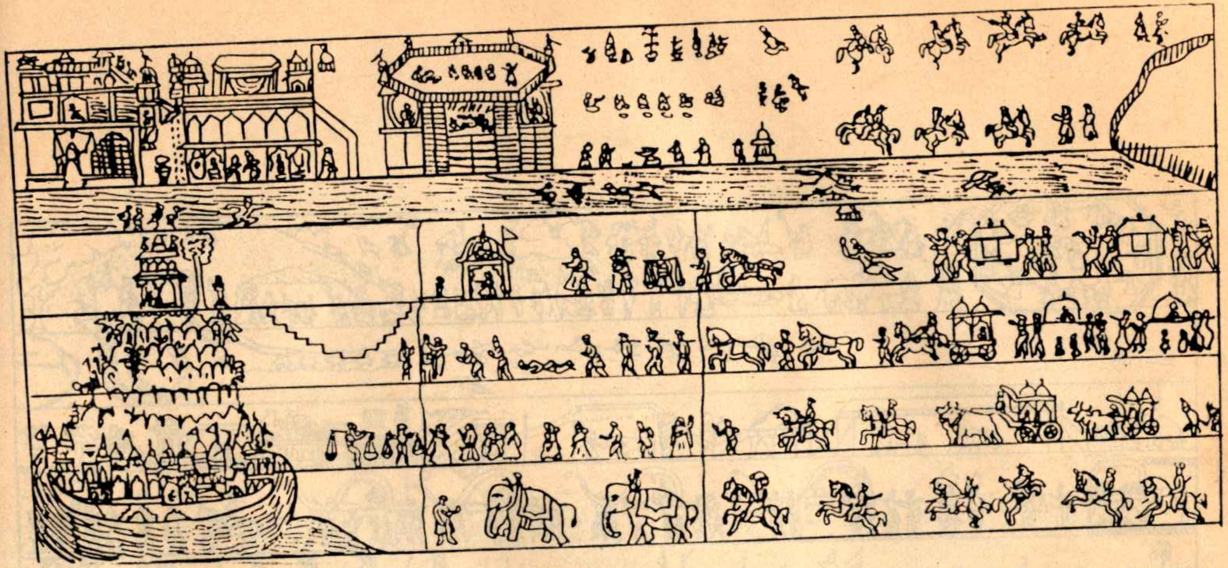

रेखा चित्र 10

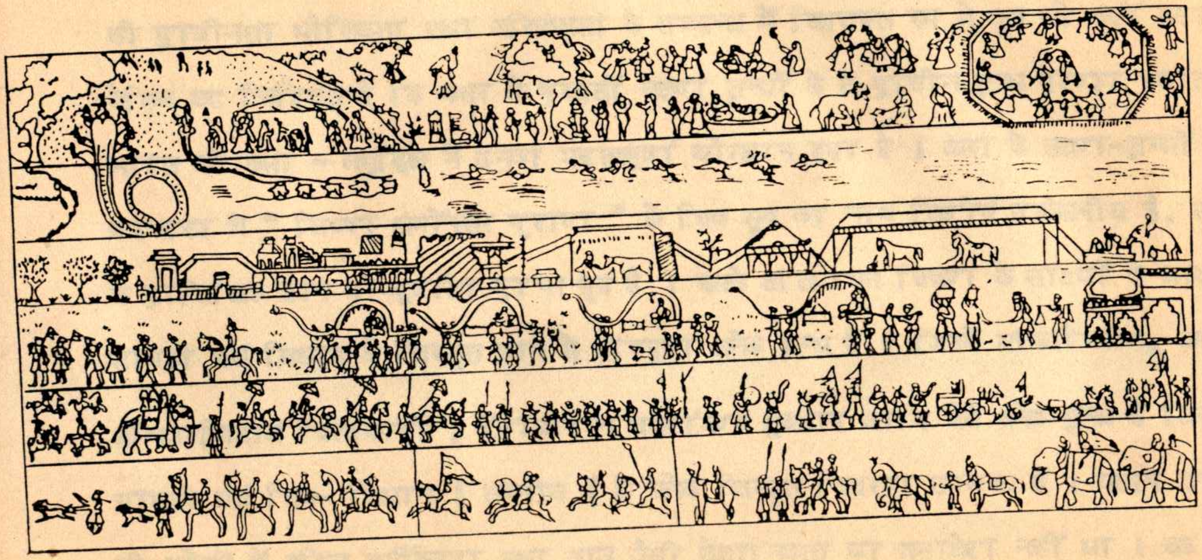

रेखा चित्र 11

<u>भित्ति चित्र कला पधति :-</u>

भारत का प्राचीन साहित्य बहुत समृदध रहा है । परम्परा से ऋषियों के नाम पर ग्रन्थों की प्राचीनता मौलिकता तथा अविकलता के सम्बन्ध में विश्वस्त रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता, लेकिन यह निश्चित है कि कला के परवर्ती लक्षण ग्रन्थों के वे प्राचीन ग्रन्थ प्रेरणा स्त्रोत रहे और भारत की कला - समृदिध में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । कला के लक्षण-ग्रन्थों की इस परम्परा में " विष्णु धर्मोत्तर पुराण " के चित्र सूत्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है, उसमें कलाओं के प्राविधिक ज्ञान को पूर्णता प्राप्त हुई है । इसके अतिरिक्त चित्रण के साक्ष्यों के साथ चित्रण - सामग्री एवं विधान के विस्तृत ज्ञान से परिपूर्ण अनेक ग्रन्थ हैं । जिनमें मानसोल्लास, अपराजितपृच्छा, अभिलाषितार्थ चिंतामणी , शिल्परत्न समरांगण सूत्रधार आदि ऐसे अनेक ग्रन्थ हैं जिनमें चित्रण सामग्री एवं चित्र- विधान (तकनीक) के अनेक विस्तृत विवरण उपलब्ध हैं । यद्यपि उनके लिखने की शैली में अधिक वर्गीकरण तथा आज जैसी वैज्ञानिकता का समावेश नहीं था । वह परम्परा, स्थान और व्यक्तिगत प्रयोगों पर अधिक आधारित थी ।

साहित्य तथा शिल्पग्रन्थों में चित्रण के अधिक तर उदाहरण भित्ति चित्रों के ही प्राप्त होते हैं । चित्रण के लिए प्रयुक्त सामग्री तथा उसके अनुपात के साथ उपयोग का विवरण चित्र सूत्र में विस्तार से किया गया है । सामग्री व विधान की दृष्टि से भित्ति चित्रण सबसे पृथक है । विस्तृत

अन्तराल , दृढ चित्रभूमि की तैयारी रंगों का चुनाव तथा रंगों की प्रकृति का अनुभव और परम्परागत सिद्ध अनुभव आदि के कारण जितना परिश्रम तथा दक्षता भित्ति चित्रों में अपेक्षित है अन्य किसी चित्रों में नहीं । भित्ति चित्रों का विधान एक अनुभव पूर्ण व नियोजित प्रक्रिया हैं । चित्रण के पश्चात् रंग भित्ति से मिलकर एक ही हो जाते है इसीलिए भित्ति के निर्माण का चित्रकार को पूर्ण ज्ञान आवश्यक हैं । परम्परागत व स्थानीय सामग्री व रंगों की प्रकृति का ज्ञान बहुत आवश्यक है । स्थानीय सामग्री के उपयोग के कारण ही भित्ति के प्लास्तर तथा रंगों की सामग्री में अन्तर मिलता है । जैसे जयपुर पद्धति अर्थात राजस्थान में पत्थर के , चूने का प्रयोग किया जाता है, लेकिन बुन्देलखंड में कौड़ी का चूना प्रयोग करने के उल्लेख मिलते हैं ।

भित्ति की तैयारी, कार्य विधि तथा माध्यम के आधार पर भित्ति चित्रण की तीन प्रणालियाँ प्रचलित रही हैं ।

चूने के प्लास्तर से बनी सूखी चित्रभूमि पर पानी अथवा चूने के पानी में रंग मिलाकर चित्रण करने को " फ्रेस्को " नाम से जाना जाता है । गीले चूने के प्लास्तर पर किये गये चित्रण को शुद्ध फ्रेस्को " फ्रेस्को बुनो " कहा जाता है । सामान्य भित्ति पर चूने के पतले लेप पर रंग में विशेष पदार्थ को सुखकर पानी में अघुलनशील हो जाते हैं मिलाकर चित्रण करने को "टेम्परा" प्रणाली कहा जाता हैं । गीले प्लास्तर पर चित्रण की पद्धति का प्रधान केन्द्र जयपुर रहा हैं ।

राजस्थान का जनमानस इसे " मोराकशी " आलागीला" और आरायश के नाम से जानता है। ¹ इस प्रणाली के भित्ति चित्र राजस्थान में ही नहीं, निकट वर्ती बुन्देल खंड में भी देखने को मिलते हैं। सम्भवतया जयपुर के कलाकार ही देश के अन्य भागों में चित्रण के लिए बुलाये जाते थे। बुन्देलखंड में सम्भवतया यहाँ के चित्रकारों एवं स्थानीय चित्रकारों के सहयोग व कुछ स्थानीय सामग्री से ही चित्रण किया है। मदनपुर व बानपुर में दो प्रणालियाँ हमें विशेष रूप से चित्रों में देखने को मिलती हैं।

1- टेम्परा 2 - फ्रेस्को (आरायश)

1- टेम्परा :-

टेम्परा चित्रण की उस विधि को कहते है जिसमें माध्यम के रूप में किसी " पायस " का उपयोग किया जाता है। टेम्परा पद्धति में " पायस " ऐसा माध्यम रहता है जो पानी में घुलनशील होता है, लेकिन सूखने पर अघुलनशील परत का निर्माण कर लेता है। प्रारम्भ में अण्डे की जर्दी काप्रयोग किया जाता था, क्योंकि अण्डा प्रकृति का श्रेष्ठतम पायस है जो चित्रण माध्यम के

1- देवकी नन्दन शर्मा - " भित्ति चित्रण की जयपुर प्रणाली और उसका प्रमुख शिक्षण केन्द्र - वार्षिकी -1963, पृ०सं० -5

रूप में अत्यन्त सफल रहा है कुछ चित्रकार सम्पूर्ण अण्डा व कुछ अण्डे की सफेदी (एलब्यूमिन) का प्रयोग ही करते थे । गोंद , ग्लेसरीन, तथा किंचित अलसी के तेल का मिश्रण भी अच्छा पायस बनाता है । जिसे गोंद टेम्परा कहते हैं । कलाकारों ने अपने अनुभव के अनेकों पायसों की खोज की है । टेम्परा का प्रमुख अंग इसका यह पायस रूप ही होता है । यह पायस रंग के साथ चित्र भूमि पर चिपक जाता है तथा सूखकर पानी में अघुलनशील हो जाता हैं ।

टेम्परा रंगों को पानी में घोट कर तैयार किया जाता है । माध्यम के साथ रंगों को घोटकर अधिक समय नहीं रखा जा सकता है क्योंकि माध्यम से रासायनिक क्रिया प्रारम्भ हो जाती है , जिससे पायस की बाँधने की शक्ति क्षीण होती चली जाती है । टेम्परा रंगों से माध्यम की शक्तिशाली चिपक के कारण भित्ति का कठोर होना आवश्यक है । सफेद चमकदार ठोस धरातल टेम्परा के लिए उपयुक्त रहते है । मदनपुर के छोटी कचहरी में बने भित्ति चित्र इसी चित्रण पधति से बनाये गये हैं । यहाँ की भित्ति कठोर पत्थर की है जिस पर सफेद या (हल्के पीले) रंग का एक लेप कर दिया गया है तथा उस लेप पर विभिन्न रंगों के सहयोग से चित्रण किया गया है ।

फ्रेस्को - फ्रेस्को ब्रूनो - शुद्ध फ्रेस्को :-

फ्रेस्कों शब्द इटली के " फ्रेश "शब्द से बना है । जिसका अर्थ "गीला" ताजा" है । इसी प्रकार ताजी भित्ति पर बनाए गये चित्र को फ्रेस्को ब्रूनो कहा गया । फ्रेस्को चित्रण विधि में गीले चूने के प्लास्टर पर पानी अथवा चूने के पानी अथवा गीले चूने के माध्यम से रंगों को मिलाकर चित्रण किया जाता है । गीले प्लास्टर से धीरे - 2 नमी उड़ जाती है तथा चूना हवा से रासायनिक क्रिया करके हवा से कार्बोलिक एसिड़ गैस सोख लेता है और पानी में अघुलनशील के कैल्शियम कार्बोनेट बन जाता है । कैल्शियम कार्बोनेट की यह पतली चमकदार परत रँग की ऊपर सतह पर जम जाती है , जिससे रंग स्थाई हो जाता है । चूंकि रंग गीले प्लास्टर पर ही लगाये जाते हैं। अतः प्लास्तर का पानी व रंग में प्रयुक्त पानी एक होकर प्लास्तर में गहरे तक बैठ जाते हैं । तथा प्लास्तर का अविभाज्य अंग बन जाते हैं । इस चित्रण विधि में चूना की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इसीलिए रंगों आदि के प्रयोग में दूरदर्शिता व अनुभव की विशेष आवश्यकता रहती है । ऐसे पदार्थ जो चूने के साथ रासायनिक क्रिया करते है , उनका प्रयोग नहीं करना चाहिए अन्यथा चित्र के नष्ट होने का खतरा रहता है । इसीलिए इस पधति में चित्रकार नये - नये प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र नहीं रहता है ।

भारत में शास्त्रीय ज्ञान व लोकानुभव के सम्मिश्रण से अल्प भिन्नताओं के साथ प्राचीन

प्राचीन काल से ही यह पधति परम्परागत रूप से चली आ रही है । राजस्थानी चित्रकारों ने रंगों को प्लास्तर के साथ एकाकार करने में ठुकाई, घिसाई व घालिश का प्रयोग विशेष रूप से इस पधति में किया है । वहाँ चूने को शोधित करने के लिए गुड़, छाछ आदि का प्रयोग किया जाता हैं ।

भित्ति चित्रण में प्रयुक्त सामग्री :-

चूना :- प्राकृतिक चूना कैलशियम कार्बोनेट होता है । जलाये जाने पर यह कैलशियम आक्साइड बन जाता है तथा कार्बोलिक एसिड गैस निकल जाती है । पानी में भिगोने पर यह उष्मा छोड़ता है तथा कैल्शियम हाइड्रो आक्साइड हो जाता है । सूखने पर वायु मंडल से कार्बोलिक एसिड गैस सोखकर कैलशियम कार्बोनेट हो जाता है । रंगों के उपर इस कार्बोनेट की पतली झिल्ली जब अवरोधक के रूप में जम जाती है । यदि चूने में जिप्सम का अंश होता है तो वह चित्रण के प्रयोग लायक नहीं होता । इसके लिए जयपुर के पास राहोली नामक स्थान से प्राप्त चूना सर्वोत्तम माना जाता है । चूने को तैयार करने के लिए पानी में भिगो दिया जाता है तथा वर्षों तक पानी में ही पड़ा रहता है तथा समय पर इसके उपर आये हुए पानी व कार्बेनेट की पतली परत को उतारते रहते हैं और नया पानी बदलकर हिलाते रहते हैं । साथ ही इसमें गुड़, छाछ, दही आदि की चाट लगाते रहते हैं जो चूने के शुद्धीकरण में सहायक होती है । पुराना भीगा चूना मक्खन के समान हो जाता है।

.. भीगे चूने का प्रयोग निषेध है क्योंकि नये चूने के कण वायुमण्डल से पानी सोखकर चटकते रहते हैं जिससे दीवार व रंग खराब होकर गिर जाते हैं ।

संगमरमर का चूर्ण {झीँकी} {मारबल डस्ट}:-

संगमरमर का चूने का प्रयोग चूने के साथ मिलाकर प्लास्तर बनाने में किया जाता है, जिससे चूने के कार्बोनेट बनाने की प्रक्रिया सरल हो जाती है । संगमरमर के चूर्ण के कण कोणीय होने के कारण प्लास्तर के अधिक दृढ़ता प्रदान करते हैं । इस पधति में दो प्रकार की झींकी का प्रयोग किया जाता है । " मोटी " तथा "बारीक" , मोटी झींकी अन्दर के प्लास्तर में काम आती है तथा बारीक झींकी का प्रयोग ऊपरी सतह पर लगाने के लिए किया जाता है ।

दीवार भित्ति का चयन :-

चित्रण के लिए ऐसी भित्ति का चुनाव किया जाता है, जो सूखी है तथा हवा का आवागमन भली - प्रकार हो । दीवार में दरार न हों तथा ऊपरी सतह पर सीमेंट न लगा हो । यदि दीवार नयी ही है तो उसे एक वर्ष के लिए छोड़ दिया जाता है ताकि वर्ष भर के मौसम का प्रभाव उस पर हो जाय । प्लास्तर करने के लिए दीवार पर छैनी द्वारा टचाई की जाती है । कम भीगी हुई दीवार प्लास्तर की नमी सोख लेती है , जिससे प्लास्तर की दीवार में पकड़ कमजोर हो जाती है ।

भित्ति तैयार करना - लेप्यकर्म :-

भली प्रकार से तर भित्ति पर एकव तीन के अनुपात में क्रमशः चुना व बजरी से दीवार की दर्ज भर दी जाती है । इसे " सरेसी " करना कहते हैं । फिर प्लास्तर की मोटी परत कर दी जाती है । इसमें एक भाग चूना व तीन भाग मोटी झींकी का प्रयोग करते हैं । इसका प्लास्तर मोटा लगाया जाता है फिर पानी की छींटे देकर लकड़ी के " थट कटे " से घोटा जाता है प्लास्तर ठीक लग जाने पर दीवार को छोड़ देते हैं । यह दीवार चित्र का प्रथम आधार होती है । चित्रांकन प्रारम्भ करने से पूर्व इस दीवार में यह भली प्रकार देख लेना चाहिए । अब पहले बनी दीवार को खुरदार कर लेना चाहिए । भीगने के बाद बारीक झींकी तथा चुना को आधा - आधा अनुपात में पतला कोटिंग (पर्त) करना चाहिए , फिर उसे " झावे " पत्थर से समान घिसकर मसाले को बैठा लें, इस प्रकार तीन चार कोट करके झावे से घोंटते जाते हैं, जिससे दीवार अधिक साफ व मजबूत हो जाती है । अब इस दीवार पर केवल छने हुए चूने की कोटिंग विशेष प्रकार से कूचा (कूची) से की जाती है तथा घोटते रहते हैं । तीन - चार कोट करने पर दीवार बहुत मुलायम व चिकनी हो जाती है । इसे और चिकना बनाने के लिए अकीक पत्थर से घुटाई करते हैं ।

बुन्देलखंड में विशेष रूप से दतिया बान्पुर में जो अलंकरण किया गया है वह इसी प्रकार की भित्ति पर किया गया है । वहाँ इसे बनाने के लिए जो चूने का अन्तिम कोटिंग कियाजाता था,

इसमें लाल रंग मिला लिया जाता था अब उसकी कोटिंग करके घुटाई आदि करने से ऊपरी सतह सुन्दर चिकनी लाल रंग की बन जाती थी । विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार भित्ति पर चूने के साथ " साईज " [कोई ग्लू] मिलाकर तीन पर्त प्राइमिंग की लगानी चाहिए ।

मानसोल्लास के अनुसार " साईज "में सफेद मिट्टी लगाकर तीन अस्तर लगाने चाहिए । फूंका हुआ शंख अथवा कोड़ी तथा नील गिरी से प्राप्त मिट्टी भी सफेद मिट्टी के साथ प्रयुक्त की जाती थी ।[1] बुन्देलखंड में अन्तिम सतह पर किये गये चूने के प्रयोग में शंख या कोड़ी को फूंकर कर बनाया गया चूना ही प्रयोग किया जाता था ।

चित्रण विधि :-

भित्ति के जितने भाग को एक बैठक में पूर्ण किया जा सकता है उतना ही दीवार पर खाके से उतारते हैं । ट्रेसिंग कर लेते हैं अथवा सीधा भी अंकन किया जा सकता है । ट्रेसिंग करने के लिए बारीक चिकने कागज पर सुई से छेद करके [पिन होल ट्रेसिंग]बना ली जाती है । इस कागज को

1- डा० मोती चन्द " जैन मिनिएचर पेन्टिंग्स फ्राम वेस्टर्न इंडिया - पृ० -90,91

दीवार पर रखकर , एक कपड़े की पोटली में कोयले का महीन चूर्ण या हिरमिच लेकर झाड़ते हैं, जिससे दीवार पर रेखाओं के चिन्ह बन जाते हैं । भित्ति पर रंग लगाकर " नैले " [2] से ठोकते हैं, ऐसे करने से रंग प्लास्तर में बैठ जाता है । शेडिंग, रेखांकन आदि सभी में रंग लगाने के पश्चात ठोकते रहते हैं । रंग की परत पतली व दो - तीन बार लगायी जाती है , जिससे रंग अधिक गहराई तक बैठ जाता हैं रंग प्लास्तर में बैठा या नहीं इसके लिए बारीक कपड़े की गद्दीलेकर रंग पर फेरते हैं , जहां से रंग उतरता है वहां और ठुकाई की जाती है । यह प्रक्रिया दो - तीन बार करने से पूरा चित्र तैयार हो जाता है । अब उस पर अकीक पत्थर से घुटाई करते हैं , जिससे चमक आती रहती है । अधिक चमक के लिए उस पर नारियल का तेल यासूखा गोला कस कर हाथों में मलकरहाथों पर आये तेल को चित्र पर लगाते हैं । जिससे तेल के धब्बे चित्र पर नहीं पड़ते । तेल लगाने के पश्चात फिर अकीक पत्थर से घुटाई करते हैं । इस प्रकार पूरा चित्र पूर्ण हो जाता है ।

समस्त बुन्देल खंड में आरायशा की चित्रण विधि अलग रही है , जिसके उदाहरण बानपुर में बहुत मिलते हैं ।

2- नैला - लोहे का बना रंग लगाने के नाइफ (जैसा मोटा एक औजार होता है जिससे भित्ति को ठोकते हैं ।

बानपुर की चित्रण विधि :-

बानपुर में जो आरायशा के भित्ति चित्र प्राप्त होते हैं उनकी अपनी अलग पधति है । वहाँ का चित्रकार दीवार की तैयारी तो अन्य स्थानों के चित्रकारों की भाँति करता था । लेकिन वह तैयार दीवार पर रंगों से चित्र नहीं बनाता था , बल्कि उसकी दीवार की ऊपरी पर्त गहरे लाल रंग की होती थी, जबकि नीचे की पर्त सफेद ही रहती थी । वह दीवार तैयार करने के बाद उस पर ट्रेसिंग द्वारा चित्र या डिजाईन बना लेता था । फिर तेज विशेष प्रकार के औजारों से उन डिजाइनों व चित्रों के रेखांकन के स्थान पर से ऊपरी लाल पर्त काटकर [ग्रेविंग] करके निकाल देता था । जिससे अन्दर का सफेद भाग चमकने लगता था । इस प्रकार लाल पृष्ठ भूमि पर सफेद रंग के डिजाईन व चित्र बन जाते थे । यह प्रथा समस्त बुन्देल खण्ड में देखी जा सकती थी । दतिया में तो लाल के स्थान पर अन्य रंगों की पृष्ठ भूमि देखने को मिलती है । इस प्रकार बानपुर के चित्र रंगों व द्वारा बनाये गये न होकर [कटिंग] द्वारा बनाये गये चित्र कहलाते हैं । बानपुर के जैन मन्दिर में बिना डिजाईन की गयी तैयार दीवार देखी जा सकती है , जो किसी कारणवश अधूरी छोड़ दी गयी हैं ।

चित्रण में प्रयुक्त रंग :-

चूना एक क्षार होता है अत: रंगों से रासायनिक क्रिया करके उनकी रंगत बदल देता है । अत: चूने के साथ प्रयुक्त करने के लिए रंगों में स्थायित्व में खनिज रंग सबसे अच्छे माने जाते हैं । यह

॰ मिट्टी और पत्थरों से प्राप्त किये जाते हैं । रामरज , हिरमिच, शिंगरक, हरा भाटा, नील, तिल्ली के तेल का काजल, चूना भित्ति चित्रण के प्रमुख रंग है । इनके अतिरिक्त पेवड़ी, लाजवर्द, सुनहरी, रूपहली रंग भी प्रयुक्त किये जाते हैं । रंगों को बनाने की पृथक विधियाँ हैं ।

रामरज, गेरु आदि को पानी के साथ पत्थर पर घिसकर, छानकर निथार लेते हैं फिर उसे गीली अवस्था में ही रख लेते हैं अथवा सुखाकर भी रखा जासकता है । प्रयोग के समय पानी के साथ घोलकर प्रयोग कर लेते हैं । हिंगुल, सिंदूर आदि को भेड़ के दूध में घोटकर नींबू से शुद्ध करके निथार लिया जाता है । रंगों को हल्का या गहरा करने के लिए चूने व काजल का प्रयोग किया जाता हैं ।

भित्ति चित्रों में प्रयुक्त रंग :-

सफेद :- सफेद रंग के लिए मानसोल्लास में फूंका हुआ शंख चूर्ण को प्रयोग का वर्णन है । शिल्परत में उन स्तर लगाने के लिए प्रयुक्त सफेद रंग {धवलवर्ण" } इसके शंख से प्राप्त किया जाता था । इसे नीम के गोंद के माध्यम में प्रयुक्त करते थे । कई स्थानों पर सफेद रंग के लिए चूने व खड़िया के प्रयोग का बर्णन है ।

इसको तैयार करने के लिए शंख चूर्ण और खड़िया को पहले पानी के साथ खरल करते हैं

फिर उसे पानी भरकर छोड़ देते हैं जिससे मोटा कण नीचे बैठ जाता है, इसे निथार लेते हैं। फिर गोंद के साथ प्रयोग किया जाता हैं।

चूने के प्रयोग के लिए पुराने भीगे हुए चूने को कई बार निथार कर बहुत बारीक कपड़े में छान लेते हैं। फिर सफेद रंग की तरह प्रयोग कर लेते हैं।

मदनपुर के भित्ति चित्रों में पृष्ठ भूमि शिल्परत्न में वर्णित विधि के अनुसार ही बनायी गयी प्रतीत होती है, जो लम्बे वातावरण के प्रभाव से कुछ पीली [क्रीम कलर] की होती गयी है।

लाल रंग :-

प्रकृति में यह रंग पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। लाल पत्थर, मिट्टी आदि सभी में लोह आक्साईड के रूप में लाल रंग होता है। मध्यकालीन संस्कृत साहित्य में लाल रंग की अनेक रंगतें वर्णित हैं।

गेरु [1] रेड़ आकर :-

प्राचीन चित्रों में गेरु अत्यन्त उपयोगी रंग रहा है। इसे पत्थर पर घोटकर पानी से निथार कर शुद्ध करके प्रयोग किया जाता है।

1- चित्र लक्षण - श्लोक संख्या - 1/8, 1/24 पृ0 - 76

सिन्दूर [2]:-

इसका प्रयोग अपभ्रंश चित्रों में बहुतायत में मिलता है । सफेद लेड को खुली हवा में गर्म करके प्राप्त किया जाता है ।

शिल्प रत्न के अनुसार सिन्दूर को पानी में खूब घोटा जाता था , पुनः पाँच दिन तक यही प्रक्रिया दोहराई जाती है , बाद में निथार कर नीम के गोंद के साथ प्रयोग करते हैं । मदनपुर के भित्ति चित्रों में इसका प्रयोग देखा जा सकता है ।

हिंगुल :-

अशुद्ध सिनेबार को नींबू के पानी के साथ खरल करते हैं तथा पानी निथारते रहते हैं। यह क्रिया अनेक बार करने से रंग शुद्ध हो जाता है । इसे गोंद के साथ भली प्रकार मिलाकर सुखा लेते हैं । इस रंग का प्रयोग भी मदनपुर के भित्ति चित्रों में हुआ है ।

पीतवर्ण :-

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में हरिताल रंगने वाला पदार्थ माना गया है । हरिताल की दो

2- चित्र सूत्रम -सम्मेलन पत्रिका - कला अंक , पृ0 - 456

जिनमें " गोदन्ती " तथा " वरगी " या " वर्की " प्रसिद्ध है । हरिताल को बारीक चूर्ण होने तक पीसा जाता है उसके बाद में पुनः बबूल के गोंद के साथ घोटा जाता है । इसकी रंगत नारंगी पन लिये पीली होती है । यह पत्थर के रूप में पाया जाता हैं ।

पेवड़ी :-

इस रंग का उल्लेख संस्कृत साहित्य में नही मिलता है । ऐसा प्रतीत होता है यह रंग भारत में फारस से 15 वीं शताब्दी में आया । कहा जाता है - गाय को आम की पत्ती खिलाकर उसके मूत्र को इकट्ठा करके, उबाल लेते थे, नीचे जो अवशेष बचता था, वह शुद्ध पीला रंग होता था । " गऊगोली " बनाने की प्रथा भी इसी प्रकार की रही है ।

राम रज :- ‖ यलोआकर ‖:-

यह भी प्रकृति में पत्थर के रूप में प्राप्त होता है । इसे पानी के साथ खूब घोटा जाता है।

अध्याय-५

कला में दृष्टव्य संस्कृति:-

प्रागैतिहासिक तथा ऐतिहासिक युगों में विंध्य के विस्तृत क्षेत्र में अनेक संस्कृतियाँ विकसित हुई। यहाँ के पर्वतों, वनों तथा नदी, सरोवरों ने उनके विकास तथा संरक्षण में अत्यधिक योगदान दिया। अगस्त्य से लेकर श्री राम के समय तक आर्य सभ्यता के इस क्षेत्र को अपने विकास के लिए बहुत उपयुक्त पाया। यहाँ के निवासियों में आर्य संस्कृति के प्रसारक ऋषियों तथा अन्य वर्ग के जनों को असाधारण सहयोग तथा दिशा - निर्देश प्रदान किया ।

प्रत्येक नवीन का सृजन पुरातन की नींव पर होता आया है। वही पुरातन परम्परायें नूतन परम्पराओं को जन्म देती हैं। इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में घटनायें परिवर्तन की भीषण ज्वालाओं का स्पष्टीकरण करती हैं और संकेत देती हैं कि देश किस दिशा में प्रगति कर रहा है। इतिहास युग की घटनाओं का समन्वय है जो देश और समाज की वास्तविक घटनाओं को एक सूत्र में बांधकर रखता है और समय - समय पर मानवीय सभ्यता और उसकी संस्कृति का परिचय देता है।

पौराणिक ग्रन्थों के साक्ष्य के आधार पर मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम चित्रकूट में रहे थे, और उनका समकालीन बाणासुर बानपुर में राज्य करता था। कृष्ण के समकालीन राजा शिशुपाल चंदेरी के राजा थे, उसका देश चेदि कहलाता था। चेदि जनपद चन्देलों के समय " जेजाक भुक्ति " एवं बुन्देलों के समय में बुन्देल खण्ड की संज्ञा से संबोधित किया गया है। इन पौराणिक कथा आधारों ने यहाँ के

लोक जीवन एवं संस्कृति तथा कला को प्रभावित किया है । गिरिराज विंध्याचल यहाँ के मूर्तिकारों का प्रेरणा स्त्रोत रहा है । उससे प्राप्त प्रस्तर पर किसी मूर्तिकार की पहली छैनी चलने से लेकर आज तक की कला भावोत्पादक व बौद्धिक रही है । लोक कल्याण की भावना से श्रेयस्कर वे जनजीवन के वैभव की उच्च गाथाओं से ओत - प्रोत रही है । बुन्देल खण्ड में गुप्तों से लेकर बुन्देलों तक ब्राह्मण, जैन दोनों धर्मों का विकास व विस्तार, निरन्तर व सद्भाव पूर्णता के साथ होता रहा है । विशेषकर चन्देल काल में इन दोनों धर्मों की धारा अविरल रूप से बही हैं । खजुराहों, देवगढ़, मदनपुर, बानपुर, महोबा कालिंजर आदि में बने मंदिर इसके अकाट्य उदाहरण हैं । जिन देवताओं का प्रचार इस युग में हो रहा था, उनकी अर्चना का भी विधान निश्चित हो चुका था । विशाल मन्दिरों के निर्माण तथा प्रचार से धार्मिक जीवन में एक विशेष बल आ गया था । ब्राहमण धर्म में वैष्णव व शैव मतों का विकास अधिक हुआ, यद्यपि शाक्त मत का भी पूर्ण प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । विष्णु व शिव के मन्दिर साथ - साथ बनना इस दोनों मतों के परस्पर सद्भाव के प्रतीक हैं । खजुराहों, महोबा व मदनपुर आदि में विष्णु व शिव के मन्दिर साथ - साथ देखे जा सकते हैं ।

वैष्णव मती विष्णु को अधिक महत्त्व देते थे । अग्नि पुराण वैष्णवों का प्रमुख ग्रन्थ था, उसमें पूजा के विधान का विवरण है । वहाँ उनके साथ उनके अवतारों की पूजा का भी प्रचार हुआ है। वाराह, नृसिंह, राम आदि की पूजा का प्रचार तत्कालीन बुन्देलखण्ड में था । हरिवंश पुराण, विष्णुपुराण

की रचना व असंख्य विष्णु मन्दिरों का निर्माण इस युग में हुआ । इस समय में शिव की पूजा का प्रचार भी जनसाधारण व शासकों में था । चन्देल नरेश शिव व विष्णु दोनों की आराधना करते थे । उनके समस्त राज्य में अनेक शिव मन्दिर बनाये गये । समस्त बुन्देलखंड में गणेश पूजा का भी प्रचार था, अनेक स्थानों पर प्राप्त गणेश की मूर्तियाँ इसके अकाट्य उदाहरण हैं । तत्कालीन समाज में ब्राहमण धर्म के साथ जैन धर्म का भी प्रचार बहुतायत में था । अनेकों स्थानों पर प्राप्त जैन मन्दिर इनके स्पष्ट उदाहरण हैं । मदनपुर व बानपुर दोनों स्थानों पर अनेक जैन मन्दिर उस समय के देखे जा सकते हैं । जिससे उस समय की जनता में जैन धर्म के प्रति अनन्य श्रद्धा का आभास मिलता है । दोनों ही स्थानों पर प्राप्त अनेक मन्दिरों में शिव, विष्णु, गणेश , आदिनाथ , शान्तिनाथ आदि के मन्दिरों को देखकर स्पष्ट होता है कि दोनों स्थानों की जनता बहुत धार्मिक थी । मदनपुर व बानपुर दोनों में ही ब्राहमण व जैन धर्म के अनुयायी साथ - साथ रहते थे । सभी में पूर्ण धार्मिक सहिष्णुता थी । विभिन्नता धर्मों के समर्थकों में धार्मिक सहिष्णुता थी । ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन जनता इतनी जागरूक थी कि उन्हें यह अनुभव हो गया था कि ब्राहमण व जैन धर्मों तथा सम्प्रदायों में कोई मौलिक भेद न था । इस प्रकार हम देखते हैं कि इस क्षेत्र में एक ऐसी संस्कृति उस समय पनपी व विकसित हुई, जिसने उस समय के व्यक्ति के लिए सहिष्णुता, धार्मिकता व सदभाव के मार्ग पर चलने का उपदेश दिया व उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया । अतीत काल से मन्दिर ही शिक्षा तथा संस्कृति-केन्द्र रहे हैं । अपने चरम शिखर पर पहुँची स्थापत्य तथा मूर्तिकला इसका स्पष्ट प्रमाण है कि तत्कालीन

शिक्षा उच्च शिखर पर होगी । इतनी सुन्दर स्थापत्य व मूर्तिरचना बिना किसी शिक्षा के असम्भव है । अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज अपने - अपने क्षेत्र में शिक्षित था तथा शिक्षा की विभिन्न विधाओं का प्रचार था, जिसका उल्लेख अनेक शिक्षा लेखों से स्पष्ट हो जाता है ।

सामाजिक संस्कृति :-

तत्कालीन मूर्तिकला के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में स्त्री का स्थान उच्च था व पुरुष के समान ही वह समाज का एक अंग थी । उनकी वेशभूषा लगभग वैसी ही थी जैसी आज भी बुन्देलखंड के कुछ हिस्सों में पायी जाती है । अपने आर्कोलियोजिकल सर्वे रिपोर्ट के सातवें खंड में " वेलगर " महोदय ने मूर्तियों के संबंध में निम्नलिखित विवरण दिया है :-

1- कटि के अधोभाग में पेटीकोट, जिसकी गांठ सामने की ओर होती थी, उसमें बूटे भी बने होते थे । वह महीन कपड़े का बना होता था ।

2- एक लम्बा कपड़ा जो दुपट्टे अथवा साड़ी के रूप में प्रयुक्त होता था ।

3- एक छोटा वस्त्र जो जांघ के नीचे तक आता था । यह हिन्दुओं की वर्तमान धोती की भाँति

---

1 - बेगलर - आ० सा० रि० भाग - 7 - पृ० 67

होता था, किन्तु उसकी गाँठ पीछे की ओर लटकती थी, उसका कपड़ा भी बारीक रहता था । -

4. एक छोटा वस्त्र खण्ड, जो टखनों तक लटकता था, इसका कपड़ा भी बारीक होता था ।[1]

इस वर्णन से स्पष्ट है कि धनिक वर्ग की स्त्रियाँ आकर्षक बारीक वस्त्र पहनती थीं । साड़ी अथवा धोती स्त्रियों की साधारण वेशभूषा थी । वे आभूषणों तथा चित्रकारी से श्रृंगार करती थी । प्रबोध - चन्द्रोदय में एक स्थल पर चन्देलयुगीन स्त्रियों के श्रृंगार पर प्रकाश डाला गया है । कि कंकण ध्वनि करती हुई तथा क्रीड़ासे भूषित पुष्पमाला को कौतुक से उठाती हुई आ रही है,[2] अतः स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ अपने शरीर को सोने, चांदी तथा अनेक मणियों के आभूषणों पुष्पों तथा मालाओं से सुसज्जित करती थी । कभी - कभी अपने वक्ष को भी छोटी - छोटी पंक्तियों से सुसज्जित करती थी । मदनपुर में विष्णु मंदिर के पश्चिमी द्वार पर बनी नायिकाओं में स्पष्ट रूप से आभूषणों की रचना तथा नारी श्रृंगार की रुचि देखी जा सकती थी चित्र संख्या 13-14 । वहीं छत में चित्रित स्त्री आकृति के गले में पहनी माला स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं चित्र संख्या 18 । स्त्रियाँ सुगन्धित पदार्थों से शरीर को सुगन्धित करती थी । इनके श्रृंगार में सिन्दूर का बहुत महत्व था । आज की भाँति सधवाओं का सौभाग्य चिन्ह माना जाता था । सिन्दूर के अतिरिक्त पुष्पों से भी स्त्रियाँ अपने बालों का श्रृंगार करती थीं ।

---

1 - बेगलर - आक्यों० सर्वे० रि० भाग - 7 पृ० 58
2 - प्रबोध -चन्द्रोदय - अंक - 2 पृ० 89, श्लोक - 34

उस समय देवगढ़ में भट्टारक जैन संस्कृति पनप रही थी । जिनकी धार्मिक विचार धारा मूलसंघी जैनों से कुछ भिन्न थी । ये लोग जो भट्टारक कहलाते थे, अपने को मूलसंघी दिगम्बर कहते थे, लेकिन वस्त्र भी धारण करते थे । वास्तव में धार्मिक दीक्षा लेकर ये लोग फिर सामाजिक जीवन व्यतीत करने लगते थे । अर्थात धार्मिक शिक्षा के बाद फिर भोग विलास का जीवन व्यतीत करने लगते थे, तथा अपने को जैन धर्म की उच्च कोटि में रखते थे । इनके समय में देवगढ़ मूर्ति निर्माण का एक बड़ा केन्द्र बन गया था । यहाँ मूर्तियों का निर्माण प्रचुरता से होने लगा । तीर्थंकरो के साथ - साथ देवी देवताओं की मूर्तियाँ यहाँ विशाल रूप में बड़ी संख्या में निर्मित होने लगीं । यहाँ तक कि बाद में तो स्वतन्त्र रूप में देवी मूर्तियाँ बनने लगी । पहले तीर्थंकर की मूर्ति मुख्य होती थी तथा यक्षियों की मूर्तियाँ गौण होती थीं । भट्टारकों के समय में यक्षी की मूर्तियाँ मुख्य बनने लगी व तीर्थंकरों को बहुत छोटा सा बनाने लगे । यह प्रभाव पूर्णतया भट्टारक संस्कृति का था, तथा इसी प्रभाव से बनी मूर्तियाँ आसपास भी यहीं से भेजी जाने लगीं । चाँदपुर , दुधई, मदनपुर, बानपुर, सिरोन आदि में सम्भवतया यहीं से मूर्तियाँ भेजी जाती थीं । इन स्थानों पर प्राप्तमूर्तियाँ देवगढ़ से प्राप्त मूर्तियों से बहुत साम्य रखती हैं ।

1- [illegible] - आ० सर्वे० रि० भाग - [illegible] , पृ० - [illegible]

2- प्रबोध चन्द्रोदय - अं० - 2, पृ० 89 , श्लोक - 38

3- - वही - -वही- -वही- पृ0165

यहाँ के मूर्तिकारों ने यद्यपि खजुराहो के कलाकारों से वेषभूषा, व प्रसाधन की विविधता और विशिष्टता की होड़ तो नहीं लगाई पर उन्होंने जो कुछ भी अंकित किया उससे तत्कालीन वेशभूषा औरप्रसाधन पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । सम्भवतया उनका उद्देश्य आकर्षक वेषभूषा की अपेक्षा भावपूर्ण छवि अंकित करना अधिक था । लेकिन ज्यों - ज्यों समय बीता त्यों - त्यों कलाकार का ध्यान सादगी, भावपूर्ण तथा संयम की ओर से क्रमशः हटता गया और आकर्षक वेशभूषा एवं मुद्राओं तथा मोहक भंगिमाओं की ओर आकृष्ट होता गया । गुप्तकालीन वस्त्र झीने अवश्य होते थे, परन्तु उन्हें पहनने का ढंग कुछ ऐसा था कि उनसे सौन्दर्य की अभिवृद्धि तो होती ही थी , किन्तु भौंडापन या असंयम प्रकट नहीं होता था, परन्तु परवर्ती समय में यह प्रवृति परिलक्षित नहीं होती है । वस्त्र अवश्य ही अपेक्षाकृत मोटे दिखाई जाने लगे , किन्तु इनके धारण करने की प्रक्रिया एक दूसरा ही उद्देश्य अभिव्यक्त करती थी । इसे कलाका क्रमिक ह्रास ही कहा जायेगा । यह ह्रास मध्यवर्ती भारत में ही सीमित नहीं रहा ।

कला के इस ह्रास की पृष्ठभूमि अत्यन्त स्पष्ट है । गुप्त साम्राज्य एक बद्धमूल और सुप्रशासित साम्राज्य था । गुप्त सम्राट कला और साहित्य के ही नहीं, धर्म एवं अध्यात्म विधा के भी प्रेमी थे । फलस्वरूप तत्कालीन कला अध्यात्म से उत्प्रेरित रही । उसमें सांसारिकता का उभार कम हो सका । किन्तु चन्देलों के समय में कला का ह्रास तीव्र गति से हुआ । चन्देल शासक शैवों के वाममार्गी साधुओं से प्रभावित रहे, जिनका नैतिकता से कदाचित शब्दों तकही सम्बन्ध था । वे स्थूल भौतिकता और वासनाओं से भरा

जीवन स्वयं बिताते थे और जनता को भी अपना पथगामी बनाते थे । इस प्रवृत्ति ने नौवी से तेरहवीं सदी तक ही कला का प्रभावित किया , तभी चन्देलों के समय तक मूर्तियों से मौलिकता और संयम प्राय समाप्त हो गया । इस समय की मूर्तियों में मांसलता , अस्वाभाविक व कामोत्तेजक लोच, तथा विविध आसनों का अत्यन्त विकृत रूप प्रस्तुत किया जाने लगा । बेगमढ़ व आसपास की कला में भी यह ह्रास देखा जा सकता है । यद्यपि बानपुर, मदनपुर के मन्दिरों में यह अपने इतने विकृत रूप में नहीं है । वेशभूषा और प्रसाधन कला में सांसारिकता की वृद्धि के साथ समृद्ध व आकर्षक होती गयी है । पुरुष वर्ग की वेशभूषा अधिक भड़कीली नहीं है । पुरुष वर्ग वही आभूषण धारण करते थे जो स्त्रियां धारण करती थी । देव व संभ्रान्त लोग मस्तक पर मुकुट बांधते थे । ललाट पर तिलक लगाने का प्रचलन था, कानों में कुण्डल कर्णावितस, कर्णिका तथा गले में विभिन्न प्रकार के हार पहनते थे, केयूर, कटिसूत्र और पायल का भी प्रचलन था ।

स्त्री वर्ग अधोवस्त्र के रूप में साड़ी पहनती थी , लेकिन आजकल के समान ऊपर लाकर नहीं ओढ़ती थी , बल्कि विशेष ढंग से कमर के नीचे ही लपेटती थी । कंचुकी पहनने की प्रथा थी ।उत्तरीय प्राय: सभी स्त्रियां रखती थी, उत्तरीय को गले या पीछे की ओर से निकालकर कुहोनियों के ऊपर से

सामने लाया जाता था । तब उसके दोनों ओर के छोर आकर्षक लहरिये के रूप में हवा में लहराते हुए बनाये गये हैं ।

केश सज्जा आकर्षक व कलापूर्ण होती थी । देवमूर्तियों के मस्तक पर मणि जटित मुकुट दिखाई देते हैं । वे भी केश सज्जा का एक अंग थे । उनके जूड़े आकर्षक शैली में बने हुए देखे जा सकते हैं ।

आभूषण के प्रति आकर्षण नारी में प्राचीन काल से ही रहा है । मदनपुर व बानपुर की स्त्री - मूर्तियों में आभूषणों का अंकन प्रचुर मात्रा में हुआ है । वे कानों में कर्णफूल व कुण्डल पहनती थीं। हार व मालाओं का प्रयोग बहुत होता था । स्तन हार [लम्बी माला] पहनने का प्रचलन था । उसके मध्य से मोतियों की लड़ी स्तनों के बीच से होती हुई नाभि पर्यन्त लटकती थी । बाजूबन्द [केयूर] सभी स्त्रियां पहनती थी । हाथों में चूड़ियां व कंकण पहने जाते थे । सभी स्त्रियां कटि सूत्र व मेखला पहनती थीं । जो कहीं - कहीं बहुत चौड़ी मेखला भी प्राप्त होती हैं उनमें घूंघरू व झालरें लटकती थीं । पैरों में पायजेब व पायल पहनने की प्रथा थी, उनमें नूपुर लगे रहते थे ।

त्यौहार पर्व और मेलों के द्वारा धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक स्वरूप पर नियंत्रण होता है । ये केवल व्यक्ति विशेष पर निर्भर न रहकर सामूहिक व सम्मिलित रूप से होते हैं । इनके द्वारा सांस्कृतिक एकता का सूत्रपात होता है । वैभवपूर्ण बुन्देलखंड के भू - भाग में , त्यौहार, पर्व व मेलों का

वास्तविक रूप देखने को मिलता है । फसलें कटने, ऋतु परिवर्तन होने आदि के अवसर पर सामूहिक नृत्य गान होते है । समय - समय पर आयोजित धार्मिक अनुष्ठान , सामाजिक समारोह , मेले, त्योहार, यहाँ के जन साधारण के मनोरंजन व आमोद - प्रमोद के साधन थे । गायन वादन व नृत्य में यहाँ के समाज की विशेष रूचि थी । बुन्देलखंड की भूमि का विस्तार औरछा की बेतवा नदी से नर्मदातक फैला हुआ है । यहाँ के भू - भाग के संस्कृति एवं सभ्यता के प्राय प्रत्येक नगर व ग्राम में समान रूप से दर्शन होते हैं ।

गनगौर पूजन :- सम्पूर्ण बुन्देलखंड का यह महत्वपूर्ण त्योहार है । चैत्र शुक्ला तृतीया को गनगौर का पूजन होता है । स्त्रियाँ दिन - भर व्रत रखती हैं और शाम को पार्वती की पूजा करती हैं । सुहागवती स्त्रियाँ अपने सुहाग की रक्षा के लिए यह व्रत रखती हैं । इस पूजन का प्रसाद पुरुष को नहीं दिया जाता । बुन्देलखंड में इस सम्बन्ध में एक कहावत भी प्रचलित हैं :-

गनगौर के गनगौरा , पुरुष खाँ न देऊ एकऊ कौरा ।

बान्पुर की चतौरी प्राप्त आँकड़ोंके अनुसार बहुत अधिक चित्रित थी । गणगौर बुन्देलखंड में ही नहीं राजस्थान का भी प्रमुख त्योहार है । वहाँ इसका चित्रण खूब हुआ हैं । बुन्देलखंड में भी अन्य

स्थानों पर गणगौर के दृश्य चित्रों में दिखाई देते हैं । सम्भवतया यह प्रचलित विषय बानपुर में भी बनाया गया होगा जो काल का ग्रास होने से नष्ट हो गये हैं ।

रावनवमी :-

चैत्रमास में नवें दिन रामनवमी का पर्व मनाया जाता है । राम के जन्मोत्सव की स्मृति में यह पर्व होता है । ओरछा में तो मेला लगता है । बानपुर में राम कथा के आधार पर चित्र बनने के उल्लेख प्राप्त हैं ।

अक्षय तृतीया :-

यह बुन्देलखंड का प्रमुख त्योहार है । यह बैसाख शुक्ल तृतीया को मनाया जाता है । ग्रामीण अंचलों में इस त्योहार का अधिक महत्व है । रति की विशेष याचना पर भगवान शंकर के त्रिनेत्र की ज्वाला में भस्म हुए कामदेव को अनंग [अतनु] का जीवन अक्षय अभय वरदान के रूप में दिया , तभी से यह त्योहार बैसाख शुक्ल तृतीया को मनाया जाता हैं ।

सावन तीज :-

समस्त बुन्देल खंड में श्रावण शुक्लातीज को बड़े उल्लास से झूले का यह उत्सव मनाया जाता हैं । मन्दिरों में झूले की झाँकियां सजायी जाती हैं । बुन्देलखंड वृन्दावन सा लगने लगता है । बानपुर में

राधाकृष्ण को झूलते हुए चित्रित किया गया हैं ।

नागपंचमी :-

बुन्देलखंड में नागपंचमी का मेला विशाल व विस्तृत रूप से लगता है । यह मेला सावन की पंचमी को होता है । बानपुर में बहुत से नाग पूजक लोग रहते है । वे इस दिन नाग देवता की पूजा करते हैं । बानपुर में मानिक टीला से नाग देवता , नागपुरूष व नाग कन्याओं की प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं ।

रक्षाबन्धन :-

भाई - बहन के प्रेम का प्रतीक यह त्योहार समस्त बुन्देलखंड में मनाया जाता है । श्रावण मास की पूर्णमासी को यह त्योहार मनाया जाता हैं ।

श्रीकृष्ण जन्म-अष्टमी :-

भाद्रमास की कृष्ण पक्षीय अष्टमी को कृष्ण के जन्म - दिवस पर यह त्योहार मनाया जाता है । मन्दिरों में आकर्षक झांकियां सजायी जाती है । कृष्ण जन्म व अन्य रास - लीलाएं चित्रकारों के प्रिय विषय रहे हैं । बानपुर में इसके उल्लेख मिलते हैं ।

महालक्ष्मी :-

असौज मास के कृष्ण पक्ष में अष्टमी को मिट्टी के हाथी की पूजा होती है । पंडित पूजा कराते है व 16 कहानियां सुनाते हैं । महालक्ष्मी के हाथी - पूजन के अवसर पर स्त्रियां जो कहानी सुनाती हैं

वह समस्त बुन्देलखंड में प्रचलित हैं तथा लोकगीत के रूप में भी गाई जाती हैं । इस कहानी का सम्बन्ध मदनपुर के ग्राम के प्राचीन राजा मदन सैन से है । लोकगीत निम्न प्रकार हैं :-

आमोती दामोती रानी ।
पोलापट पाटन गाँव - मंगल सैन राजा ।
वम्मन बरुआ कये कानियाँ ।
हम्सों काते , तुम सो सुनते ।
सोरा बोल की एक कानियाँ ।
सुनो आमोती दामोती रानी ।
हाथी पूजिओ ।

मदनपुर के पास ही प्राचीन नगर पट्टन या { पाटन } था तथा मंगल सैन उसके राजा थे व आमोती - दामोती उसकी दो रानियाँ थी । मदनपुर में आज भी उनके महल के अवशेष हैं और उन्हीं की याद में यह व्रत होता हैं ।

दशहरा :-

आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की दशमी के दिन यह त्यौहार मनाया जाता है । समस्त

बुन्देलखंड में यह त्यौहार धूमधाम से होता है । बुन्देली शूरवीर इस दिन शास्त्र पूजा करते हैं । राम - रावण युद्ध के दृश्य हमें चित्रों में देखने को मिलते हैं । ओरछा के लक्ष्मी मन्दिर में तो यह विषय बहुत बड़े रूप में चित्रित है ।

दीपावली :-

कार्तिक मास की अमावस्या को मनाया जाने वाला यह त्यौहार समस्त बुन्देलखंड में धूमधाम से मनाया जाता है । प्रातः काल में हनुमान के जन्मदिन के रूप मे पूजा होती है । रात्रि में घर-घर में लक्ष्मी पूजन होता हैं । यह विषय भी चित्रों में देखा जा सकता है । बानपुर में इसका चित्रण नहीं हैं ।

शिवरात्रि :-

फाल्गुन मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को यह शिवरात्री पर्व मनाया जाता है । इस दिन शिव की पूजा की जाती है । बानपुर के पास कुंडेश्वर में विशाल शिव मंदिर है । मदनपुर में चंदेल काल में विशाल शिवमंदिर होने के प्रमाण प्राप्त हैं, यद्यपि अब यहाँ शिव मूर्ति नहीं हैं ।

होली :-

समस्त बुन्देलखंड में यह त्यौहार बड़े धूमधाम से मनाया जाता है । फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को यह त्यौहार ग्रीष्म ऋतु के आगमन पर हर्ष व उल्लास से मनाया जाता है । हिरण्यकश्यप की कथा

का सम्बन्ध । बुन्देलखंड के एरच नगर से ही बताया जाता है । यह पर्व चित्रकारों का प्रिय विषय रहा है। कृष्ण को गोपियों के साथ रंग खेलते हुए चित्रित करने की परम्परा बुन्देलखंड में रही हैं ।

बुन्देलखंड में महलों में एक चित्रित कमरा जिसे " चतोरी " कहते थे, बनाने की परम्परा थी, जिसे चित्रों से सुसज्जित किया जाता था । ताल बेहट बानपुर , गुरसराय आदि के महलों और किलों में चतोरी के प्रमाण प्राप्त होते हैं , क्योंकि अन्य स्थानों की चतोरियों में लोक जीवन की सांस्कृतिक परम्परा को चित्रित करने के प्रमाण प्राप्त हुए हैं, अतः सम्भव है कि बानपुर की "चतोरी" में भी यह लोक संस्कृति चित्रित की गयी होगी । इसके कुछ प्रमाण तो डा० पी०सी० मुखर्जी द्वारा प्रस्तुत भी किये गये हैं ।[1] लेकिन काल के थपेड़ों से ग्रस्त , अतीत में चित्रों से पूर्ण यह " चतोरी" आज खण्डहर पड़ी है । जो चित्राभास वहां प्राप्त होते हैं उससे तो अनुमान लगाना भी कठिन है ।

1- पी०सी० मुखर्जी - रि० आफ एन्टि० आफ डि० आ० ललितपुर -खण्ड-2,पृ० 96,97

अध्याय - ६

—: उपसंहार :—

समय का चक्र अपने घटना क्रम को धरती के गर्भ व प्रकृति की गोद में सहेजता चला जाता हैं आवश्यकता होती हैं ऐसे दृष्टिकोण की जो उस घटना क्रम को खोजकर, उसको क्रमबद्ध रूप दे दें और यही क्रमबद्ध अध्ययन इतिहास कहलाता हैं । गिरिराज विंध्याचल की पर्वत श्रृंगों से घिरा, बेतवा, नर्मदा, चम्बल, केन आदि नदियों से सिंचित भू- भाग बुन्देलखंड कहलाता हैं । जिस पर कालचक्र ने प्राचीनकाल से लेकर आज तक अपने पद चिन्हों से अनेक चिन्ह छोड़े हैं । रामायण और महाभारत की ऐतिहासिक घटनाओं से लेकर सन् 1857 की क्रांति तक का इतिहास इस भू- भाग के हृदय पर लिखा हुआ है , जहां महान गुप्त शासकों से लेकर वीर बुन्देलों तक ने समय आने पर इस वीर प्रसविनी माटी की अपने लहू से प्यास बुझाई हैं, उन्हीं की प्रेरणा से छैनी की लबद्ध झंकार ने पत्थरों के हृदय पर कला के इतिहास को उकेरा हैं ।

इसी बुन्देलखण्ड के जिले ललितपुर में स्थित महरौनी तहसील की एक ही पट्टी पर स्थित दो प्राचीन स्थल मदनपुर व बानपुर है । यहां का इतिहास एक ओर पौराणिक गाथाओं से परिपूर्ण है तथा दूसरी ओर मध्यकाल की कला थाती से ओत-प्रोत हैं तो स्वतन्त्रता के युद्ध का तिलक अपने भाल पर लगाये हुए भी आज आधुनिक विकास से उपेक्षित हैं । चन्देल काल का महत्वपूर्ण नगर मदनपुर आज बिजली के प्रकाश से भी वंचित हैं, तो आजादी की लड़ाई में

महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला बानपुर का महत्वपूर्ण किला जिसने झाँसी से भी पहले अपने हृदय पर अंग्रेजी तोप के गोले सहे है आज दुर्भाग्य से शौच स्थल बना हुआ हैं । इस क्षेत्र पर विस्तृत अध्ययन की महती आवश्यकता बनी रही है । अतः मैंने अपने शोध कार्य के लिए इस क्षेत्र का चुनाव किया तथा विस्तृत तथा क्रमबद्ध अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया हैं ।

मेरा यह शोध प्रबन्ध छः अध्याय में विभाजित है । प्रथम अध्याय में इस क्षेत्र पर अब तक हुए कार्य का विवरण प्रस्तुत हैं जिसके अध्ययन के उपरान्त मुझे एक आधार प्राप्त हुआ हैं । द्वितीय अध्याय में इस क्षेत्र की स्थिति उसका नामकरण उनकी ऐतिहासिक तथा धार्मिक पृष्ठभूमि आदि का वर्णन किया गया हैं । तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय बहुत महत्वपूर्ण है, तृतीय अध्याय में इस क्षेत्र की मूर्तिकला का विस्तृत वर्णन पौराणिक तथा विद्वानों द्वारा स्थापित मान्यताओं के आधार पर प्रस्तुत किया है , चतुर्थ अध्याय में मदनपुर एवंबानपुर की चित्रकला का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया हैं । मदनपुर में 12वीं सती के एक मात्र भित्ति चित्रकला के उदाहरण हमारी अभूतपूर्व थाती बने हुए हैं जो शनैः शनैः काल का ग्रास हो रहे हैं । पंचम अध्याय में इस क्षेत्र की सांस्कृतिक धरोहर व उसका कला पर बाह्य प्रभावों को प्रस्तुत किया गया है जबकि अन्तिम अध्याय में इस क्षेत्र की कला की सुरक्षा तथा कला थाती के महत्व तथा भविष्य में इनकी सुरक्षा के उपायों का प्रस्ताव हैं ।

समय - समय पर अनेक विद्धानों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं ने इस क्षेत्र पर जो कार्य किया हैं उनमें एलेक्जेण्डर कनिंघम तथा डा० पी०सी० मुखर्जी का कार्य विशेष म हत्वपूर्ण हैं । मि० कनिंघम ने अपने सर्वेक्षण " टूर्स इन बुन्देलखण्ड एण्ड मालवा " में मदनपुर ग्राम की स्थापत्य व मूर्तिकला पर कुछ प्रकाश डाला हैं । डा०पी०सी० मुखर्जी का कार्य इस क्षेत्र पर बहुत महत्वपूर्ण माना जा सकता हैं जिन्होंने " रिपोर्ट आन दा एण्टीक्वीटीज इन दा डिस्ट्रिक्ट आफ ललितपुर" में ललितपुर जनपद की समस्त कला थाती को प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया हैं । समय - समय पर सामाजिक संस्थाओं ने जिनमें विशेषकर " भारतीय दिगम्बर जैन तीर्थ समिति " ने इस क्षेत्र की जैन कला का संकलित करने में विशेष योगदान दिया हैं , तथा जैन कला थाती को सुरक्षित करने का प्रयास किया हैं ।

ये दोनों ऐतिहासिक स्थल उत्तर प्रदेश में ललितपुर जिले की तहसील महरौनी के अन्तर्गत आते हैं । मदनपुर महरौनी से दक्षिण की ओर 45 कि०मी० सड़क मार्ग से जुड़ा है, जबकि बानपुर महरौनी से 14 कि०मी० है ।

मदनपुर में चन्देल कालीन मन्दिर जो छोटी व बड़ी कचहरी क्रमश विष्णुमन्दिर व शिव म न्दिर हैं , जिनमें मूर्ति शिल्प के अतिरिक्त विष्णुमन्दिर में महत्वपूर्ण चित्रकला भी सुरक्षित हैं । इसके अतिरिक्त पंचमढ़ी मोदी मठ व चम्पोमठ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक,धार्मिक व

मूर्तिशिल्प के कलात्मक केन्द्र हैं । पंचमढ़ी का कमेटी द्वारा जीर्णोद्धार कर दिया गया हैं, जिससे इस क्षेत्र की कला थाती को तो सुरक्षा मिलि ही हैं, साथ ही क्षेत्रकमेटी मदनपुर में आसपास बिखरी जैन कला सम्पदा को इसी क्षेत्र में संग्रहीत करके महत्वपूर्ण कार्य किया हैं । मोदी मठ का भी अब जीर्णोद्धार हो चुका हैं । कलात्मक दृष्टिकोण से सबसे महत्वपूर्ण तथा अब तक अज्ञात चम्पोमठ हैं, जो अब तक अपनी पूर्व स्थिति में है यद्यपि अब वह काफी जर्जर हो चुका हैं, लेकिन उसका कलात्मक द्वार विशेष रूप से दर्शनीय हैं तथा उसके गर्भ गृह में स्थित त्रिमूर्तिआस-पास के सभी स्थलों से महत्वपूर्ण व कलात्मक हैं । इसके अतिरिक्त आस-पास जंगलों में बहुत से कलाविशेष यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं । बानपुर का प्राकृतिक वैभव कलात्मक थाती तथा शौर्य पूर्ण गाथा सभी महत्वपूर्ण हैं । इसके दोनों ओर दो नदियां जामिनी व जामनेर बहती हैं । अतिशय क्षेत्र बानपुर कलात्मक दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है । यहाँ 10वी 11वीं शती का सहस्त्रकूट चैत्यालय अपने पूर्ण वैभव के साथ खड़ा है । साथ ही चार और जैन मन्दिर है जिनकी कला सम्पत्ति भी प्राचीन-काल की हैं । गणेश खेड़ा प्राचीन स्थल हैं , जहा 18 भुजाओं से युक्त समस्त बुन्देलखंड में नृत्य गणेश की सबसे विशाल प्रतिमा हैं । मानिक टीला में नाग पूजकों द्वारा संग्रहीत अनेक नाग प्रतिमाएं , शेषशायी विष्णु, व हनुमान आदि की मूर्तियां बहुत महत्वपूर्ण कला थाती हैं । सम्भवतया: किसी समय में यहा पर नाग मन्दिर अवश्य रहा होगा । इसके अतिरिक्त सूर्य की आग

से तृप्त काल के थपेड़ों से ध्वस्त अनेक वीरों के लहू से सिंचित महत्वपूर्ण चित्रकला से पूर्ण तथा वर्तमान में पूर्णतया ~~मर्धित~~ उपेक्षित बानपुर का किला हैं । ग्राम में दो जैन मन्दिर जिनमें बड़ा जैन मन्दिर बुन्देल कालीन चित्रकला पद्धति के महत्वपूर्ण उदाहरण अपने में संजोये हुए आज भी सुरक्षित हैं ।

रामायण काल में बुन्देलखण्ड तपोभूमि कहलाती थी । अनेक ऋषियों के आश्रम चित्रकूट के आस-पास इसी क्षेत्र में थे, उस समय मध्य देश कौशल जनपद राज्य का एक अंग था । महाभारत काल में यह प्रदेश शिशुपाल के अधिकार में रहा हैं । भगवान श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल को युद्ध में हराये जाने के उल्लेख महाभारत में प्राप्त होते हैं । इसके बाद का क्रमबद्ध इतिहास अप्राप्त हैं । मौर्य काल में यह राज्य छोटे- छोटे गणतन्त्र में पूरा विभाजित था । शुंगकाल में अग्नि मित्र के समय में उसके राज्य की राजधानी वेस नगर (विदिशा के पास) इसी प्रदेश में रही । नागराजाओं की राजधानी पदमावती (आधुनिक पवाया) थी, बुन्देलखंड में नागराजाओं की कला के अनेक भग्नविशेष प्राप्त हुए हैं । आज भी बानपुर में नागपूजक लोग रहते हैं । नागों के समय में मालवा व चेदि जनपद का विवाद भी उनके अधिकार में भी था । गुप्तकालीन मूर्तिकला के महत्वपूर्ण उदाहरण हमें बुन्देलखण्ड में ही (देवगढ़) प्राप्त हुए हैं । कुछ समय तक हूणों का राज्य भी इस क्षेत्र में रहा हैं, उसके पश्चात परिहारों ने कई छोटे- छोटे स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये थे ।

नवीं शती के उत्तरार्ध में चन्देलों ने परिहारों को हराकर अपना राज्य स्थापित किया, उनका राज्य " जुझौती " या " जेजाकभक्ति " कहलाता था, जिसकी पुष्टि मदनपुर में प्राप्त एक शिलालेख से होती हैं । खजुराहों , कालिंजर, महोबा , अजयगढ़, मदनपुर आदि इनके मुख्य नगर थे । धंग, गंड, कीर्तिवर्मन, मदनवर्मन, परमर्दी देव आदि इनके मुख्य राजा हुए, जिनमें मदनवर्मन में मदनपुर नगर की पुर्नस्थापना कर अपने नाम पर इस नगर का नाम मदनपुर रखा । दिल्ली नरेश पृथ्वीराज चौहान ने परमर्दी देव को हराया था । इसकी पुष्टि भी मदनपुर में प्राप्त एक शिलालेख से ही होती हैं जो [शिवमन्दिर] में प्राप्त हैं । आल्हा और ऊदल इसके राज्य में दो वीर योद्धा हुए हैं, जिनकी वीरता की गाथायें आज भी बुन्देलखण्ड ही नहीं समस्त उत्तर तथा मध्यभारत में गायी जाती हैं । शैव, विष्णु, शाक्त तथा जैन धर्मों के अनेक कलाविशेष हमें आज भी देखने को मिलते हैं । मदनपुर व बानपुर दोनों ही स्थानों पर ब्राहमण व जैन दोनों धर्मों के कलाविशेष देखे जा सकते हैं । जिनका विस्तृत विवरण इस प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है । चन्देलों के पश्चात् 13 वी शती से लेकर 19 वीं शती तक इस क्षेत्र में बुन्देलों का राज्य रहातथा राज्य में यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड कहलाया । बुन्देलों के शौर्य के अनेकों गाथाओं से हमारा इतिहास भरा पड़ा हैं । जिन्होंने मुगलों से लेकर अंग्रेजो तक के सामने अपनी स्वतन्त्रता का परचम निरन्तर उठाये रखा , फिर भी बहुत से ऐसे महत्वपूर्ण तथ्य अंधकार के गर्त मे डूबे हुए हैं , जिन्होंने भारत की आजादी के लिए अपना सब कुछ बलिदान कर दिया,

वीर बुन्देला मर्दन सिंह (बानपुर) इतिहास का एक ऐसा ही पृष्ठ है । वीर मर्दन सिंह भारतीय कला संस्कृति के पोषक थे उनका अपना बहुत बड़ा पुस्तकालय था, ह्यूरोज ने अपने आक्रमण के समय उसमें आग लगवा दी थी, जिससे उसमें संग्रहित अनेकों चित्रित ग्रन्थ व ऐतिहासिक सामग्री नष्ट हो गयी । ऐसे थे वीर मर्दन सिंह जिन्होंने आजादी की रक्षा के लिए अपनी संस्कृति अपनी कलाभिरुचि अपनी समस्त सम्पत्ति, राज-पाट, मित्र सम्बन्धि सभी कुछ आजादी की लड़ाई में होम कर दिया । इसी आजादी की लड़ाई में भारतीय कला की एक और धरोहर मदनपुर की छोटी व बड़ी कचहरी काल का ग्रास बनी । इस प्रकार भारत में ये ही दो ऐसे क्षेत्र हैं जिन्होंने 1857 की लड़ाई में अपनी स्वतन्त्रता को सर्वोपरि रखते हुए, अपनी संस्कृति को भी उस पर न्यौछावर कर दिया । आज यह कला थाती चहुं और बिखरी पड़ी है , लेकिन अपने बिखराव पर किसी प्रकार की लज्जा नहीं गर्व से सर उठाये अपने इतिहास की कहानी कह रही है , आवश्यकता उस इतिहास को संकलित करने की हैं । उस कलाथाती को मैंने अपने तृतीय व चतुर्थ अध्याय में एकत्रित किया है ।

तृतीय अध्याय में मूर्तिशिल्प का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है । दोनों ही स्थानों में धर्म - सभाव के उदाहरण देखे जा सकते हैं, यहा जैन व ब्राहमण दोनों ही धर्मों की कलाथाती दृष्टव्य हैं जो आज धर्म से उठकर राष्ट्र थाती बन सकीं हैं । देश का प्रेरणा स्त्रोत बन सकती हैं । आवश्यकता उसको उजागर करने की थी जो मैंने करने का प्रयास किया हैं ।

मदनपुर में एक ओर जहाँ छोटी कचहरी के नाम से प्रसिद्ध क्रमश: विष्णु व शिव के चन्देल-कालीन मन्दिरों में शैव व वैष्णों मतों की कला दृष्टव्य हैं, वही पंचमढ़ी मोदीमठ तथा चम्पोमठ में 12वीं से 16वीं शती तक की जैन मूर्तिकला का दिग्दर्शन किया जा सकता है। विशाल कलात्मक मूर्तियाँ यहाँ अपना सानी नहीं रखती है। विशाल त्रिमूर्ति के सुन्दर उदाहरण समस्त बुन्देलखंड में मदनपुर व बानपुर में ही देखे जा सकते हैं। मदनपुर में इन कलात्मक मन्दिरों के अतिरिक्त चहुँ और मूर्तिकला के खण्ड बिखरे पड़े हैं, आवश्यकता उनको संग्रहित करने की है। मैंने अपने कैमरे के माध्यम से उसको संग्रहित किया है। उधर बानपुर में अतिशय क्षेत्र { क्षेत्रपाल } में सुन्दर , कलात्मक जैन सहस्त्रकूट चैत्यालय हैं। जो सम्भवतया आतातायियों की क्रूर दृष्टि से दूर रहा हैं। इसीलिए आज भी अपने पूर्ण वैभव के साथ देखा जा सकता हैं। समस्त बुन्देलखण्ड में ही नहीं समस्त भारत में यह अपने तरह का एक ही चैत्यालय है। जिसके चारों और मुख्य द्वारों पर कलाकृतियाँ उकेरी गयी है। मध्य में एक सहस्त्र मूर्तियों से विभुषित एक खंडीय लगभग आठ फीट ऊँचा सहस्त्रकूट लिंग है। इस चैतालय पर चारों और अष्ट दिक्पालों की सुन्दर मूर्तियाँ ब्राहमण मूर्ति विधान के अनुसार बनी हुई हैं इसके अतिरिक्त इसी क्षेत्र में समस्त बुन्देलखण्ड की सबसे विशाल त्रिमूर्ति { शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अहरनाथ } की " बड़े बाबा के मन्दिर " में विद्वान हैं, जिसकी पालिस दृष्टव्य हैं

गणेश खेड़ा व मानिक टीला में ब्राहमण धर्म की सुन्दर मूर्तियाँ हैं । गणेश खेड़ा 18 भुजाओं से युक्त नृत्य गणेश की यह समस्त बुन्देलखण्ड की सबसे ऊँची प्रतिमा हैं । जिसकी आज भी पूजा की जाती हैं । मानिक टीला में शेषशायी विष्णु, नाग- नागी की विशेष प्रकार की मूर्तियाँ अपना गुणगान स्वयं कर रही हैं । ये मूर्तियाँ भारतीय कला की अप्रतिम धरोहर हैं ।

चित्रकला की दृष्टि से भी यह क्षेत्र कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं । सम्पूर्ण भारतवर्ष में पंचतन्त्र की कथाओं पर आधारित भित्तिचित्र सर्वप्रथम यहीं मदनपुर के विष्णु मन्दिर में बनाये गये हैं । यही एक मात्र भित्ति चित्र है जो पूरे उत्तर भारत में 12वीं शती के आस पास के भित्ति चित्रों के एक मात्र उदाहरण हैं , तथा कथित जैन शैली {अपभ्रंश शैली} के समस्त शैलीगत गुणों से परिपूर्ण है । यही एक मात्र चित्र है जो अजन्ता के भित्ति चित्रों के पश्चात तथा ताड़ पत्रीय चित्रकला के मध्य की कड़ी कहे जा सकेत है । अतः ये चित्र भारतीय चित्रकला के इतिहास की ऐसी धरोहर हैं जिनकी पूर्णतया सुरक्षा की आवश्यकता है वरना आने वाले बहुत थोड़े समय में ही यह नष्ट ही हो जायेंगे बहुत अच्छा हो यदि सरकार इनकी प्रतिकृति करा लें । मैंने अपनी फोटोग्राफी के माध्यम से इन चित्रों को इक्ट्ठा करने का प्रयास किया हैं । बानपुर में बुन्देलखण्डीय चित्रकला के अनुपम उदाहरण देखे जा सकते हैं । इन चित्रों की शैलीगत विशेषता अपने निमार्ण में ही हैं ।

इस पद्धति के चित्र मुझे मात्र बुन्देलखण्ड में ही देखने को मिले हैं बुन्देलखण्ड में ओरछा के लक्ष्मी मन्दिर , दतिया के शौगिरी के मन्दिर, टहरौली के किले में इस शैली के चित्र देखे जा सकते हैं । बानपुर के किले व बड़े जैन मन्दिर में इन चित्रों के उदाहरण प्राप्त होते हैं । साथ ही बानपुर के किले की चतौरी [चित्रशाला] जिसे मर्दन सिंह व उसके पिता के समय में चित्रित किया गया था , तथा बानपुर के राजा मर्दन सिंह का विशाल पुस्तकालय जिसमें अनेक चित्रित ग्रन्थ थे , ने आजादी की लड़ाई में अपनी आहुति देकर इस देश की आजादी के लिए अपनी कला व संस्कृति की धरोहर को न्योछावर कर दिया ।

संस्कृति कभी नष्ट नहीं होती है वह हमेशा संस्कारों से सुसंस्कृत होकर नये रूपों में बनती रहती हैं । विंध्य के विस्तृत क्षेत्र में अनेकों संस्कृतियां विकसित हुई है । यहां के उत्तंग पर्वतों, ने साहस का पाठ पढ़ाया हैं , कल - कल करती नदियों ने गीत- संगीत को जन्म दिया । जिससे शौर्य व कला दोनों इस क्षेत्र की संस्कृति के अविभाज्य अंग रहे हैं । राम और कृष्ण के समय की अनेकों पौराणिक घटनायें इस विन्ध्य क्षेत्र में घटी हैं । चन्देलों से लेकर बुन्देलों तक शौर्य के अनेकों उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा हैं । इन्हीं पौराणिक कथा आधारों तथा वीरोचित प्रेरणाओं ने यहां के लोक जीवन एवं संस्कृति तथा कला को प्रभावित किया है । विंध्याचल यहां से मूर्तिकारों का व यहां की प्रकृति व लोक जीवन चित्रकारों का प्रेरणा श्रोत रहा है । आदिकाल के मनुष्य के पत्थरों पर पहली छेनी चलाने से लेकर खजुराहों, देवगढ़,मदनपुर,

---

बानपुर के मूर्तिकारों की यह संस्कृति प्रेरणा श्रोत रही है जिससे उसकी कला भावोत्पादक बनी है । दूसरी ओर यहां के चित्रकार ने तो इस संस्कृति में रंग भरे ही हैं , यहां के तीज - त्यौहार, लोक - गीत , लोक नृत्य तथा प्राकृतिक वैभव चित्रकार के विषय वस्तु रहे हैं । मदनपुर व बानपुर की मूर्ति कला व चित्रकला में इस संस्कृति की स्पष्ट झांकी देखी जा सकती हैं ।

भारतीय इतिहास की यह धरोहर धीरे - धीरे नष्ट हो रही है कारण स्पष्ट हैं इसकी उचित देख -रेख व रख - रखाव नहीं हो पा रहा है । इस कारण मूर्तियां तो चोरों व स्मगलरों दवारा देश से बाहर सम्भवतया भेज दी गई हैं । इस धरोहर के वास्तविक मूल्य से अन्जान जनता भी इसधरोहर को नष्ट करने का कारण रही हैं । कहीं ये मूर्तियां किवाड़ों में चिन दी गयी हैं, तो कई बड़े - बड़े पत्थरों के रूप में काम आ रही हैं । बानपुर की एक रहट से कुछ सुन्दर मूर्तियां हमने निकलवाई हैं व संग्रहालय में भिजवाई हैं । मदनपुर में मकानों के दरवाजों के स्तम्भ इन्हीं कलात्मक धरोहर से बना लिये गये हैं । कुछ बहुत सुन्दर व महत्त्वपूर्ण कला-कृतियां इन स्थानों के कुछ बड़े व्यक्तियों के पास बिना किसी हिसाब - किताब के रखी हैं । बानपुर का महत्वपूर्ण किला तो बार -बार कहने की आवश्यकता नहीं, सारे गांव के लोगों दवारा दुरूपयोग हो ही रहा हैं । कुछ लोग धन आदि की लालच में भी इस खंडित किले के शेष भागों को रासों - राज खोदते रहते हैं जिससे रही - सही धरोहर भी नष्ट हो जाती हैं । हमारा सनातन समाज इस मामले में बिल्कुल

ही निष्क्रिय है , उसे न अपनी संस्कृति की चिन्ता हैं और न ही इस कलात्मक धरोहर की । उसके मन से तो शायद धार्मिक भावना भी नष्ट हो गयी है । इसके लिए मैं जैन समाज को एक बार अवश्य धन्यवाद का पात्र मानता हू । जिन्होंने इन सभी क्षेत्रों में जहां भी जैन समाज के पुराने मन्दिर है वहां या तो नये मन्दिर का निर्माण करके अथवा उन खण्डित मूर्तियों को दोबार सही करके चाहे धार्मिक प्रवृति से ही सही इन्हें सुरक्षित करने का प्रयास किया है , अब उनके साधन सीमित हैं उन्हीं के आधार पर वे जो कुछ कर सकते हैं , कर रहे हैं उन्हें अपने आसपास के क्षेत्र में जहां भी मूर्तियां मिली उठाकर एक उचित स्थान पर एकत्रित कर दिया हैं ।

इस अध्ययन से मुख्य निष्कर्ष निम्न हैं :-

1- अनेक अज्ञात मूर्तियों एवं चित्रों को प्रकाश में लाया जा सका । मेरे प्रयत्नों से जमीन में धंसी शेषशायी विष्णु व नाग मूर्तियां "झांसी राज्य के संग्रहालय की शोभा बढ़ा रही हैं ।

2- मदनपुर में चम्पोमठ जैन मन्दिर , उद्घाटन कला मनीषियों के सामने हो सका तथा मदनपुर में ही झाड़ियों व गड्ढों से प्रकाश में लाया गया ।

3- बानपुर के गणेश खेड़ा की गणेश जी की मनोज्ञ मूर्ति का उद्घाटन कला मनीषियों को हो सका ।

4- मदनपुर में चित्रों की विषयवस्तु तथा तकनीक का पूर्णमूल्यांकन किया गया ।

5- बानपुर में बुन्देलखण्डी विशेष चित्रकला पद्धति के विवेचन किया गया ।

6- बानपुर व मदनपुर का देश की स्वतन्त्रता में क्या योगदान है , इसका उद्घाटन हुआ , जहाँ संस्कृति को देश की सुरक्षा व आजादी हेतु बलिदान कर दिया गया । वीर मर्दन सिंह के व्यक्तिगत व कृतित्व पर एक स्वतन्त्र शोध ग्रन्थ लिखा जाना चाहिए ।

सुझाव :-

1- हमारी सरकार को चाहिए कि बानपुर की स्वतन्त्रता के इस महत्वपूर्ण तीर्थ [किले] की सफाई इत्यादि कराकर वहाँ पर कुछ चौकीदार रखें जायें , तथा किले के चारों ओर के भाग पर घास आदि लगाकर उसका सौन्दर्यकरण कर दें , तो वह भारतीय इतिहास के जानने वालों तथा देशाटन के प्रेमी व्यक्तियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन सकता हैं ।

2- मदनपुर के चन्देलकालीन दोनों मन्दिर जिन्होंने भी आजादी की लड़ाई में अपने को स्वाहा किया हैं उनका पुर्ननिर्माण किया जा सकता है उसके अधिकतर भाग अभी भी चारों ओर बिखरें पड़े हैं ।

3- साथ ही जन जागरण की भी आवश्यकता हैं उसके लिए बुद्धिजीवी लोगों को आगे आना होगा । उन क्षेत्रों के कुछ पढ़े - लिखे लोगों को अपनी इस संस्कृति की धरोहर के महत्त्व से अवगत कराना होगा , ताकि इस धरोहर का दुरुपयोग न किया जा सके ।

4- चारों और बिखरें हुए मूर्तिशिल्प को यदि सरकार उठाकर उन्हीं क्षेत्रों में पुलिस के संरक्षण में ही छोटे- छोटे संग्रहालय बना दें , तो उससे कुछ व्यक्तियों कोरोजगार मिलेगा ही , साथ ही यह धरोहर भी सुरक्षित रह सकेगी ।

5- मदनपुर के चित्रों की प्रतिकृति कराना बहुत आवश्यक हैं यह कार्य केवल सरकार ही करा सकती हैं । जिससे अपने समय के नष्ट प्राय : एक मात्र उदाहरण भावी पीढ़ी व इतिहास कारों के लिए सुरक्षित रह सकें ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रन्थ संस्कृत एवं हिन्दी

1- अग्निपुराण - वेदव्यास - स0 बलदेव उपाध्याय - चौखम्भा संस्कृत सीरीज - वाराणसी -1966

2- अपराजित पृच्छा - भुवनदेव - ओरियन्टल इंस्टीट्यूट बड़ोदा - 1950

3- अभिधानचिन्तामणि हेमचन्द - सं0 हरगोविन्द शास्त्री - चौखम्भा संस्कृत सीरीज- 1964

4- कुमार सम्भव - कालिदास - सं0 पाण्डेय तेजराम शास्त्री - काशी - 1961

5- गणेश सहस्त्रनाम - प्रकाशक गीता प्रेस - गोरखपुर - सम्वत् - 2015

6- जिनसहस्त्रनाम - पं0 आशाधर - सं0 हीरालाल शास्त्री - दिल्ली

7- तिलोयपण्णति - यतिवृषभ - सं0 डा0 हीरालाल जैन - शोलापुर - 1943

8- निर्वाण कलिका - पादलिप्ताचार्य सं0 मोहनलाल भगवानदास झावेरी - बम्बई - 1922

9- प्रतिष्ठासारोद्दार -आशाधर - सं0 मनोहर लाल शास्त्री - बम्बई - 1974

10- प्रतिष्ठापाठ - जयसेन - सं0 नेमचन्द्र हीरालाल जोशी - शोलापुर - 1925

11- पद्मपुराण - रविषेण - सं0 पन्नालाल साहित्याचार्य - भारतीय ज्ञानपीठ - 1958

12- प्रबोध चन्द्रोदय - श्रीकृष्णमिश्र - चौखम्भा संस्कृत सीरीज - वाराणसी - 1955

13- पृथ्वीराज रासो - चन्द्रबरदाई- सं0 बाबू श्यामसुन्दरदास - काशी नागरी प्रचारिणी सभा-बनारस

14- परमाल रासौ - जगनीक - सं0 बाबू श्यामसुन्दर दास - काशी नागरी प्रचारिणी सभा-बनारस

15- पंचतन्त्र - श्री विष्णु शर्मा - सं0 श्यामाचरण पाण्डेय - दिल्ली - 1980

16- मतस्य पुराण -आनन्द आश्रम मुद्रणालय - पूना - 1907

17- मानसोल्लास - सोमेश्वरदत्त - ओरियन्टल इंस्टीट्यूट - बड़ौदा - 1939

सूत्रधार
18- समरांगन - मंडन - सं0 बलराम श्रीवास्तव - दिल्ली

19- रामायण - गीता प्रेस गोरखपुर

20- वास्तुसार संग्रह - ठक्कर फेरु - सं0 भगवान दास जैन - जयपुर - 1936

21- वृहत्संहिता - वराहमिहिर - प्रकाशक - पं0 भूषण वी सुब्रह्मण्यम्- बंगलौर - 1947

22- वासुनन्दिश्रावकाचार - वसुनन्दी - भारतीय ज्ञानपीठ काशी - 1952

23- विष्णु सहस्त्रनाम - गीता प्रेस गोरखपुर - सम्वत् 2013

24- विष्णुधर्मोत्तर पुराण - वेंकटेश्वर प्रेस - बम्बई

25- समरांगण सूत्रधार - भोज - गणपति शास्त्री - ओरियन्टल इंस्टीट्यूट - बड़ौदा - 1924

26- शिशुपाल वध महाकाव्य - माघ - चौखम्भा संस्कृत सीरीज - वाराणसी - 1964

27- शिव सहस्त्रनाम - गीता प्रेस - गोरखपुर

28- शिल्प रत्नम् - श्रीकुमार - सं0 साम्बशिव शास्त्री - त्रिवेन्द्रम - 1929

1- अवस्थी रामाश्रय - खजुराहो की देव प्रतिमाएँ - ओरि० पब्लिसिंग हाउस - आगरा
2- अग्रवाल वासुदेवशरण - कला और संस्कृति - प्रयाग - 1952
3- अग्रवाल गि० कि० - कला और कलम - अलीगढ़
4- अग्रवाल आर०ए० - कला विलास - मेरठ - 1984
5- अहमद लईक - भारतीय मध्यकालीन संस्कृति - इलाहाबाद - 1968
6- उपाध्याय वासुदेव - प्राचीन भारतीय स्तूप - गुहा एवं मन्दिर - बिहार हिन्दी ग्रंथ एकादेमी पटना-1972
7- उपाध्याय भगवतशरण - भारतीय कला व संस्कृति की भूमिका - दिल्ली - 1965
8- उपाध्याय भगवतशरण - कालिदास का भारत - भारतीय ज्ञानपीठ - दिल्ली
9- ओझा गौरीशंकर हीरानन्द - राजपूताने का इतिहास - जयपुर
10- गरोला वाचस्पति - संस्कृत साहित्य का इतिहास - चौखम्भा संस्कृत विधापीठ -वाराणसी-1960
11- " " - भारतीय संस्कृति और कला - उ०प्र०हिन्दी ग्रन्थ अकादमी-लखनऊ - 1973
12- गार्गीय वि०दास - देवगढ़ के जैन मन्दिर - ललितपुर - 1922
13- गुप्त परमेश्वरी लाल - भारतीय वास्तु कला - वाराणसी
14- गोखले बी०जी० - प्राचीन भारत, इतिहास और संस्कृति - बम्बई - 1957

15- चन्द्र मोती - प्राचीन भारतीय वेशभूषा - प्रयाग - सम्वत् 2007
16- जैन लक्ष्मीचन्द्र - जैन कला एवं स्थापत्य - भारतीय ज्ञानपीठ - दिल्ली
17- जैन ज्योतिप्रसाद - प्राचीन भारत का वैभव देवगढ़ - वीर - मई - 1956
18- जैन " - भारतीय इतिहास एक दृष्टि -भारतीय ज्ञानपीठ - 1961
19- जोशी नी0पु0 - मथुरा की मूर्तिकला - पुरातत्व संग्रहालय - मथुरा - 1965
20- " " - प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान -बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना -1977
21- जैन हीरालाल - भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान-मध्यप्रदेश साहि0 परिषद्-भोपाल
22- जैन भागचन्द - देवगढ़ की जैन कला - भारतीय ज्ञानपीठ - दिल्ली - 1974
23- जैन बालचन्द - जैन प्रतिमा विज्ञान -जबलपुर - 1974
24- जैन बलभद्र - भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ - भारतीय ज्ञानपीठ - नई दिल्ली - 1974
25- जैन यशपाल - आहार - टीकमगढ़ - 1943
26- जैन हीरालाल व विजयमूर्ति - जैन शिलालेख संग्रह - भारतीय ज्ञानपीठ - दिल्ली
27- तिवारी गोरेलाल - बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास - काशी नागरी प्रचारिणी सभा -सं01990
28- तिवारी मा0 नन्दन - जैन प्रतिमा विज्ञान - अजन्ता पब्लिसिंग हाउस - दिल्ली

29- दास ब्रजरत्न - बुन्देलों का इतिहास - नागरी प्रचारिणी पत्रिका - सम्वत् - 1879

30- दत्त रमेशचन्द्र - प्राचीन भारत की सभ्यता का इतिहास - दिल्ली - 1962

31- द्विवेदी हजारी प्रसाद - प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद - बम्बई - 1952

32- पाण्डेय अयोध्याप्रसाद - चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास - हि०सा०हि०सम्मेलन प्रयाग-1968

33- पाण्डेय राजबली - प्राचीन भारत - नन्दकिशोर एण्ड संस - वाराणसी - 1962

34- पाण्डेय विनोदचन्द्र - भारतीय संस्कृति का विकास - लखनऊ - 1972

35- पाण्डेय विमलचन्द्र - प्राचीन भारत का इतिहास - शिक्षा साहित्य प्रकाशक-मेरठ-1981-82

36- वाजपेयी कृष्णदत्त - उत्तर प्रदेश का सांस्कृतिक इतिहास - शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं०-आगरा -1959

37- " " - उत्तर प्रदेश का पुरातात्त्विक अनुसंधान-शिक्षा विभाग लखनऊ -1955

38- " " - कला का इतिहास- हिन्दी साहित्य परिषद् - प्रयाग -1962

39- " " - गुप्त तथा मध्यकालीन मूर्तिकला - कल्पना - जनवरी - 1962

40- " " - चन्देल व उनकी देन - मध्यप्रदेश सन्देश - 11 अगस्त, 1962

41- " " - देवगढ़ की जैन प्रतिमाएं - अनेकान्त - 1 अप्रैल , 1962

42- " " - मथुरा कला में नाग - त्रिपथगा - जौलाई , 1962

43- बुद्धप्रकाश - भारतीय धर्म एवं संस्कृति - मेरठ - 1967

44- भारद्वाज दिनेशचन्द्र - मध्यकालीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति - भोपाल - 1967

45- मुनि कान्ति सागर - खोज की पगडंडियाँ - भारतीय ज्ञानपीठ - नई दिल्ली -1953

46- " " - खण्डहरों का वैभव - भारतीय ज्ञानपीठ - नई दिल्ली - 1959

47- मुखर्जी राधाकुमुद - प्राचीन भारत - राजकमल प्रकाशन - दिल्ली - 1962

48- मिश्र इन्दुमति - प्रतिमा विज्ञान - मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ एकाडेमी-भोपाल-1972

49- मुखर्जी राधाकमल - भारतीय कला का विकास - इलाहाबाद - 1964

50- मेहता नानालाल चमनलाल - भारतीय चित्रकला - इलाहाबाद - 1933

51- याजदानी जी - अजन्ता - लन्दन - 1946

52- राय उदय नारायण - प्राचीन भारत के नगर व नगर जीवन - इलाहाबाद -1965

53- रामनाथ - मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास - जयपुर - 1973

54- रायकृष्णदास - भारत की चित्रकला - इलाहाबाद - सम्वत् - 2023

55- " - भारतीय मूर्तिकला - नागरी प्रचारिणी सभा- काशी- सम्वत् -2030

56- रायकृष्ण दास - अजन्ता के चित्रकूट - दिल्ली - 1959

57- विद्यालंकार सत्यकेतु - भारतीय संस्कृति व उसका इतिहास - मंसूरी - 1953

58- वर्मा वृन्दावन लाल - झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई - झाँसी - 1982

59- विद्यालंकार अत्रिदेव - प्राचीन भारत के प्रसाधन - भारतीय ज्ञानपीठ - दिल्ली

60- सिंह प्रतिपाल - बुन्देलखण्ड का इतिहास - खण्ड - 1

61- शास्त्री के0एन0 भारत और मुस्लिम आक्रमण - वाराणसी - 1974

62- श्यामलाल - तवारिखे बुन्देलखण्ड

63- शुक्ल द्विजेन्द्रनाथ - प्रतिमा विज्ञान - लखनऊ

64- शास्त्री परमानन्द - जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह - वीर सेवा मन्दिर - दिल्ली

65- शास्त्री चतुरसेन - भारतीय संस्कृति का इतिहास - मेरठ - 1952

66- हीरालाल - मध्यप्रदेश का इतिहास - वाराणसी - 1939

67- त्रिपाठी मोतीलाल -बुन्देलखण्ड दर्शन - झाँसी - 1980

68- त्रिपाठी गयाचरण - प्राचीन भारत की कला - कानपुर - 1971

69- त्रिपाठी रुद्रदेव - चित्रबन्धावतारिका - नई दिल्ली - 1977

70- त्रिवेदी - बी0बी0 - पृथ्वीराज रासौ - एक समीक्षा - लखनऊ - 1964

71- श्रीवास्तव,खरे - बुन्देलों का इतिहास - विचार प्रकाशन - दिल्ली - 1982

-: अंग्रेजी सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. Aggarwal V.S. - Catalogue of the Brhmanical Images in Mathura Art-U.P. Historical Society Lucknow-1951.
2. Aggarwal V.S. - Gupta Art - Historical Society Lucknow- 1948.
3. " " - Indian Art - Varansi - 1965
4. Aggarwal Urmil- Khajuraho Sculptor and their significance - New Delhi-1964.
5. Anand Mulhraj - Album of Indian painting - N.B.T. India- 1973.
6. Aggarwal R.A. - Marwal Mural - Delhi.
7. Bhattacharya B.C.- The Jaina Iconography- Motilal Banarshi Dass- Delhi-1974.
8. Bose N.S. - History of the chandels of Jejakbukti- Calcutta- 1956.
9. Banerjee J.N. - The devlopment of Hindu Iconography.
10. " " - Relegion in Art and Archeaology- University of Lucknow-1968.
11. Banerjee R.D. - Eastern Indian School of Medival Sculpture- Delhi- 1933.
12. Brown percy - Indian painting - Calcutta- 1945.
13. Bhandarkar R.G- Vaisnavism - Saivism and Minor Religeous System.

---

14. Bajpai K.D. - Archology in Uttar Pradesh- Lucknow-1954.

15. Coomaraswamy A.R.- History of Indian and Indonasian Art- London -1927.

16. Coomaraswamy A.K.- Notes of Jain Art- Journal of Indian Art- London-1918.

17. " " - Early Indian Iconography in Eastern Art- 1928.

18. Chakrabarti J. - Techniques in Indian Mural painting Calcutta- 1980.

19. Chandra Moti & Shah U.P.- New Documents of Jaina painting - Bombay- 1927.

20. Dikshit R.K.- Chandels of Jejakbukti- Abinav Prakashan, Delhi.

21. Desai Madhuri- The Gupta temple of Devegarh - Bombay- 1958.

22. Desai Kalpana S.- Iconography of Visnu - New- Delhi - 1973.

23. Dass Gupta . S.N.- Fundamentals of Indian Art- Bombay- 1954.

24. Dhaky M.A.- Early Jain Temples in western India- Bombay- 1954.

25. " " - The western Indian Jain temple- Aspect of Jain Art and Architector- Ahmedabad- 1975.

26. Devedi-R.S. - Contribution of Janism to Indian culture- Delhi.

40. Rao T.A.G. - Elements of Hindu Iconography- Madrass - 1914-15.

41. R.Nath - Art of Chanderi - New Delhi .

42. Rid. A.K. The Malwa Painting.

43. Shah U.P. Studies in Jaina Art- Banaras- 1955.

44. Shukla D.N. Hindu Canon of Iconography and painting - Gorakhpur- 1958.

45. Sivaramamurti.C. - Indian Sculpturs- New Delhi- 1961.

46. Sahai Bhagwant - Iconography of minor Hindu & Buddhist, deitie- Delhi-1975.

47. Trivedi S.D. - Sculptures in Jhansi Museam - Jhansi - 1983.

48. W.G.Archer - Central Indian painting - Febar & Feber .

गजेटियर एवं रिपोर्ट्स

1- ए० कनिंघम - आरक्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स - टूर्स इन बुन्देलखण्ड एण्ड मालवा - जिल्द-2,7,9 10,18,21 इन 1875-76, 1876-77, कलकत्ता - 1880

2- ए० फुहरर - ए०एस०आई० आर० - दा मानुमेण्टल एण्टिक्विटीज एण्ड इंस्क्रीप्सन्स इन दा नार्थ - वेस्टर्न प्राविन्स एण्ड अवध - इलाहाबाद - 1891

3- पी०सी० मुखर्जी - रिपोर्ट आन दा एण्टिक्विटीज इन दा डिस्ट्रिक्ट आफ ललितपुर - जिल्द 1 व 2-1891

4- एनुवल रिपोर्ट आफ दा आर्केलोजिकल सर्वे आफ इण्डिया - 1903 -04

5- दा इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया - जिल्द - 11 - 1908

6- दयाराम साहनी - ए०एस०आई० एनुवल प्रोग्रेस रिपोर्ट - 1920- लाहौर - 1928

7- सर जॉन मार्शल - ए०एस०आई ए०पी०आर०-1919-1920 कलकत्ता - 1922

8- ईशा बसन्त जोशी - उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर -झाँसी - गवर्नमेंट आफ यू०पी०डि०डि० गजेटियर लखनऊ - 1965

पत्रिकाएँ

1-	अनेकान्त	2-	अँहिंसावाणी
3-	आर्क्योलोजी इन इण्डिया	4-	जैन सन्देश
5-	धर्मयुग	6-	मध्यप्रदेश संदेश
7-	वीर	8-	त्रिपथगा
9-	मधुकर	10-	आकार
11-	आकृति	12-	परदा
13-	मरु श्री	14-	मरुभारती
15-	कलानिधि	16-	सम्मेलन पत्रिका [कलांक]
17-	बुलेटिन - लखनऊ	18-	ईस्ट एण्ड वेस्ट
19-	ललित कला	20-	मार्ग
21-	रूपम	22-	विश्वभारती
23-	कल्याण	24-	वार्षिकी -63